

# यंत्रारूढ़

चंद्रशेखर रथ

# यंत्रारूढ़

## चंद्रशेखर रथ



शबनम पुस्तक महल
कटक ७५३०१०

**YANTRAROODHA** (Novel) by Chandra Sekhar Rath. Translated from Oriya into Hindi by Shankarlal Purohit. Published by Shabnam Pustak Mahal (in collaboration with Varnamala, Bhubaneswar), Press Chhak, Madhupatana, Cuttack 753010 India. Printed at Shyam Printers, Cuttack 753010.

First Edition : 1998

Rs. 130

# यंत्रारूढ़

# यंत्रारूढ़

बहुत पुराने उस चबूतरे को ढहाकर एक बरगद और एक पीपल- दोनों आपस में लिपट कर ऊपर की ओर उठ गए हैं। पेड़ बहुत पुराने हैं। एक गोकर्णी बट और दूसरा सफेद पीपल।

चबूतरे के पीछे की ओर दोहरा... लोहे की दीवार सरीखा मजबूत फाटक ! वैसा कद्दावर जवान कोई न हो तो अकेला आदमी उन्हें हिला भी नहीं सके। धक्का मारो तो चरमरा उठते हैं! ... उनके पीछे दोरंगी सीढ़ियाँ, कतार में पत्थर के जोड़ी-जोड़ी खम्भे। उनमें दो-दो पदम खुदे हैं। पत्थर के उस आले में जय-विजय बने थे। वहाँ सब कुछ जोड़े से था। गुंथा-गुंथा-सा था। गंगा-यमुना-सा।

वहाँ मन्दिर के गर्भगृह में विराज रही लक्ष्मी नारयण की युगल मूर्ति चार पीढ़ी से पूजा पाती आई है धूप और दीये के प्रकाश में।

परंतु वहाँ सुबह-शाम आरती के समय एक ही झालर बजती। एक शंख फूंका जाता, अकेला आदमी में बैठा मंत्रोच्चारण करता, पूजा करता और घंटी हिलाता। दिन डूबते समय के हल्के प्रकाश में नहाया-धोया निर्मल आकाश चारों ओर फैला रहता। झुण्ड से बिछड़ा पक्षी पथ चीरता अकेला ही उड़ता... चीं...चीं...चीं... पुकारता, स्वभावतः ही। ऊपर आकाश, नीचे धरती। उसका साथ देकर उसमें और अधिक एकाकीपन भर देते। वह खो जाता। वह घुल जाता। आकाश में है या पृथ्वी में पता ही न चलता। फिर भी वह चीं...चीं... पुकारता। वह अपना नीड़ तलाश रहा है। वह अपने बच्चों के लिए कोई आहार लाया है। स्वर तीव्र और पैना वैसे ही वह अकेला मंत्रोच्चारण और वह पतली झालर की आवाज!

जिस दिन जनेऊ पहनी उसी दिन से लक्ष्मी नारायण मंदिर के पुजारी बन गये थे सनातन दास। अब तो उमर के पचास पार कर गये थे। पर दास दोहरे शरीर वाले ठहरे। अतः इतनी अधिक उमर के लगते नहीं। वे बहुत थोड़ी बातें करते। हंसते भी थोड़े ही। पान में रची उस हंसी में कोई भी देख पाता कि यह आदमी अच्छा खाता-पीता है। अपने में मस्त है। मन ही मन शायद कहता-

"आज मरे परसों तीया। इस घाटे की दुनिया में जीना है तो खा-पी कर बेफिक्री से कुछ दिन रह लो। फिर मर जाओ।" सरसरी तौर पर कोई उनकी हंसी देखे तो उनकी कद्दावर देह की ही बात कहेगा, - "इस आदमी के जीवन में परवाह नाम की कोई चीज नहीं"।

पर उनकी ये दोनों आंखें?

कुछ भूरी अनसमझ-सी दो आँखें। लक्ष्मी-नारायणजी की काचवाली दो आंखों जैसी लगती। मानो, उनमें पलक है ही नहीं, पर वे कितनी गहरी हैं ! नापना मुश्किल। वे सब देखती हैं, सब समझती हैं, पर कभी जरा भी संकेत नहीं करती- कि कितना देखा, कितना समझा। कोई पढ़ सके तो उन खाली आँखों में किताब भरी हैं। सच धैर्य से दोनों संसार का भीतर-बाहर सब झांकने के बाद कह रही है

- हां ठीक ही है, तो क्या हो जाता है इससे ?... लेकिन सारी सूझ-बूझ उस गहराई में छुप जाती है। बाहर देखती - सिर्फ भूरे-भूरे रंगवाली और आम लोगों की आँख जैसी समान आकार वाली आँखें !

सनातन दास हैं लक्ष्मीनारायण मंदिर के पुजारी। सारा गाँव जानता है उन्हें। आदर करता है। बार-त्यौहार पर भोग लगता है ! कोई कभी मनौती करे तब भी भोग लगता है। दासजी सारा काम संभाल लेते।

उस दिन ठाकुरजी की पूजाकर किवाड़ बन्द करते करते दो घड़ी रात हो गई। प्रधान के बेटे ने अच्छी अच्छी सी चार सरपुली भेजी थी, भोग के लिये। उसी प्रसाद को गमछे के पल्लू में बांध ताला लगा रहे थे। तारों की छांह, उसमें मंदिर, पेड़-पौधे कैसे कैसे दिख रहे हैं! ... गुमसुम अंधेरा... सब सिमट सिमट उस की गोद में यह और उसकी बगल में वह घुसा ऊंघ रहा है-मानो एकाकार हो जायेंगे, अब कोई किसी से अलग नहीं रहेगा।

दास चाबियों का झुमका अंटी में खोंस कर निकल पड़े। उनका घर गांव के उस पार है। रात इतनी हो गई ! बैलगाड़ी की सूनी लीकों पर रास्ता ढूंढते-ढूंढते चले जा रहे हैं।

उन्हें मिलाकर दो पीढ़ी से इस मंदिर के पुजारी उनके परिवारवाले ही होते आये हैं। बात चलने पर बहुधा दास जी कहते "हाँ, सब उन प्रभु की इच्छा है।" परंतु मन ही मन कहते- दस हजार कोस में फैली धरती के मालिक हैं लक्ष्मी-नारायण, उनका आसरा लेकर ये लाखों लोग पड़े हैं। उनकी कृपा से इतने जीवों को आहार मिलता है। दास उनकी तो सेवा करते हैं। कोई छोटी बात थोड़े ही है ! ऐसा भाग किसी-किसी का ही होता है। उनके पिताजी मुकुंद दास- पूरे होकर स्वर्ग लोक में स्थान पा गये हैं। -"समझे, सनेई, ये ही तेरे सब कुछ हैं। इन पर भरोसा रखना। इनकी सेवा करते जाना। वे तेरी बात खुद सोचेंगे।" उनका वह सनेई कहकर पुकारना अब तो सात सपनों की बात हो गई। यहां अब कोई उन्हें नाम लेकर नहीं पुकारता। डाकिया भी कभी कोई चिट्ठी-पत्री समधी के यहाँ से लाता है तो चक्कर में पड़ जाता है। आकर पूछ-ताछ करता है। "ये सनातन दास कौन हैं?" ...कोई कहता - "अरे ! अरे भई! वो अपने दास जी! दास को नहीं जानते?" "ओह वो ... और वह तुरत समझ जाता। जरा हँसता, शायदा सोचता, "दास का भी कोई एक नाम है ?" ...आजकल का छोकरा है श्याम मलिक - चौदह वर्ष का था तब पट्टी पकड़ी थी उसने। उसका बाप डाक घर में काम करता था।

आजकल इधर कितना कुछ बदल गया ! सारे गाँव में पोपले-पुराने लोग अब कहाँ रहे? मिश्र जी- वे दास के पिताजी से थोड़े छोटे ही होंगे। उन्हें देखते ही दास "काका" कह पालागी करते। मिश्र जरा झुककर देखते, कहते, "कौन अलेई है क्या?" सिर्फ दास समझते कि वे उन्हें "सनेई" कहकर बुला रहे हैं। और कोई समझता नहीं कि जानता नहीं। दास को स्वयं अचंभा होता उनके शरीर से जैसे उनका नाम पुंछता जा रहा है। उन्हें उतना दुःख नहीं होता जितना कौतुक होता। एक समाधान की तरह सोचते- जाने दो अब क्या हो गया? - नाम में ही ऐसा क्या है? यह शरीर भी तो एक दिन घुल जायगा।

बॉस का झुरमुटा वहॉ मंदिर और गॉव के छोर के बीच में है। तैज कदमों से चलकर दास वहाँ तक आ गये हैं।

...आस्तिक! आस्तिक! लाठी से ठक-ठक करते हुए वह जगह पार की। यहीं तो परसों प्रधान वाले भूरे बैल को नाग डँस गया था। आस्तिक ! आस्तिक! गरूड़! गरूड़!

अब तो गाँव में भी कितने पढ़े-लिखे लोग हो गये। पर इन गधों में अकल नहीं आई। आधी रात तक धमा-चौकड़ी करेंगे और उठेंगे सूरज दो घड़ी चढ़े। खाने में भी कोई उनका ध्यान है? बस चिड़िया की तरह दो-चार दाने चुग लेते हैं। इस चढ़ती उमर में तो जवानी फूट पड़नी चाहिए, पर ये मरियल टट्टू की तरह चलते हैं। इनके शरीर में जैसे प्राण ही नहीं, इन्हें फूंक दो, उड़ जायेंगे। क्यों रे आहार-निद्रा को छोड़कर भी किसी युग में आदमी बचा है? छोड़ो इसे, खैर।

अखाड़े की हल्की रोशनी थोड़ी दूर तक चली गई है। मोड़ के गहरे अंधेरे से उजाले की धारा में पहले लाठी, फिर पेट और तब दास स्वयं चले आये। कंधे पर मैला-सा गमछा, घी में भींगकर चिपचिपा रहा था। भोग की सरपुली उस में बाँध कर दास घर ले जा रहे थे।

... जो कहो, भालुआ प्रधान उस घर में सोना है। जैसा वह खुद खाता है, खिलाता उससे भी अच्छी तरह है। मन देख कर वह देता है। नहीं तो उसका बाप... ओ हो.. पुराना मक्खीचूस है ! शरीर से मैल भी न दे वह तो। अब समधी की जिद पर हर साल पुराण-भागवत बिठाता है, नहीं तो वह क्या आगे बढ़ कर धर्म करता ?.. आज यह सरपुली अगर भालुआ नहीं होता, तो कौन कराता ...इन्हें लेकर अब किसे किसे बाँटूंगा ? ...इतनी तो आदमी के घर में एक-एक टुकड़ा भी भाग में नहीं आयेगी। ...ओ, कोई जानकार कभी बड़ा कुटुंब पैदा न करे। परंतु अब यह भी कोई किसी के बस की बात है ? घर-संसार करने पर बेटे-बेटी होंगे ही। यह माया जो ठहरी ...एक शुकदेव को छोड़कर कौन इसमें नहीं पड़ा ? अच्छा, देखा जायेगा। जो होगा, बाँट-बूंट कर खा लेंगे।

इसी बीच पता नहीं किधर से धप् से आकर एक कुत्ता उनके पीछे हो लिया। चौंक कर उन्होंने लाठी घुमा दी। देखा-कमर जितना ऊँचा बाघवा चुपचाप दो छलांग पीछे सरक गया है। लेकिन हवा में तैर रही सरपुली की मीठी सुगंध ने उसे ललचा दिया है। अब वह दास का पीछा छोड़ेगा भी कैसे ? दासजी लंबे-लंबे डग भरकर थक गये। घबरा-से गये। सिहरन सारे शरीर में कानखजुरे की तरह फैल गई। दास डर के मारे दौड़ने की तरह चल रहे हैं। दासजी को कई बातों का डर लगता है। वे पास वाले मुहल्ले के गंजे पठान से डरते हैं। घर का टिक्कस वृंदा नायक लेता है, उससे डरते हैं। उधार लाये हैं, महीने के महीने रूपये का एक आना व्याज देते हैं। तो भी पात्र बुड्ढे से डरते हैं। घरनी है तो क्या हुआ, गुस्से में जब-तब चंडी रूप ! दासजी उससे बेहद डरते हैं। इसी प्रकार और कौन है जिससे वे नहीं डरते। बेटा, बहू, मुहल्ला-पड़ोस, सगे-संबंधी सब से कमोबेश दास डरते ही रहते हैं। सलामत रहने के लिए इस तरह डरते-डरते जीना होगा। और डर-डर में ही दासजी की इतनी जिंदगी बीती है।

फिर से हुस्स की आवाज के साथ लाठी फिराई। बाघवा भी छिटक कर

सरक गया। यह दास का जाना-माना कुत्ता है, पर इससे क्या होता है! गंजा पठान क्या उनसे परिचित नहीं है, या अपने टुकु की माँ उन्हें नहीं जानती ? जानवर जो ठहरा यह, जाने अनजाने का क्या भेद करेगा? दम फूल आया है। सरपुली के लोभ में कहीं गर्दन तो नहीं भोंक लेगा। नृसिंह, नृसिंह, नृसिंह! काश, तलैया कि मुंडको पार कर लेते तो दास जी के लिए घर पकड़ना सहज हो जाता। पीछे से कोई जैसे धकिया रहा था। जरा हलका लगा। दास जी ने घूम कर देखा, लगता है बाघवा पीछे छूट गया है। "कू..कु" कर वह खेल में लग गया है। उधर दूसरी ओर शायद कोई आवार कुतिया होगी ! "ओ..."

दास थोड़े में ही सब समझ गये। चैन की साँस लेकर जरा मुस्करा पड़े। आगे बढ़ गये।

नीलकंठ पंडित ! शशुरा काशी में विद्या पढ़कर आया है। तभी वह यों फउगृ रउगू है। पर बीच-बीच में पक्की, ठोस बातें भी बोल देता है। कहने लगा, आहार, निद्रा, भय, मैथुन - ये चार हैं जीवन के मूल। सच कह रहा था, आदमी तो इनमें पड़कर छूट नहीं पाता। चारों ओर जड़ फैलने की तरह जकड़ लेती हैं ये सब। और बाघवा बेचारा जानवर है। दौड़ा था सरपुली खाने के लिए। कुतिया ने पूँछ हिला कर जैसे ही उसको मुँह दिखा दिया बस, बाघवा एक ही बार में काबू में आ गया। दास मन ही मन हँस पड़े।

- अच्छा बउला को कल अस्पताल ले जायेंगे। सुना है वहाँ बड़ी-बड़ी बछिया जनमती हैं। उन्हें फिर हँसी आ गई।

इसी बीच दास घर के दरवाजे तक पहुँच चुके थे। किंवाड़ खोलते ही घर वाली ने पहली ताकीद कर दी। "और भी, आधी रात ढले आये होते, बच्चे सब तो जहाँ-तहाँ सो गए हैं।"

पर दास जी ने बिल्कुल बेढंगा-सा जबाब दिया- "कल सुबह बउला को अस्पताल ले जाना पड़ेगा, और लो ये सरपुली रखो। बच्चों को दे देना।" कुछ मन ही मन कह रहे थे। शाला, सब एक जैसे हैं- गाय, कुत्ते और अर्धम। सबे समान। हाथ-पाँव धोकर सीधे खाट पर जाकर लेट रहे। उनको बड़ी निंद आ रहि थी।

दास जी करवटें बदल रहे हैं। घरवाली बरामदे में बैठकर सरपुली चख रही है। डिबरी जल रही है। आधी रातवाली पैसेंजर धड़-धड़ाती गाँव के श्मशान के बगल से गुजर गई। लोहे और पथरीले रास्ते को जकड़ कर पड़ी जरा भी लीक नहीं बदल सकती। दिन-रात सुँ-सुँ, हाँव... हाँव करती हुई भागती रहती है। उसके सारे शरीर में सूनी खिड़कियाँ ओर खुले दरवाजे ही दरवाजे हैं। आदमी, पेटी, बक्सा सब उसमें घुस जाते हैं। फिर निकल कर चले जाते हैं। अंदर उसकी नाड़ी पकड़ कर जो वह बैठा है। वह जैसे ही कल मोड़ेगा, चक्के लुढ़केंगे, रोशनी होगी, अंधेरा होगा, बेचारी बहुत बेहाल रहती है यह रेलगाड़ी तो!

ये शायद अखाड़े को पार कर गई। छोकरों का झुंड़ अब एक-एक कर उठेगा। देखने में ना ये ऐसे मारियल हैं। पर रसिक क्या कम हैं? बीड़ी का कश खींच कर कुँवारी लड़कियों को ऊदबिलाव की तरह ताकेंगे। मूंछ के पीछे से खींस निपोरेंगे। पर उनका भी क्या बस ? उमर के अनुसार प्रकृति विकार तो होगा ही। गरमी के दिनों में भिंडी का पौधा सूख-सूख कर काँटा हो जाय परंतु क्या उसमें

फूल नहीं लगेंगे या फल नहीं होंगे..? उन्हें जैसे नचाओगे वैसे ही नाचने को वाध्य हैं। मकड़ी के जाले में मक्खी की तरह उन्हें डाले बिना क्या माया छोड़ती है। दीया जल-जल कर समाप्त हो जाता है। उस पर कितने पतंगे पंख जला असहाय ही मर मिटते हैं। नहीं तो क्या यह संसार चलता? नारी मोहिनी जो ठहरी! पुरुष उसमें पड़ेगा, डूबेगा, डुबकियां खायेगा। और अंत में इस उठा-पटक, खींचा-तानी का पुराण लिखा जायेगा।

दीया बड़ा हो गया है।

घरवाली ने सरपुली-सी मीठी आवाज में पूछा- "क्यों जी सो गये ? ऐसे भी कोई नींद होती है?"

"अरे नहीं रे! नींद क्या आ रही है? आज तो भाग-दौड़कर थक गया। तुम्हें कोई वह बात बतायी है?"

पास आकर बैठ गई टुकू की माँ। ..दास जी ने शुरु से आखिर तक बाघवा वाली बात रसीले ढंग से सुना दी। "अजी, जरा आहिस्ते-आहिस्ते बोलो। आप को किस उमर में अकल आयेगी। उस घर में बेटे-बहू जो सोये हैं।"

दूसरे दिन की सुबह।

बदलियों भरी अलसाई-सी सुबह।

दास उठकर उदासी से बाहर खड़े हैं। अचानक पता नहीं क्यों, नीलकंठ पंडित की याद आ गई।

नीलकंठ पंडित गीता पढ़ता- परंतु उससे समझाता ज्यादा। शास्त्री भी पढ़ा है तो क्या हुआ, इस बार वाले को मिलाकर उसके पाँच बच्चे हैं। इधर जमीन को लेकर मुकदमे बाजी चल रही है...। पंडित जी को महीन चावल अच्छा लगता है। बीस कोस से चावल लाया जाता। ये सब तो बच्चू ठीक। उसका बेटा इंद्रमणि एक सभा में क्या-क्या बक रहा था। बाप बातूनी, तो बेटा भी बातूनी! पर उसने क्या कहा? कहीं आजकल चाँद की ओर चूहे, बंदर, कुत्ते आदि भेजे जा रहे हैं! अंत में कुछ आदमी भी तैयार बैठे हैं। वहाँ जाने के लिए। हाँ-हाँ, घोर कलियुग आ गया... नहीं तो क्या ऐसे अक्ल मारी जाती? क्यों, कहाँ चंद्रमंडल दो लाख योजन और उस पर ये बेटे बैठे हैं वहाँ जाने को ! हाँ गये थे राज दशरथ! शनि के साथ मित्रता कर आये थे। महाशून्य, जो महाकाल का ममरूप है! वहाँ एक यंत्र में बैठकर जायेंगे। और सोचते हैं उसे हल कर लेने की। क्यों रे, यहीं का ढकना तो लेकर जाओगे, शून्य में जाओ, शनि पर जाओ, उसमें क्या रखा है ? ...वही तो हुई असल बात। इस ढक्कन को बिना छोड़े कोई बात नहीं बनेगी।

नीलकंठ त्रिपाठी पंडित बना फिरता है। पर वह कैसा पंडित! उसे क्या आता है? ...ओर आता भी किसे है। ...यह तो चक्र कूट माया है। पंडित-मूर्ख सब तो उसी जाल के कबूतर हैं। थोड़े बहुत सब उस जाल में फँसेंगे। मर जायें। वह जाल नहीं छोड़ेगा न छोड़ें न साहि। व्यास पराशर तो हमसे भी पहले गये हैं। सहस्र कोटि जीव गये हैं। जायेंगे, हम भी चले जायेंगे तो क्या हो जायगा? जम्हाई लेकर दास पेट पर हाथ फेर रहे हैं। पुकारा "अरे बेटे! पानी का लोटा तो पकड़ाना। मुँह हाथ धोना है।"

# नरमाया

दास जी महाभारत गा रहे हैं!

आकुंचित केश पुणि सुसंच वदन।

रसाण कढि प्रायेक ललाट चंदन।।

नीलरेखा प्राये तचि वरे रोमावलि।

हीरा दर्पवरे नीलरेखा प्राये झालि।।

चुने हुए फूलों की तरह के पद हैं!!

दास जी एक पद भी कहीं चुकते नहीं। अठारह खंड वाली महाभारत में एक जगह नहीं अटकते। ...कुछ लोग तो गाँव के पार तलैया की मुंडेर पर बैठ चाँद की छाया में पुराण सुनते। वहाँ तक साफ-साफ सुनाई पड़ता। पर दास जी गाते थे पाँच कोस की दूर से प्रधान बूढ़े के चँदोवे के नीचे बैठकर।

गाने की तर्ज में ही दास जी सारला महाभारत का अर्थ भी समझाते चलते। सुनने वाले झूम उठते। दास जी हिलते तो वे भी झूम जाते। सुनने वाले को लगता पाँचों पांडव उनके अपने हैं, द्रौपदी उनके अपने घर की बहू है। कीचक और सौ भाई उनके पड़ोस वाले गाँव के आदमी हैं- हरिपुर के। इस साल मेले के समय उनका गला दबा कर आग में फेंक देंगे। जब कीचक सभा में द्रौपदी विराट राजा के सामने अनुनय-विनय करती, दास जी को रुलाई-सी आ जाती, स्वर भींग जाता!! भीमसेन जब अखाड़े में तैयार होता तो जाँघ पर थाप देकर दास जी तन जाते। पोथी ऊपर उठ जाती। सागर में पूर्णमासी को उठते ज्वार की तरह स्वर में उफान आ जाता। चेहरे पर घी के दीये का प्रकाश कौंध जाता। चोटी में बंधा पीला कनेर का फूल झूल उठता, कान में मकर कुंडल हिल जाते। दूर से कोई देखता तो लगता जैसे व्यास जी और श्रोता सब उसी स्वर और महाभारत के ज्वार में बहते झूम रहे हैं। दास जी शब्दों में प्राण भर देते हैं। जितनी बार सुनो, फिर से वही कथा सुनने को जी करता। प्रधान बूढ़ा भक्ति से गद्‌गद् हो दास जी के ललाट पर सुगंधित चंदन लेप देता। गाँव के बूढ़े-बुढ़िया सब ढेर सारा चंदन लाते। गरमियों में दास जी को भी चंदन खूब सुहाता। पर उनकी आँखों में क्या तब वे दास जी रहते? वे उसी द्वापर युग के धौम्य, कोंतभट जैसे लगते। समय प्रतिलोम में बहकर धर्मराज के उस हस्तिनापुर को घर कर रुक जाता।

प्रधान बूढ़े के कोठले में तीन-तीन वर्ष पुराना धान चूहे खा जाते हैं। बूढ़े के चार बेटे हैं। बड़ा हरिया विवाह कर बहू ले आया। परंतु बूढ़ा पोते-पोती का मुँह नहीं देख सका है। पोते की आशा से हरिवंश, भागवत, महाभारत आदि सालों साल है। परंतु क्या वह नहीं जानता कि भाग्य में न रहने पर, ये सब पेड़ पर तो फलते नहीं जो तोड़कर कोई ला देगा। असल बात तो यह है कि बूढ़े को पुराण सुनना अच्छा लगता है। पाटपुर में उसका समधी हर साल बड़ी धूम-धाम से पुराण बैठाता। पैसा भी खूब खर्चता है। प्रधान बूढ़े का मन कुन-कुनाता पुराण बैठाने को।

अंत में रोक नहीं पाया। आज सात साल हो गये वह पुराण बैठाता है। गाँव के लोग सुनने के लिए शाम से उसके आँगन में बैठते हैं। उसका आदर करते। बूढ़े को बड़ा अच्छा लगता है।

प्रधान बूढ़ा अत्यंत सरल विश्वासी आदमी है। पिछले दिनों गाँव में एक तालाब खुदवाया। अब हर वर्ष उस के बगीचे के आम पाँच पाँच गाँव के लोग मिल-जुल कर खाते हैं। हर बैशाख में दास जी को एक छाता मिलता। अब उनके घर में हरेक के पास एक-एक छाता हो गया। नीलकंठ पंडित अब कुछ पैसे वाले हो गए। नहीं तो संक्रांति के दिन भोजन के लिए प्रधान उन्हें पहले बुलाकर ले जाता। दास जी भी आते। दोनों बच्चों को लेकर। उन दोनों बच्चों की जनेऊ प्रधान ने ही तो करवाई थी। पंडित का बेटा इंद्रमणि भी आता था। अब पता नहीं कहाँ से ये पढ़कर आया है। अब तो वह अलग-अलग ही रहता है। इंद्रमणि त्रिपाठी इंजीनियर ! कितना बड़ा आदमी बनने जा रहा है ! वह क्या प्रधान के घर संक्रांति पर भोजन करने आयेगा? अब गाँव में सब प्रधान बूढ़े की इज्जत करते, श्रद्धा करते, प्रशंसा करते। नीलकंठ पंडित भी मन होता तो पंडित की तरह ऊँचे स्वर में कहते, "धन कमा कर धर्म करो, धर्म से मिले हरि।" परंतु इस बार गरमी की छुट्टियों मे आया है इंद्रमणि। वह कहता है- "प्रधान बूढ़ा तो उल्लू है !"

बैशाख में जंगल में आग लग जाती । आधी रात तक गाँव में नींद नहीं आती। आह ! काकिनाड़ा कितनी अच्छी जगह है ! इंद्रमणि को वही स्वप्न सदा आता रहता। वह लालटेन जलाकर अधिक देर तक पत्र-पत्रिकाएँ नहीं पढ़ पाता। बाहर चलते-चलते आकर कानों में महाभारत के स्वर पड़ते

त्रैलोक्य जिणिबाकु तु समर्थ रे भाई।
काहार निमंते एबे एते कष्ट पाइ।।
बचने दरिद्र मुं जे कार्यनाश कलि।
कौरव मारिबा पाइँ अनुज्ञान देलि।।

-वह अनजाने में ही उधर खिंच जाता। चाँदनी शीतल लगती। जाकर प्रधान बूढ़े के मंडप तले पहुँच जाता। ओ कैसे पद हैं ! श्रोता हिल भी नहीं सकते ! कथा में डूब गये हैं। सब स्थिर, किसी मूर्ति की तरह बैठे हैं!

युधिष्ठिरंक अनुज नाम भीमसेन।
तांकर कथा कि तुंभे न शुणिछ कर्ण।।
तिनिषठी पौटि अन्ने तांकर नृपति।
मुंहि तांक सूपकार शुण मत्स्यपति।।

उसने तो सब घर में पढ़ा है। दास जी की पुराण सुन-सुन कर वह बच्चे से इतना बड़ा हो गया। वह जोर लगा कर अपने आप को उस स्वर के ज्वार से मुक्त करता है। दूर से ही थोड़ा सोच कर मन ही मन कहता है- आहा! सौ-सौ सिंह, फिर हजार-हजार सिंहों का बल ! सिर्फ ...गप्पें हैं। इन बेचारे अधमों को ठगने का उपाय है। क्या एक भी बात इनमें से विज्ञान-सम्मत लगती है? ये सब निर्बोध हैं। ये यहाँ झूम-झूम कर सुनने में मस्त हैं। वह लंबे पेंट की जेब में हाथ डाल कर प्रधान बूढ़े को देखता। बूढ़ा सिर्फ आँख मूँदे विभोर हो गीतों को पीता जा रहा है।

चेहरे पर एक अद्भुत असीम संतोष के चिन्ह दिखते हैं। मूर्ख ही तो है। इतनी संपत्ति है। अगर उसको ठीक से काम में लगाये तो यह आदमी कुछ से कुछ कर डालता। तालाब में मछली पालता तो हजारों रुपये मिलते। क्या बूढ़े ने सुना? ना उसमें पाप लगता है। तो सुनो! अच्छा ट्रेक्टर लाकर जमीन में खेती करें। इतनी ग़मीन ! बूढ़े-बाढ़ों को खींच-तान क्यों उनकी जान ली जाय! यह तो हुई लक्ष्मी को रुठाने वाली बात। वह भी न सही, बेटों को पढ़ाता तो सिर्फ इतने पैसों में विलायत हो आते। हाँ, यह खाली पैसों की ही तो बात नहीं, थोड़ी अकल भी चाहिए। हरिया से भालुआ तक किसी ने कभी सलेट तक ढंग से पकड़ी? किसान तो बस हल चलाने के लिए है। कलम पकड़ेंगे कैसे ? छोड़ो इनकी बात! ऐसे अंधविश्वासियों के चलते ही तो यह हालत है।

धीरे-धीरे इंद्रमणि अनुभव करता मानो बहुत ऊँचाई से इन दयनीय जीवों को देख रहा है। मूर्खता के गहरे कुँये में ये मूढ़ पीढ़ी दर पीढ़ी सड़ते आ रहे हैं। परंतु उसका स्थान यहाँ नहीं है। उसने विरक्त होकर मुँह मोड़ लिया।

इसी समय दास जी के मुँह में पान खत्म हो गया है। गीत रुक गया है। बाँये हाथ से टटोल कर बटुवे में से एक पान निकालते हैं। श्रोता भी थोड़ा हिल-डुल कर कमर सीधी कर रहे हैं। सबसे पीछे वृंदा नायक महुवे के पेड़ के नीचे बैठा है। देख रहा है कि इंद्रमणि त्रिपाठी लंबे पेंट की बगल वाली जेबों में हाथ ठूँसे धीरे-धीरे वहाँ से सिर नीचा किये चला जा रहा है। और भी आधे लोग उधर ही देख रहे हैं। उन सपनों में डूबी आँखों से, उस दूर विराट राज्य से। पेंट पहनना उस गाँव के लिए नया ही है। पुराण पाठ के पास से वैसी खास जरुरत बिना उठकर चले जाना भी नया ही है। धीरे-धीरे सब वर्त्तमान की ओर लोट आते हैं। दास जी भी चश्मा थोड़ा खिसका कर उसके ऊपर झाँकते। पास में प्रधान बूढ़ा समय के साथ कहता "पंडित जी का बेटा है इंद्रमणि !" दास जी चश्मा ऊपर चढ़ाते-चढ़ाते कहते- "ओ!!" पर मन ही मन कहते "पंडित का बेटा है न! उसे यह सब कड़ुवा लगने की बात ! नाश हो, युग तो वैसा हो गया रे! किसे कहें? श्री ह...रि... इ......ई...... !

पुराण फिर शुरु हो गया। मोर पंख निकाल कर दास जी ने उसे धीरे से बाँयी जाँघ पर रखा। श्रोता सब ओर से मन खींच कर उनकी ओर देखते रहते। उसी मनोयान पर बैठा कर उन्हें पुनः उस विराट की ओर ले जाते-कोन्त भट्ट, वल्लभ और वृहन्नला के राज्य की ओर। सब जीत में खो जाते, लौट जाते अपने चिरपरिचित विराट लोक को। पर वृंदा नायक नहीं लोट पाता।

वह देखता रहता दूर होते इंद्रमणि को। हूँः ! यह क्या कभी पढ़ाई कर पाता? ब्राह्मण का बालक जानकर दो अक्षर पढ़ जाये यह सोचकर मैं चेष्टा न करता तो चटशाला पूरी कर घर पर ही बैठता। बाप लपलप कर रहा था बेटे को खूब पढ़ा लिखा देने को। उससे क्या चुहिया भी मरती? क्यों रे! वृंदा नायक जाकर जमींदार के बेटे को न कहता तो वह काशी पहुँच भी सकता था? काशी या फाशी?...छोड़ो, छोड़ो ! ये सब क्या समझेंगे याद रखेंगे? ये सब शोचकर क्या फाएदा ? उस दिन की ही तो बात है। नीलकंठ कितनी हड़बड़ी में था! कहने लगा, "नायक जी! आप

को इतनी जगह, इतनी जान-पहचान है। इस लड़के का भी कोई रास्ता निकालते न!" लो, यह भी कोई बड़ी बात है ! वृंदा नायक आज नहीं बीस साल से टिकस ले रहा है। कलक्टर से चपरासी तक सब उसकी मुट्ठी में हैं। आखिर गया हेड पोस्ट आफिस। वहाँ से उस किरानी बाबू को पकड़ा। कहाँ हाईस्कूल के हेडमास्टर, कितनी लिखा पढ़ी! सौ हाथ खोदा तो पानी निकला। रुपये पैसें का हिसाब बैठाया, तब जाकर इंद्रमणि मदनपुर में पढ़ने जा सका। यह सब क्या मामूली बातें हैं। ना, ऐसे-वैसे आदमी से ये काम होंगे? पर हाँ, छोकरा पढ़ा है ठीक से। तो भी मैं क्या बीच-बीच में मास्टर को जाकर कह नहीं आता था? "जरा इस पर ध्यान रखेंगे।" मेरी बात क्या वे ऐसे ही टाल देते? उनके हाथ की ही तो बात है। उसे पहले दर्जेमे पास करा दिया। इस पर हेडमास्टर ने कहा कि वे इंद्रमणि को सरकारी वजीफे से इंजीनियरिंग पढ़ने भेजेंगे। मैंने कहा था- "अच्छा, भेज दीजिये।" नहीं तो यह क्या खाक पढ़ता? छोड़ो! अब इंद्रमणि दिख नहीं रहा है।

नायक ने श्रोताओं की ओर देखा। वृंदा नायक देख रहा है। कुछ कम आदमी तो नहीं है। प्रधान बूढ़ा? नायक थोड़ा मुस्काया। बूढ़ा तो जा चुका था और क्या बचा था ? मेजिस्ट्रेट आया था। तंबू डाल कर इस इलाके को देखने आया था। घड़ी भर तक जमीन की ओर देखता रहा। पूछ ही तो लिया-"यह जमीन किसकी है?" ...प्रधान के तो देवता कूच कर गये। हाथ जोड़ कर कहा - "हुजूर यह सब मेरी है।" साब घूम गये। बस दो- चार बार कलम चला देने से हुआ, और क्या? मैंने प्रधान की ओर आँख मार दी। साहब के पीछे से जाकर मुर्गा, चावल, गाय का घी आदि की व्यवस्था कर दी। प्रधान ने बडी हिफाजतसे सब कुछ पहुंचा दिया पर कितनी आसानी से खिसक गया ! नायक देखता रह गया। किसी के बेटे के लिए बर्तन गिरवी रखकर भी कविराज से दवा लाये हैं। किसी की लड़की के लिए वर नहीं मिल रहा था तो राजपुत्र से भिड़ां दिया। किसी का घर कुड़क हो रहा था तो चतुराई से पान-बीड़ी खिलाकर रद्द करवा दिया। किसी ने पैसे उधार मांगे, तो कोई और किसी काम से आया। इस प्रकार सब तो उनकी ही दया पर बचे हुए हैं। और यह पुराण बाँचने वाला सनातन दास? यह तो नायक को देखते ही काँपता है। उसके पास कभी पैसा होता है ? मैं संभाल लेता हूँ। नहीं तो दास कब का गाँव छोड़ गया होता।

सुकुमार सुंदर तु अटु बलबंता।
केउं दोषे शास्ति तोते बिहिला बिधाता।।
गुपत निमंते हेल छद्मवेशी काय।
पृथिवी कि दिशु अछि अंनग पराय।।
अत्यंत सुंदर तोर सुलक्षण तनु।
भो विधि विराट जेह्ने नकुलेम चिन्हू।।

नायक का अब और पुराण सुनने में मन नहीं रहा। चांद तब तक सिर पर चढ़ आया था। कमर पर हाथ रख कर थोड़ा इधर-उधर मुड़ा। गीत चल रहा है।

उन्मोने मालिकाना स्वर में कहा- "दास जी, ओ दास जी! आज इतने पर ही विश्राम दीजिये।"

दास जी ने पद पर अंगूठा टेक कर चश्मे के ऊपर से देखा। औरों ने भी देखा। अब की नायक जरा दबे स्वर में बोला, "रात बहुत हो गई है, आज इतना ही रहने दें। क्यों जी?" दास जी ने पोथी की ओर देखा, विश्राम निकट ही है। अतः कहा- अच्छा दो पन्ने और हैं। सब फुसफसाने लगे। कुछ ने जरा हाथ-पैर कमर आदि सीधी की। नायक प्रतीक्षा किये बिना ही उठ खड़ाऊ ठक-ठक् करता हुआ चला गया।

"हरि...हरि बोल "की ध्वनि के साथ पुराण पढ़ना समाप्त हुआ। प्रधान बूढ़े ने प्रसाद लेकर बाँटा। दास जी ने मोर पंख बीच में देकर पुराण को गद्दी पर रख दिया और नायक की ओर देखने लगे। वह चला गया यह जानकर उन्हें थोड़ा आश्वासन-सा हो गया। वे थोड़ा डरते हैं उससे। जब कभी वह टिकस के लिए आता दास जी के पास पैसे न होते। दास जी अनुभव करते मानो हमेशा उससे ही उधार-पुधार कर चलना पड़ता है।

इसके बाद दास जी वहाँ से उठे। बैठे-बैठे कमर और पीठ जकड़ गई थी। गाँव वाले एक-एक कर उठ खड़े हुए।

रघु दलेई की माँ धीरे-धीरे जा रही थी। भारी-भरकम देह वाली। कितनी देर में जाकर घर पहुँचेगी! उसकी बात दास जी जानते हैं। उस बेचारी के घर में बहू के साथ कहा-सुनी हो गई सो बिना खाये-पीये आ गई है। झगड़े की बात टुकू की माँ बता रही थी। बूढ़ी घर पर रही तो झगड़ा होगा। इसी डर से चली आती है। जो हो, समझदार औरत है। अपनी आबरु का खयाल रखती है। उसकी तकदीर खराब थी जो हरिपुर में संबंध किया लड़के का। वह पढ़ी-लिखी कम है। अतः बुढ़िया पुराण थोड़ा-बहुत ही समझ पाती। लेकिन ये जो इतने और आते हैं। क्या सब समझते हैं? या समझने आये हैं? सब अपने-अपने मतलब से आये हैं। प्रधान बूढ़े के पास पैसे हैं। उसकी देखा-देखी तो प्रधान की बुढ़िया भी आकर बैठती है। बुढ़िया का मन जरा भी इधर नहीं रमता। वह कुछ नहीं समझती। समझ सकती ही नहीं, क्या करे, पर जग हँसाई से डर कर पुराण बाँचना समाप्त होने तक पैर पसारे बैठी रहेगी। ऊंघते-ऊंघते ही सही, उसकी देखा- देखी उसकी बहू और बेटा भी आते हैं। हरिया सोचता अपनी शादी की तरह यह भी कोई एक पुण्य कर्म है। वह मन लगाकर सेवा करता। अब जगह-जगह समझने भी लगा है।

बांछा केवट के घर से वह बुढ़िया आती है क्योंकि उसका बेटा धक्का देकर भेजता है। वह छोकरा चपरासीगिरी कर दो पैसा कमाता है। वह चला है सब में मिलकर एक होने के लिए। सब खाते-पीते घरों की औरतें आती हैं। तू भी जा साफ सुथरी होकर जाना। धर्म की बातों में अब क्या छोटा-बड़ा है। बूढ़ी बेचारी आती है। बड़ी सीधी-सादी औरत है। कुछ समझे या न समझे, केले के पत्ते पर चार गेंदे के फूल लाती है। वह आधे समय तो सुनती है और बाकी समय ऊंघती है।

कच्ची उमर के ये छोकरे ओस में घूमते-घामते घड़ी-दो घड़ी खड़े होते हैं। कीचक भीमसेन प्रसंग सुनकर चले जाते हैं। उनमें से एक जानका अहीर की बेटी को घूरता रहता। ताड़ के नीचे यह झुंड उस लड़की की प्रतीक्षा में ताकता रहता। इस बात को दास जी जानते हैं। वह भी इन्हें देखकर बहुत सम्मान दिखाता। बचपन

से वह माँ के पास ही है। बाप किसी जमाने से गुजर गया है। चार बीघा खेत है। उसी से दोनों की गुजर होती है। बेचारी लड़की को लेकर पुराण सुनने आती है। आशा है कभी प्रधान बूढ़ा दया कर बेटी को कहीं ठिकाने लगा देगा।

वृंदा नायक आता भय से। उसे किसी ज्योतिषी ने हाथ देखकर बता दिया है कि तू दो बर्ष ही और जी सकेगा। हाथ से पैसा खर्च कर वह कभी पुण्य कर्म करेगा नहीं। कार्तिक के महीने में पीतल की दुअन्नी का दान देता। चार पैसे के काम में तीन पैसे का लाभ है। मुफत की पुराण बँचती है, सो सुनने चला आता है। पोटली भर पुण्य बाँध ले जाने के लिए। नहीं तो वह आता? कर, कपाल, कुंडली इन्हें कौन काट सकता है ? भाई... अच्छा! नीलकंठ पंडित क्यों नहीं आता? बुढ़िया तो कभी कभार आ ही जाती है। वह बेचारी भली औरत है। यह ठहरा खुर्राट! क्यों रे तू पंडित हो गया, तो क्या पुराणों को भी नहीं मानेगा? हाँ असल बात तो यह है कि वह आता, यदि दास जी न बाँचते होते। इसलिये न वह थोड़ी-सी उनकी उपेक्षा करता है। उन्हें सारा गाँव बीच में बैठाकर सम्मान दिखाये, वह इसे सह नहीं पाता। क्या रे! तू ऐसा कहाँ का बड़ा बैदिक ब्राह्मण आया-हम क्या खाली दान लेने वाले हैं ? या भुक्खड़ या..........

तू तो जात का तिवारी बनता है। नन्द! ओ! उसकी ऐसी की तैसी! मुआ सामवेदिया! अच्छा जाने दो। न सही। हूँ! न आने पर क्या हो गया। सारा गाँव तो आता है। मगर इतना पढ़ा लिखा है जो सब जानता है। इतनी छोटी-सी बात पर गुमान करके घर रह जाता है। अरे! अमृतं भारतं कथा- किसी की जीभ पर आने से क्या भारत ही पड़ जायेगी। दिखावे की ऐंठ करके तू ही भूखा रह रहा है।

हरिया ने बाँध-बूंध कर पुकारा- "जी, हो गया।"

बड़ा भला लड़का है हरिया! उसके बाप ने कहा है- पुत्र प्राप्ति के लिए यह सब कर रहा है। यह भी इसमें विश्वास करने लग गया है। बेचारा लड़का अच्छा है। "हरिहर, सुनते हो तो, वत्स हरण के समय अच्छी दुधारु गाय का बंदोबस्त कर रखना। समझे तो ! गाय-बाछड़ी का दान करना होगा। तभी तो फल मिलेगा? सुनो, मैं बताता हूँ, इधर आओ... तुम्हारी वह काली गाय है न। देखो, इसमें और आगा-पीछा करने की जरुरत नहीं। बापू को कह कर उस गाय का संकल्प करा दो, बस ब्राह्मण को संतोष है। हम कहते हैं भगवान की कृपा से पुत्ररत्न अवश्य होगा।"

सिर पर हाथ फिरा कर आशीर्वचन बोलने जा रहे हैं। उनकी आवाज प्रधान बूढ़े ने सुनी "क्या दास जी आप हैं! बहुत देर कर दी, आज तो!!"

"अरे सच! लो भई, ये उठा!" कहकर गमछे को कंधे पर डाल लिया। कहा- "देखो भई प्रधान, ऐसा धर्मात्मा पुत्र तो भाग्य से ही मिलता है। ठहर जाओ। अगले वर्ष तक पोते को गोद में खिला रहे होगे।"

दास जी रास्ते में सोचते जाते हैं। इस बार पुराण बैठा है। तीन महीने तो बच्चों को बताशे दो-चार मिलेंगे। बस, गाय मिल जाती तो टुकुआ के लिए दो बूँद दूध हो जाता। प्रभु ! जो तुम्हारी इच्छा!

"...अरे नहीं रे ! यह कोई नफे की बात है ? लाभ की आशा से कोई पुराण बाँचता है? बात यह नहीं है। हाँ गुण है, तो सब जगह पूजा पायगा। प्रधान की गरज पड़ी, पुराण चलायी। और दक्षिणा क्या नहीं मिलती? ना, ये खील-बताशे कोई और लेता?...

हम भी मन में गाँठ रख ही पुराण बाँचने आते हैं। इससे कोई इंकार करता है? वैसे देखा जाय तो सभी कपट रखते हैं। आदमी की जाति ही मायावी है। कौन कितने लंद-फंद में फंसा है? कोई किसी को अब और कैसे समझे? कुरु-पांडवों का जूआ खेलना क्या कपट है? यह जूआ तो हम खेलते हैं। सीधी-सपाट बात तो है नहीं आदमी के पास। मुखौटे बाँध ठग बने बैठे हैं। ऊपर कुमुदिनी खिली देखो, और नीचे बस सड़ता कीचड़ ! खूब जीव है। यह आदमी का बच्चा कभी साढ़े तीन हाथ जमीन पर भी छोटा रहेगा। पीले पत्ते की तरह चैती बयार में कब झड़ जायगा, ठिकाना नहीं- पर कितना गुमान है ! बेटे में, कितनी माया ! छिः इन्हें समझ जाय ऐसा तो देवता भी मिलना मुश्किल। यह माया तो नारायण के लिए भी अगोचर ठहरी भई !

रुक गये थोड़ा खंखार कर। जरा गला साफ किया, बगल से डिब्बा निकाला। ठीक से चूंटी भर जीभ पर रखा और ऊँचे स्वर में सुना कर बोले- अरे जा... रे ! जिसने यह नगरी रची है वह क्या जानता नहीं ? उसके न पसंद आया तो इस लोंदे को तोड़ने में कितनी देर लगेगी ? हम क्यों उसमें सिर मारें?... हरि नारायण...ऊँ"

दास जी ने सीधे घर की ओर वाले रास्ते को पकड़ा।

# स्वजाति

"व्याघ्रस्य गोत्रस्य.... शाकुंचन प्रवराय..... अपुत्रिकाय भीष्म वर्मणे........"

कुशपात्र लिये दास जी तालाब से लोट रहे थे। सुबह तिल-तर्पण किया तब से सारे रास्ते गुनगुना रहे हैं। "अपुत्रिकाय... भीष्म वर्मणे..." आहा! कैसे महापुरुष हैं ! एक बूंद पानी देने के लिए भी कोई न रहा। सत्य के लिए तो! उनका गला भर आया था। आँखों से ढलती आँसुओं की बूँदें दास जी ने गीले अंगोछे से पोंछ दी, उनका मन तो कर रहा था मानो अनाथ बालक की तरह हू...हू...कर रोएँ !

नाक की सूँ..सॉं दरवाजे तक पहुँच गई। गला खँखार कर नाक-कान पोंछ डाले। सोच रहे हैं- ऐसे पुत्र भी इस धरती पर जन्म लेते हैं ! अहो भाग्य! वे महापुरुष! प्रतिज्ञा में तो देवताओं से भी बाजी मार ले गये। उनकी युग-युग में कोटि-कोटि संतान हैं।"

दास जी घर में चले गए। आज उनका मन कुछ भींगा-भींगा सा हो रहा है। और करुणासिक्त-सा लग रहा है। वे कुछ भाव-प्रवण हो गये हैं। किस तरह उनमने-से सब कुछ करते चले जा रहे हैं। घर में ठाकुर जी की स्थापना की। बेटा चटशाला गया। टुकुआ को पैरों पर बिठा कर कुछ भोजन किया। सब तो हुआ, पर मन में कुछ उदासी-सी बनी हुई है।

चटाई बिछा कर बाहर बरामदे में दास जी अकेले ही घुटनों में सिर छुपाकर बेठ गये हैं।

याद आयी वही तिल-तर्पण वाली बात और नीलकंठ पंडित!... घाट के दाहिनी ओर वाले पत्थर पर पंडित जी बैठे तर्पण कर रहे थे। चेहरा काली चमकीली दाढ़ी से भरा था। उन पर खूब फबती थी! ताँबे के तार जैसी जनेऊ! सच, शुद्ध संस्कृत उनके मुँह से इतनी अच्छी लगती है, आहा! नीलकंठ पंडित जी भी रुआँसे-रुआँसे होकर भीष्म को तिलांजलि दे रहे थे!

"मेरे भैया रे!" कह कर घुटनों तक पानी में मन ही मन जाकर उसे बाँहों में भर लिया। दास जी कुछ क्षण आँख मींचे बैठे रहे। आँख खोलने पर मानो दो धार अँसुवन की बह निकली। जल्दी-जल्दी उन्हें पोंछ डाला।

अचानक याद आई अपने पिता के अंतकाल वाली उस दिन की वह बात। संध्या से ही पिता के पास दासजी एकादश स्कंध भागवत पढ़ रहे थे। आधी रात हो गई! आँसू की बूँद टप.. टप पोथी पर पड़ रही थी। और बह रही है निरंतर। वे पढ़ते जा रहे थे। बीच में बड़ा लड़का रोया और फिर सो गया। संध्या समय ही पिता सबसे हाथ के संकेत द्वारा एक-एक घूँट गंगाजल ले चुके थे। और कुछ नहीं, बस अंतिम बुलावे की प्रतीक्षा करना था। अध्याय समाप्त जहाँ होता, दास जी जरा रुकते। उन्हें लगता जैसे कोई दबोच रहा है। रात गरज रही थी। एकदम सुनसान! भय-सा लग रहा है। पिता की ओर देखा। वे उसी तरह आँख मूँदे लेटे थे। फिर पोथी की ओर मुँह कर पढ़ते गए।

गंगाजल देते समय जो हूक उठी थी वह अब थोड़ी कम हो गई। कमर सीधी करने बाहर आये। ऊपर की ओर देखा। रात तब तक दो घड़ी और बाकी थी। बगल वाले कमरे में पत्नी और लड़का दोनों सोये थे। उन्हें लगा जैसे चारों ओर कोई गहरी छाया घिर आई है। पिता के कमरे में कोई आवाज आई। हड़बड़ी में भीतर घुस गये। देखा, पिता चारों ओर आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे हैं। लगा वे उन्हें खोज रहे हैं। दास जी पास खड़े हो गए। उन्हें देख पिता थोड़े-से मुस्कराये से जान पड़े...

"जरा-सा तंबाखू देना, सनेई।" चौंक उठे दास जी। तीन दिन के बाद पिता ने मुँह खोला है। आवाज बिल्कुल साफ और स्पष्ट! कोई कह सकता है कि एक महीने से इनके पेट में एक दाना भी नहीं गया ! दास जी का मन कितनी बड़ी आशा से भर गया ! थोड़ी-सी तंबाखू और चूना मिलाकर हथेली पर मसल रहे थे। देखते-देखते पिता का चेहरा म्लान पड़ गया। दास जी चूने और पत्तों को ओंठ के पास तक ले गये। पिता अभी सचेत थे। मुँह खोल कर उसे ले लिया, पर कुछ कहा नहीं कि आँख खोल कर देखा नहीं। "नहीं समय हो गया।" दास जी ने विकलता से पिता का हाथ पकड़ लिया, "बापू ! मैं अकेला क्या करूँगा ? मेरा अपना कौन है ?" तब तक उनकी जीभ उलट-सी गई थी। वे जैसे अपने को निचोड़ते हुए कह रहे थे "ज..ग..न्ना..थ ! ज..ग..न्ना..थ !"

हड़बड़ा कर दास जी ने पत्नी को पुकारा। एक ने सिरहाने और दूसरे ने पैताने से उठाया। सैकत सैया पर उतार लाये। कुछ ही क्षणों में साँय...साँय करती हुई हवा भी एकदम थम गई। चारों ओर निस्तब्धता सनसना रही है। दास जी घड़ी भर तक वैसे ही खड़े रहे। इसके बाद तो हथेली से मुँह ढाँप कर बच्चों की तरह बिलख-बिलख कर रोये। अपने कलेजे के टुकड़े की तरह पिता ने उन्हें कितने लाड़-प्यार से पाला-पोसा था। अब जो हो, आहा, कहनेवाला भी कोई नहीं रह गया। इस असहाय अनाथ को रोने पर पुचकारने वाला और कौन है ? दास जी ने आँखें खोली। अंदर से छाती कुरेदी जा रही है। आँखों से निरंतर धार बहती जा रही है। पर अब और समय कहाँ ? रात बीत गई तो लाश बासी हो जायेगी ! उनके रहते-रहते बाप की लाश बासी होकर निकलेगी ?

नहीं...नहीं... हथेली के पीछे आँसू पोंछ कर अंगोछा कंधे पर डाला और निकल पड़े। ..कैसा संकट है जगन्नाथ ! हे प्रभु ! तुम्हीं पार करो ! बस एक भरोसा, एक बल, एक आश विश्वास !

पाटपुर उनके गाँव के पास ही है। वहीं उनके कुटुंब के लोग रहते हैं। घर में श्राद्ध होता है तो "क्यों खिला रहे हो? अपनी जमीन खेती-बारी सब तो ये दबा बैठे। गाँव छोड़कर यहाँ रहना पड़ा। फिर ऐसा क्या प्रेम पालना ?"...पिता कहते "अरे खून में भी कभी दीवार खड़ी होती है या पानी में कभी लकीर पड़ती है ?" "मेरी कौन-सी लंबी चौड़ी संपत्ति थी जो दबा ली गई ? बँट-बँटा कर इतनी-सी तो जमीन थी। मैं खाता, न सही, वे खा रहे हैं। क्या हो गया उससे ? तब क्या उन्हें बुलावें भी नहीं ?" दास जी को पिता की बात खूब जँचती थी।

जरा लंबे डग भरते हुए पाटपुर पहुँचे तो देखते हैं कि सब घर-द्वार बंद हो चुके हैं। घर-घर जाकर आवाज देने लगे। अंत में जिसने किवाड़ खोला वे उनके

रिश्ते में काका होंगे। दास जी ने बहुत जोर लगा कर कष्ट से कहा- "बापू नहीं रहे !"

"ओहो ! तो बेटे इस बूढ़े को तुमने पुकारा ! इसके हाथ से क्या होगा ? तू रात में इतनी दूर क्यों आया है ? सुबह को ही आ जाता तो क्या नहीं होता ? गाँव के सब तो ब्रह्मभोज को चले गये।"

"क्या हुआ ?" दास जी सोचने लगे। उन्हें इतनी बार कहा है कि इन तीन-चार दीन जरा होशियार रहना। क्या वे लोग जीमने निकल गये !"

सिर्फ इतना पूछा "रात बीतने के बाद, क्या पिताजी का बासी शव उठेगा ?"

"अरे बेटे इससे क्या होता है ? तू अकेला बच्चा है। जब थोड़ी देर हो ही गई। मेरे बापू भी फिर बासी ही निकले थे। याद है, या नहीं ?.. यहाँ और अब क्या किया जा सकता है ?" दास जी वापस घूम गये और चटपट लौट पड़े। मगर इसके बाद क्या उपाय हो ? याद आये भगिया भैया। वे पिताजी के सगे भानजे हैं। रत्नपुरा वाली बहन के लड़के। खेत-बाड़ किसी की ओर नहीं देखा और लांघते हुए चल पड़े। सौ दफे बस पूरब की ओर देख रहे थे और तेजी से जा रहे थे।

उन्हें और कुछ नहीं दिख रहा था। गाँव पास आ गया। दास जी सिर झुकाये चले जा रहे हैं। किसी ने पुकारा "कौन है ?" दास जी ने चौंक कर देखा, भगिया भैया खड़े हैं। एक हाथ में रस्सी है दूसरे में कुल्हाड़ी है। शायद पहाड़ी पर से बेंत काट कर लाने निकले हैं।

उनको जैसे ही देखा दास जी लिपट कर रो पड़े।...भैया सब समझ गये। पूछा -"पाटपुरिया कोई नहीं आया ?" मुँह से कुछ न कह कर दास जी ने खाली सिर हिला दिया। वे पहले से ही जानते थे, यही होगा। कुल्हाड़ी और रस्सी को वहीं झाड़ी में फेंक दिया। बोले - "मत आने दो सालों को! चल में चलता हूँ।" दास जी को थोड़ा धीरज लगा। दोनों भाई चल पड़े।

घर आकर पहुँचते-पहुँचते सिंदूर बिखर चुकी थी। दूर से ही देखा कुछ लोग उनके घर के सामने खड़े हैं। पास आने पर देखा रतना गौड़ - जानका का बाप सनाथी (अरथी) में रस्सी बाँध रहा है। अनंत प्रधान दो जनों के साथ खड़ा है। बूढ़ा शिवराम दलेई दास जी की पीठ सहलाता सहलाता बोला - "अरे तू तो मेरे बैटे जैसा है। बेटे अधीर मत हो। हम गाँव वालों के रहते दास जी बासी नहीं होंगे।" कितने उदार हैं ये लोग ! दास जी की इच्छा हो रही है सब कुछ भूल कर बूढ़े के चरणों में लिपट जाऊँ।

भैया ने कुछ नहीं कहा और काम में लग गए। सब काम पूरा कर गाँव के छोर पर श्मशान पहुँचते उजाला हो आया। सूरज नहीं उगा अभी भी। प्रधान बूढ़े ने सूखा काठ पहले से ही रखवा कर व्यवस्था कर दी थी...। काँपते हाथों दास जी ने मुखाग्नि दी। आँख मूँदे वहाँ से उठकर चले आये। प्रधान ने दो टीन गाय का घी मंगा कर रख लिया था और कोई असुविधा नहीं। भगिया भैया के शरीर में भीम की-सी ताकत थी। मानो वे अकेले ही मामा को ले आये हैं। दास जी ने तो हाथ ही लगाया होगा। भैया ने कहा - "सनेई, अब तू घर चला जा। यहाँ और रहने की जरुरत नहीं है।"

कुछ ही देर में काठ ने आग पकड़ ली। पॉच-छः पाटपुरिया भी आ पहुँचे हैं। भैया दोड़ गए उनकी तरफ। क्या उन्हें तोड़-मरोड़ कर आग में फेंक देंगे ! इतनी जोर से चिल्लाये "भाग जाओ साले यहाँ से! नहीं तो इस खूँटे से सिर फोड़ डालूँगा। खाने के समय दुष्ट सरक कर मामूँ के घर खायेंगे।... काम पड़ने पर मुँह भी नहीं दिखायेंगे ! क्या कहा था, मामू की लाश बासी हो जायगी तो क्या होगा ?....चले जाओ यहाँ से !"

अपराधी की तरह वे बेचारे सरक कर खड़े हो गये। दास जी को पता नहीं क्यों बहुत दया-सी आ गई। वे लोग तो अमीर नहीं हैं। एक जून कमा कर न लायेंगे तो दूसरी बेला घर में चूल्हा भी नहीं जलेगा। आह, बेचारे ! सुनते ही तो रातों रात दोड़े हैं। अब क्या करें ? पर भैया के उस क्रोध में मुँह खोलने की हिम्मत नहीं हुई किसी की।

दास जी ने बाद में सुना कि भैया घड़ी भर चुपचाप चिता की ओर देखते रहे। आँखों से आँसू बहते जा रहे हैं। पता नहीं क्या सोचा हाथ की लकड़ी को घुटने पर रखकर तोड़ डाला और दूर फेंक दिया। "मामा ! मैं तुम्हारे शरीर में लकड़ी नहीं लगाऊँगा। मैं कपाल क्रिया नहीं कर सकूँगा। तुम तो सत्य पुरुष हो। देखो, मामा, मैं अकेला आदमी ठहरा। तुम वैसे ही जल जाओ..." सच दीया जलने की तरह सब कुछ जल गया ! दास जी के पिछवाड़े से धू-धू कर जलती चिता दिख रही है।

XX XX XX

दास जी घुटनों में सिर रखे बैठे हैं। लगा जैसे पीठ छू कर कोई कह रहा है... "पिताजी !" सिर उठाकर देखा तो टुकुआ पान लिए खड़ा है। क्षण भर में मन लोट आया कल्पनालोक से। इस लड़के को देखकर दास जी सब कुछ भूल जाते हैं। आठवें गर्भ का है। ज्योतिषी ने बताया है कि यह भाग्यशाली होगा। दास जी ने पलथी मार कर उसे गोद में बैठा लिया। पान को मुँह में डाल कर लंबी सांस खींची और बाहर देखने लगे। किवाड़ की दरार में से पत्नी सब कुछ देख रही थी। देखा, दवा असर कर रही है। दास जी के किस रोग की कौन-सी दवा है, वह अच्छी तरह जानती है। वह आहिस्ते से रसोई घर में चली गई। कुछ समय तक सामने के दाँतों से सुपारी का टुकड़ा कुतर कर आकाश की ओर ताकते रहे। अंत में कहा - "नहीं, नहीं, चलें जरा नीलकंठ पंडित के घर हो आयें कितने दिन से नहीं गये। "उठ बेटे", लड़के को लेकर वे उठ खड़े हुए।

कंधे पर चद्दर और हाथ में छाता लेकर धीरे-धीरे पंडित जी के घर की ओर चल पड़े दास जी ! रास्ते में श्याम मलिक मिल गया। दास जी को देखते ही नमस्कार कर दी। दास जी ने भी प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वाद दिया, "आयुष्मान भव !" क्या चिट्ठी पत्री लेकर चल पड़े बेटे !"

"नहीं जी, सुबह और चिट्ठी-पत्री कैसे लूँगा ? वह काम तो दस बजे शुरु होता है।"

"ओ ! सच रे ! मुझे तो उस बात का खयाल नहीं रहा।"

चौराहे पर कोई कालबेलिया लड़कों को जमा कर साँप नचा रहा था। वहीं दास जी जरा खड़े हो गये। बड़े-बड़े गोखर नाग फन फैलाये खेल रहे हैं। सँपेरा पिटारों का ढक्कन हिला रहा है। स्वर ऊँचा कर गीत गा रहा है-

नंदर घरे जिबे कृष्ण जे बासुदेव - - - - हरि
अंधारे न दिशइ पथ।
मेघ जे माल माल मथुरा भुवन - - - - हरि
बिजुलि कढ़ाउछि पथ - - कि गोविंद हरि - - -

बच्चे अपलक देख रहे हैं। एक लड़का भागता हुआ आ पहुँचा। थककर हाँफ रहा था। मगर साँप को एक लय से देख रहा था। दास जी भी बहुत उत्सुकता से बच्चों की उस भीड़ में खड़े देख रहे हैं।

साँप जैसा जीव ! इस सँपेरे ने भी खूब सिखाया है। इसके डर से ही ये कालसर्प इस प्रकार पास-पास फन फैलाये खेल रहे हैं। नहीं तो कभी के काट-कूट कर मर जाते। दुष्ट हुए तो क्या आपस में चोट कर मारा-मारी करेंगे ? कोन जाने ?

वहाँ से चल कर दास जी पंडित जी के दरवाजे पहुँचे। घर के आगे नये पत्तों वाले दो नारियल के पेड़ हैं। घर के बाहर वाला छोटा बरामदा पीली मिट्टी से पुता है। साफ-सुथरा लग रहा है। बरामदे में नारियल के पत्तों की चटाई बिछी है। वहाँ शायद जाड़े में धूप आती होगी।

दास जी ने सीढ़ी पर पैर रखा ही होगा कि भीतर से इंद्रमणि निकल आया। दास जी को देखते ही दंडवत किया। दास जी ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया "आयुष्मान भव ! क्यों बेटे, पिता घर में हैं।"

अभी तो बैठे कुछ लिख रहे थे। बैठिए बुला देता हूँ। "अच्छा, बुला देना ऐसी जल्दी क्या है ? कोई खास जरुरी काम भी नहीं। बहुत दिनों से तुम्हें देखा ही नहीं। क्यों, तुम्हारी पढ़ाई खत्म होगी भी या नहीं ?" दास जी चढ़कर बरामदे में बैठ गये।

"बस, यही साल तो और रहा। मैं तो पूजा की छुट्टियों में घर आया हूँ। पिताजी ने लिखा कि कुछ दिन वे पुरी सम्मेलन में जायेंगे। घर पर मेरा रहना उचित होगा। और माँ का भी मन मुझे देखने को कर रहा था। अच्छा, मैं जरा पिताजी को बुला दूँ।"

उसकी हल्की-हल्की- सी हँसी, गोरा मुँह, गठा हुआ बदन। दासजी को बहुत सलोना लगा। ऐसा तो एक ही बेटा बहुत है। और नहीं तो सौ होने पर भी क्या ?

नीलकंठ पंडित जी बाहर आये। पाट की धोती पहने, रामनामी चद्दर ओढ़े थे। दास जी को देखते ही मुस्कराकर पूछा.. "क्यों भाई दास ! आज किधर निकले ? अरे ओ इंदु पान का बटुआ तो भेज देना यहाँ !"

दोनों नारियल की चटाई पर बैठे। पान वहीं बनाया गया। यों ही अनेक सुख-दुख की बातें हुई। बचपन की भी चर्चा हुई। अंत में दास जी ने पूछा, "बेटा कह रहा था कि तुम पुरी जा रहे हो, क्या ?"

"हाँ मुक्तिमंडप में एक पंडितों की सभा हो रही है। सारे देश से पंडित जुटेंगे। उड़ीसा से पाँच चुने गये हैं। मुझे कहा गया है कोई लेख पढ़कर सुनाने को।"

दास जी इशारा समझ गये। अच्छा, अपनी जाति-बिरादरी का लड़का होता है, वाह ! कुल सपूत तो नीलकंठ ही है। वह क्या पीछे रहेगा ! इस देश की टेक रखेगा। कहा - "अरे वाह ! यह तो गौरव की बात है ! तुम्हें इतना सम्मान मिला,

लगता है जैसे हमें मिला हो। कब प्रस्थान करोगे बताना। सभा की बात तो पीछे, पहले जगन्नाथ जी के दर्शन तो होंगे, दिन-बार देखकर निकलना।"

बगल में पंचांग रखने की आदत पड़ गई है। कपड़े लत्ते पहन कर निकलते समय पता नहीं कब पंचांग भी ले लिया था। कुश का चिन्ह निकाल कर जरा दूर रखा। देखने लगे - "आज हुआ शनिवार, कल रविवार, परसों शुभ है। दिवा सात घंटा गते माहेंद्रबेला! योगिनी..दक्षिणे। वाह ! पृष्ठ योगिनी हुई।" बड़ी प्रसन्नता से पंचांग बंद कर हँसते-हँसते ऊपर की ओर देखा। तब तक वहाँ कोई न था। सोचने लगे क्या पंडित उठकर चले गये ? अच्छा, अंदर कोई काम आ गया होगा ! दास जी तनिक अप्रतिभ न हुए हों, ऐसी बात नहीं। शायद ये पंडित लोग ऐसे ही होंगे। मन इस तरह चंचल न हुआ तो वह कैसा पंडित ! दास जी मुस्कुरा रहे थे। तभी पंडित जी ने आकर पूछा - "क्या हुआ दास जी, क्यों कोई जोग बैठा ? बटुवे में सुपारी न थी, दो टुकड़े लाने अंदर चला गया। किस दिन का मुहूर्त निकाला, फिर ?"

तो ये बात हुई! दास जी तो यों ही कितना कुछ सोचते चले जा रहे हैं।... नहीं, नीलकंठ पंडित आदमी ओछे नहीं हैं।

इसी बीच वही सँपेरा पिटारियाँ झुलाता हुआ चला जा रहा है। उसके पीछे बच्चों का झुंड। इंद्रमणि भी कपड़े पहन कर कहीं घूमने निकल गया। पता नहीं क्यों इच्छा हो रही थी घर लौट जाने की। और तो कोई बात नहीं, परंतु कब तक यों ही बैठे गप्पें मारते रहेंगे ?

पंडित जी ने पान पर सुपारी के टुकड़े डाल कर मुँह में दबाते कहा - "वहाँ पुरी में और भी कई काम हैं। इंद्रमणि के लिए एक नया प्रस्ताव आया है। ...लेकिन हम वहाँ पहुँचें तब जाकर तो सारी बात तय हो।"

पंडित जी को यात्रा के मुहूर्त वाली बात का और खयाल नहीं रहा अतः दास जी ने भी प्रसंग नहीं उठाया। कहा- "इंद्रमणि के लिए रामचंद्रपुर में बात चल रही थी, उसका क्या हुआ ?"

"कौन- सा रामचंद्रपुर...ओ ! वैसे तो सौ जगह बात चलती है। परंतु वहाँ क्या संबंध करना ? वैसे हाँ, प्रजापति संबंध, कौन कह सकता है कहाँ होगा ?"

इसी समय आ पहुँचा श्याम मलिक। कहा- "दास जी, आपके घर जाकर एक बार खोज आया। इधर आप यहाँ बैठे हैं। मैं और कहाँ से पाता ? आप की बंद लिफाफे में कोई चिट्ठी आई है।"

चिट्ठी कभी कभार ही आती है गाँव में। और दास जी के पास तो और भी कम। दास जी ने इधर...उधर देखकर चिट्ठी ले ली। पंडित जी देख रहे थे... अंदर क्या है कौन जाने ? किसने दी होगी ? साला ! कोई भी तो डाल सकता था !"

अंदर से निकला एक बहुत सुंदर निमंत्रण पत्र ! स्पष्ट उड़िया अक्षरों में छपा है :-

"उत्कल संस्कृत संसद के तत्वाधान में अखिल भारतीय पंडित सम्मेलन आगामी प्रतिपदा को हो रहा है। आपसे विनीत अनुरोध है कि अनुग्रह पूर्वक पधार कर सभा में योगदान दें। इति।"

उनके अनजान में ही पंडित जी का गोरा मुँह लाल पड़ गया। जरा हँसना चाहा, पर हँस नहीं पाये।

"देखें, देखें ! यह क्या आपके नाम आयी है ?" इतना कहकर पंडित जी उस पत्र को उलट-पलट कर देखने लगे।

दास जी भी माजरा समझ नहीं पा रहे थे। ...अरे मैं कहाँ और यह पंडित सभा कहाँ ? मेरे पास क्यों कर निमंत्रण पत्र आया ? मैं ही क्या यह सनातन दास हूँ ?... किसी और की चिट्ठी दे गया ?

"अरे ओ ! सुना पंडित, यह सब उस गदाधर के ही काम हैं। वह मौसेरा भाई है। पुरी संस्कृत कालेज में काम करता है। पिछली बार कार्तिक में पंचकों के पांच दिन वहीं ठहरा था। ये प्रधान के लिए श्री मंदिर पर पताका चढ़ानी थी, तो गया था। ..तो वही हुआ। यह पत्र उसी ने भेजा है।"

"अच्छा ! नहीं तो मैं सोच रहा था ..कैसे आया ? और भी हजारों को ऐसे ही कार्ड मिले होंगे। सभा में बैठकर सुनने के लिए भी तो लोग चाहिएं। अच्छा, तो चल रहे हो ? चलो साथ ही चलेंगे।"

"पागल हो गये तिवारी जी ! मैं कहाँ और यह सभा कहाँ ? मैं क्या जा सकूँगा ? तुम ही जाकर आओ भई !"

चिट्ठी हाथ में लिए दास जी उठे। पंडित जी भी थोड़े खिन्न मन से उठकर खड़े हो गए।

रास्ते में दास जी को सारी बातें गड़बड़ होती-सी लगीं। अच्छा यार तू तो जायगा। कितना सब पढ़ा है उसे सुनाने। तुम्हें तो पेड़ की चोटी पर चढ़ने की तरह लग रहा होगा। और मुझे इनमें से एक मिला तो तेरा चेहरा क्यों मुरझा गया ? अरे छोड़ो भी, यह आदमी का स्वभाव बड़ा विचित्र है। उस दिन प्रधान के घर में मझला लड़का कह गया- "नीलकंठ पंडित तो खाली नाम को काशी गये थे।" मैंने उसे मुँह पर ही झाड़ दिया। मुझे लगा जैसे वह मेरे परिवार के किसी आदमी की निंदा कर रहा है। नहीं तो इस लुच्चे के लिए कभी कुछ कहने की जरुरत है ? वह तो दूसरे की श्री जरा भी नहीं सह सकता - ईर्ष्यालु कहीं का ! ले-देकर कहीं मेरा जरा-सा भी सम्मान देखे तो इस की आँख में चुभता है। क्यों रे, ये क्षुद्र जंतु तो आपस में लड़ते हैं। पर आदमी इतना पढ़-लिख कर भी यही करे तो उनसे किस बात में अधिक हुआ ? ठीक ही तो है। "स्वजाति पर हिंसका:।" अरे तू मुझ से ईर्ष्या कर क्या लेगा ? पंडित है। इतनी छोटी बुद्धि क्यों अपना रहा है ?

# रथ जो लौट के ना आये

"थोड़ा आमिष हो तो खाने में जितना आनंद आता है और किसी भी चीज में नहीं। हजार दूध-दही खाओ, उससे क्या ऐसी तृप्ति लगती है ? ए...ए...हरि...नारायण !"

उस दिन ठंडी बर्फीली हवा हाड़ कंपा रही थी। दास जी शाम को ही जल्दी-जल्दी लक्ष्मीनारायण की पूजा समाप्त कर बाहर आ गए।

...घर में मेहमान आकर बैठा होगा, बिना आये भी कोई गति है... खबर नहीं, कोई बात नहीं, भरी दोपहर में धम् से मछली का थैला पकड़े आ पहुँचा !

"क्यों पंडित जी, सब ठीक है तो ?" ...दास जी बरामदे में खड़े थे। मुड़कर देखा तो सुदर्शन है। टुकू की माँ का चचेरा भाई।

"कौन नंद, अरे तुम किधर ? आओ, आओ ! अरे ओ बट, पानी लाना, तुम्हारे मामा आये हैं !"

गठड़ी में चिवड़ा, कुरमुरा, आदि पता नहीं क्या कुछ रहा होगा, पर मछली वाली पुड़िया में बढ़िया से बढ़िया सात खैंगा मछली ! वाह ! खूब !

तभी दास जी मंदिर से जल्दी लोट आये हैं। खाना-पीना भी जल्दी ही हो गया। बरामदे के नीचे सिगड़ी जलाकर उसके चारों ओर बच्चों को लेकर सनातन दास बैठ गये। मन बहुत खुश है। बरामदे में सुदर्शन नंद बहन के साथ कुछ बातों में लगे हैं।

"नन्द, इधर सरक आओ ! जरा हाथ सेंक लेते। अरी ओ ! पान का बटुआ तो लाना इधर ! और इस बट के हाथों जरा दाँत-कुचरनी भी भेजना। बट, जा बेटे, जरा लाना तो। उठ, जयी पीछे से उठ जा जरा, तुम्हारे मामा को जगह दो।"

"ओहो ! रहने दें। बच्चा बैठा है। उसे उठाकर कोई हम बैठें ? बैठे रहो बेटे। मैं यहाँ चटाई पर बैठा हूँ।"

टुकू की माँ पान का बटुवा लाकर खड़ी हो गई। एक तरफ खाली जगह देख कर वे भी सिगड़ी के पास बैठ गई। वे पान में चूना लगा रही थी और दास जी ने मोटी सुपारी छाँट कर सरोते पर रखी।

"यह मछली का बेसर तुमने पकाया है या उस बहू बेटी ने ?" "जाओ जी, वह तो बच्ची है उसे काम सिखाने से ही तो होगा। सिर्फ साल भर में ही वह सब सीख जायेगी क्या ?"

दास जी थोड़े में ही स्त्री बुद्धि समझ गये। प्रशंसा को कौन नहीं चाहता ? और कोई मौका होता तो बहू की ओर से दो-चार बातें कहते। छोड़ो। इसकी तो बुद्धि भी इतनी-सी ही है।

"अच्छा अरे नन्द, वह मछुवारिन मुक्ता की माँ लगान में मछली देती है तो ?" "हाँ, वही अकेली देती है। पर वह बूढ़ी हो चली है। आजकल उसकी दो बहुएँ लाकर मछली बेचती हैं।"

"यह पान तुम लो। इसमें मोटी सुपारी है। तुम तो जवान छोकरे ठहरे। समझे, उस मुक्ता की माँ को मैं किस जमाने से देखता आ रहा हूँ। रतनपुर अब ससुराल हो गया, नहीं तो वह हमरी ननिहाल था।"

"हाँ, आपके मामा का गतवर्ष देहांत हो गया। उनके लड़के लड़की-बच्चे वगैरह कोई कहीं, कोई कहीं काम धंधे में लग गए। उनमें से एक भी अब गाँव में नहीं रहा। ऐसे माके-बेमौके कभी भेंट हो जाती है किसी के साथ। तब थोड़ी-बहुत हँसी-मजाक हो जाती है।"

टुकू की माँ धीरे-से उठी। ...बेटा तो गाँव में नहीं। फिर बहू बेचारी कब तक भूखी रहेगी। एक पान पल्लू में बाँध कर बरामदे के ऊपर चली गई।

दास जी ने लंबी सांस खींच कर कहा - मरने की तो बात। सैंकड़ों वर्ष भोग करते तो क्या अब पेड़-पत्ते लगते ? मैं तो यह जंजाल छोड़कर कहीं जा नहीं पाता। बेटा ही किसी लायक होता। उसके हाथों कुछ हुआ नहीं। मैंने यहाँ से बस पैर उठाया कि ठाकुर जी की पूजा-सेवा धरी रह जायेगी। कितना कहा - अरे बेटे ! बाप-दादों का रास्ता पकड़ोगे तब तो वंश का, कुल का नाम रहेगा। जजमानी, पूजा-पाठ थोड़ा बहुत सीख लो। मन नहीं माना तो यही महीना भर हुआ काम की तलाश में गया है। कहता है महीने में पचपन रुपये मिलेंगे। और ऊपरी भी थोड़ी-सी है। यह जमाना तो वैसा हो गया। वहीं तो सेवा करनी है, देवता को छोड़ आदमी की सेवा क्यों करेगा ? लक्ष्मी-नारायण ५५रु, नहीं गिन देंगे। पर वे पेट तो आधा नहीं रखेंगे। फिर उनके प्रसाद से ही मैं बड़ा कुटुंब चला लेता हूँ। अरे ठहरो ! क्यों ऐसे होते हो। बात भी नहीं करने देंगे ये लोग ! जा, जा कर सो जा। जा, दुष्ट कहीं के ! कैसे कुलांगार हैं।"

बट अपने से छोटे जयी के साथ एक चद्दर ओढ़ने के लिए खींचातानी कर रहा है। गाली सुनकर दोनों सोये नहीं। परंतु सिमट-गुमट कर उसी एक चादर के दो हिस्सों में दोनों ओढ़ कर बैठ गये।

सुदर्शन नन्द की बात को छुपाकर कहा "ये मछलियाँ बहुत छोटी हैं। वहीं से तो मैं खेईंगा मछलियाँ पकड़ता था। एक-एक तीन सेर की होती थीं।"

"क्या कहते हो, हम ये सब जानें कैसे..उस साल पिताजी ने मुझे मामा के यहाँ भेजा था। तब बड़े मामा यदु मिश्र चढ़ती उम्र के आदमी थे। मुझे भी यही कोई सोलह-सत्रह हुआ होगा। यदु मिश्र के बारे में तुम लोग जो कुछ सुनते हो, मेरी तो आँखों देखी बातें हैं। हमारी बुढ़िया नानी को तो कुछ मिठाई-वगैरह आता नहीं था। वह उस जमाने की लुगाई, इतना छल कपट उन्हें नहीं आता था। बुढ़िया के दो बेटे यदु और मधु थे। उनके खाने के लिए वह छः सेर चावल पीसती। उसे खाली छाँट-छूँट कर इडली के नाम पर दोनों हाथों से थेपड़ी-सी थाप देती। सीझ जाने पर दोनों भाई बुढ़िया के दोनों ओर बैठकर बुढ़िया से बातें करते-करते साफ कर देते। वे भी क्या आदमी थे ! वह क्या जमाना था ? ...वे क्या खाते थे ! हमारी तरह कोई वे चुगते थे ? मामा बूढ़े हो गए पर कभी निरामिष मुँह में भी नहीं लगाया। गरम-गरम तई में नारियल कुरेद कर रस निचोड़ देते और मामा सुबह ही सुबह उसे खाते और यदि कहीं गरम-गरम दूध में खांड मिला कर छोटी-छोटी इडली देना शुरु कर दिया तो बस बैठकर गिनते रहो ! गिनती ही भूल जाओगे ! आह ! वैसा खाकर हजम कर सकने वाला मैंने तो कहीं नहीं दखा !

एक लक्कड़ लेकर दास जी ने आग को थोड़ा उकसा दिया। उस मामा की बात ही रह-रह कर याद आ रही है। फिर याद आने पर कहने लगे, "बाणपुर भगवती के यहाँ से एक बार मामा मछली के भुरते का भाग खाकर आये थे। उस दिन से जो चाट लगी तो फिर अठवारे वैसा भुरता बिना बनवाये काम ही नहीं चलता। हाथ सवा हाथ की खइँगा भून कर देनी पड़ती। नानी को भी सुविधा होती। बाद में मामी आई तब भी वही आदत बनी रही। ...अच्छा, नन्द तुमने कभी भगवती के यहाँ बलि का भुरता खाया है ? आह ! वह भी क्या चीज होती है ! मिट्टी खोदकर यही पूजा के दिनों में बड़े-बड़े गइढे बने होते हैं। जलती आग से लकड़ियाँ निकाल उन अंगारों में तीन बढ़िया खईंगा मछली गाड़ दी जाती हैं। वह जो स्वाद, क्या बताऊँ ! गुलाल की तरह टूटती रहती है। उसका अलग ही स्वाद होता है ! वह उस देवी पीठ की महिमा ही है। वहाँ सूखी महुर हो तो भी क्या कम स्वादिष्ट लगती है ! आलू, केला, बड़ी आदि सब डाल कर वह जो भोग बनता है ! गाढ़ा हो जाता है कि चमचा डालते ही लिपट जाता है.. एक ही समूची भेक्टा मछली उल्टा कर लटका दी जाती है। उस एक से ही अच्छी-अच्छी तीन हाण्डी तरकारी बन जाती हें, एक भोज हो जाता है।"

इस तरह की बातों के बीच बच्चों को और क्या नींद आयेगी ? दोनों भाई खाली ध्यान से सुनने में लगे हैं। सुदर्शन नन्द को भी सुनने में अच्छा लगता है।

-उस बार पिताजी मुझे लेकर कानपुर (उड़ीसा में) गए थे। वहाँ देवी-पूजा देखी है। वह मछली और वह मुआँ ! देवताओं की रुचि की चीजें हैं। सब देखो न एक-एक देवता का एक एक भोग है। लिंगराज का कोरा है, रघुनाथ जी का काकरा, साखी गोपाल का सरपुली। ऐसा कहीं और दुनिया में है ? महक से ही आधा पेट भर जायेगा, खाने की तो दूर...उन पीठों की महिमा है। और महाप्रसाद की बात तो कहें ही क्या ? स्वर्ग से देवता भी आकर ग्रहण करते हैं। एक ही बार मैं गया था पिता के साथ, बस। और गया भी नहीं। अब जा भी नहीं सकूँगा। उनके तो इकलौता था इसलिए जिधर जाते ले जाते थे। मेरे जैसे होते तो क्या जा सकते थे ?

"अच्छा दास जी साखीगोपाल में नारियल खाये थे ?"

"उसका क्या पूछना है भाई ! वहाँ तो सब के पिछवाड़े में नारियल के पेड़, सुपारी के पेड़। जरा-सा कुछ हुआ कि लग्गी डाल कर दो नारियल उतार लाये। उसी से तो चार लगावन सब्जी बन जाते। बिना स्वाद का साग भी स्वादिष्ट हो जाय। मुझे तो याद है, हम जिसके यहाँ ठहरे हुए थे वे रिश्ते में भाभी होंगी। दखिनी लड़की थी। एक वक्त ठहरे। जो पकाया, अब और क्या कहूँ ? हाथ-पैर धोये तो पहले भोग की दो-दो सरपुली दी। मैं क्या पूरी खा सका ? मिठास से मुँह बँध गया। घी और शाक्कर में सराबोर कितना खा सकेगा ? अरे भई, फिर खाते वक्त नारियल की चटनी, एक अच्छी-सी महुर, और उसके साथ समुद्री मछली का साकर। सब में नारियल। नारियल के बिना तो कोई तरकारी उनके यहाँ बनती ही नहीं !

बट और जयी की जीभ से अब तक लार टपक आई थी। आहा ! कितनी मजेदार बातें हैं ! घी और शाक्कर में सराबोर ! आहा !!

"सुदर्शन कह रहा है कल जाने के लिए। रघुनाथ को नहीं देख पाया। मैंने कहा, उसने अपना फोटो भेजा है। उसको देखना ! यह फोटो देखने पर ठीक वैसा ही है।" और एक सिगड़ी में भाई के हाथ सेंकने के तई आग सुलगा रही है टुकू की माँ। "उसे तो खोजा पर उस समय मिला ही नहीं। ये लड़के क्या ठिकाने से रहने भी देते हैं, किसी चीज को। अब उस बहू ने बिचारी ने खोज कर निकाला है।"

"फोटू" नाम सुनते ही बच्चे हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए। "रघु भैया जी की फोटू कैसी बनी है!"

"अरे नन्द तुमने नहीं देखा उसे ! जाओ, देख लो। ओहो भई, कैसा यंत्र बना है रे! वह लड़का तो ठीक बस ऐसे ही है- "वही आँखें, वैसा ही मुँह, नाक नक़्शा ! बड़े ताज्जुब की बात है!"

सुदर्शन नन्द उठकर बरामदे में गए। बहिन दिखा रही है। मगर बीच में बट और जयी धक्का-मुक्की हो दीये पर झुक कर देख रहे हैं। उनके भैया जी की फोटो की बात गाँव के बच्चों में किसने नहीं सुनी ? झुंड के झुंड आकर कौन बिना देखे रहा उस समय ?

दास जी ने एक लकड़ी से आग को उकसा दिया। सिगड़ी के पास सरक कर हाथ-पैर सेंक रहे हैं। मामा के घर की बात याद आ गई। रतन पुरिया तो साले उत्पातिया हैं। सब बातों में मजाक करेंगे। उनकी बातें भी कैसी बेढंगी होती हैं। लोग पहाड़-से दिखते हैं। पर सब बातें करेंगे हिजड़ों की तरह।

"अच्छा, जदू, ओ जअदू ! इस साल और हैजा नहीं फैला !"

"ओह हो, हैजा कैसे फैलेगा ? इस साल तो आ-अम ही नहीं हैं।"

लो ससुरा क्या सुने ? कहीं हैजा नहीं फैला तो उनके मन में कष्ट है। उनके गाँव को तो ये रत्नमाली देवी दसों दिशाओं से घेरे है। एक दम साक्षात् देवी हैं ! इसलिये इस गाँव में हैजा कभी हुआ नहीं, कि किसी ने सुना नहीं। आस-पास के गाँव में फैलता तो वे लोग भोग के मतलब में रहते।

"ऐसे मन ही मन क्या हँस रहे हैं दास जी ? आइये बरामदे में आ जाइये। वहाँ अकेले क्या कर रहे हैं ?"

"हूँ ! मैं और उठकर कितना चलूँगा ?" फिर याद आ गई मामा की बात।"

जदु मिश्र के रिश्ते में मामू हैं मागुणी षड़ंगी। एक बार किसी जजमान के यहाँ श्राद्ध कराने जाना था। उस दिन नहा-धो कर सुबह ही तैयार हो गए। नयी जनेऊ केशर में डूबने के कारण पीली होकर चमक रह थी। रास्ते में मामा मिल गए।

"क्या रे यदू..दू...किधर जा रहे हो ?" "ओ हो ! एक के यहाँ श्राद्ध कराने जा रहा हूँ। और क्या चूल्हे में या भाड़ में जाता ?" जा पहुँचे षड़ंगी के जजमान के घर।

"क्यों रे भई, आज तुम्हारे यहाँ श्राद्ध है न ?"

"जी हाँ है तो, पर हमारे पुरोहित...षड़ंगी महाराज आयेंगे तब होगा।" "मा..गुणी षड़ंगी तो ? ओहो ! अरे भई उनका तो वियाग हो गया। उन्हें कंधा दिया था। तभी तो यह देखिये जनेऊ बदल कर नई पहननी पड़ी। आप के यहाँ

श्राद्ध कर्म क्या बाकी रहेगा ? लाइये सामग्री। जल्दी ही काम पूरा कर दें।"

इसके बाद पैसा-पत्तर, चावल आदि सीधा आ गया। उस दिन फिर मागुणी षड़ंगी के साथ भेंट हुई। "क्यों रे यदू तेरी चिता नहीं जलती ?"

दास जी यहीं जोर से हँस पड़े।

"क्यों ऐसे पागल की तरह कैसे हँस रहे हैं ?"

"नहीं रे मामा की बात याद आ गई तो हँस पड़ा। साले को फिर से सारी बात बतायी। हँसी की दो-चार जोरदार फुहारें छूटीं। टुकू की माँ तो सुन-सुन कर अभ्यस्त हो गई। बाहर वाले कमरे में भाई के लिए चारपाई डाल रही है।

"हैं रे सुदेई तू सोने की कह रहा था। जा बिछौने कर दिये।"

"आता हूँ, आता हूँ। यहाँ दास जी बड़ी हँसी-ठट्ठे की बातें कह रहे हैं। अपने गाँव की पुराने जमाने की बातें।"

दास जी को उस जमाने की और भी कई बातें याद आ गईं। लग रहा था आईने के सामने बचपन की छाया देख रहे हैं...कुछ देर बाद सुदर्शन नन्द उठकर वहाँ से चले गए। दास जी को कोई खबर नहीं।

मंद पड़ती आँच को डांग से कुरेद रहे हैं। राख में से चिनगारी की झलक दिख ही जाती है।

सान्तरा के घर का बरामदा बहुत संकरा है। वहाँ मुश्किल से चार बच्चे कतार में बैठ सकते हैं ...निर्लज्ज कहीं की। फिर आकर कहेगी क्या, ना, "मास्टरजी कुछ बेर दीजियेगा ?... पिताजी अगर न कहते और मामूँ अगर हामी न भरते तो मैं क्या मास्टर हो पाता ? छः महीने करीब वहाँ नहीं रहना पड़ा क्या ! ... तब उसे ग्यारह-बारह ही हुये होंगे। गोरी-चिट्टी, कचनार-सी लगती। कैसे लजाती-सी बेर मांगती। ये ससुरी औरत जात तो जनम से ही सब जानती है। लेकिन वह क्या जानती थी कि बात इतनी बढ़ जायेगी ? या मैं जानता था कि बात इतनी बढ़ जायेगी ? क्या मैं जानता था कि उसे ही ब्याहूँगा ? पिताजी ने मामा के घर आकर जैसे ही नन्द की लड़की की बात चलाई, फिर न वह बेर खाने आई और न मैं ही गया नन्द की गली की ओर। मगर हाँ, एक दिन वह पेड़ पर चढ़ी पकी कटहल खा रही थी। झुके पेड़ पर आधे तक पहुँच गई थी। वहाँ से उतरती भी कैसे ? इधर देखा तो बस बैठ गई घूँघट खींच कर।

फिर हँसी आ गई दास जी को। सच, कितना बदल गया है ! देखते ही देखते आठ-आठ बेटों की माँ बन गई। हाँ विधाता ने तीन को हमारे भाग में नहीं लिखा था।

ऊपर बरामदे में टुकू की माँ डिबरी लिये आना-जना कर रही थी। रोशनी मुँह पर पड़ रही थी। परंतु उस में दास जी को उन दिनों वाला बेर खाया चेहरा अब और नहीं दिख रहा। कानों के पास घने घुँघराले बालों वाली लटें अब नहीं। छो..ड़ो.. भी। क्या रह गया है ? जो ये भी रहते ! मगर समय कितनी जल्दी ढलता है।... यही कल की तो बातें हैं। वे पालकी में बैठकर विवाह के लिए जा रही हैं। कहारों की हूँ..हाँ भी गूँज रही है। पर सपनों की तरह सब कुछ कहाँ उड़ गया ? जाये..सब तो ऐसे ही उड़ जायगा।

"तुम आज चले, हम कल, परसों पीछे संगी साथी।" पचास तो पूरे हो आये। अब और कितने बच रहे ? उमर दिन पर दिन घट रही है और अब कितनी शेष है ! पका फल है, उमरिया घटती जाये। अब कितनी बाकी है। थोड़ी हवा चली कि झरा... उसे और कोई जुड़ाये रख सका है या जोड़े रख सकेगा ? नाका ढीला होगा। प्रभु आपकी इच्छा ! कैसी माया लिपटी है आदमी से। वह उसी पालकी में बैठी है और चली जा रही है। इन खेतों खड्डों को आधी रात के अंधेरे में पार करता हुआ। ये बेताल इस पालकी को लेकर कहाँ पहुँचायेंगे ! कोई नहीं कह सकता। इसी पालकी में ऊँघते-ऊँघते कोई कितने सपने देखते चल रहा है। प्यारे ! एक बार आँखें तो खोल। देखो, सब ओर अंधकार। अकेले में हूँ...हूँ की आवाज क्या कम भयंकर लगती है ! बाप रे बाप !

खँखार कर दास जी ने बगल से तमाखू का डिब्बा निकाला। सच, जीवन तो बहुत विचित्र है ! पानी के झरने की तरह बहता जा रहा है। नीचे की ओर उस नमकीन जल में मिलकर एकाकार न होने तक उसे शांति कहाँ ! उसका तो और चारा नहीं। उसे जिस ढंग से वह नचा रहा है, उसी ढंग से वह नाचने लग जाता है। एक कदम भी पीछे को हटने का बल नहीं। खाली यों ही सोचने बैठे तो मन में अतीत की झलक आ जाती है। नहीं तो जीवन में हू..हू... कर आगे ही बढ़ने की बात है। हाँ, मरेंगे ही तो ! कौन है जो नहीं मरा। फिर इसमें डरने की क्या बात ?

"क्यों आज वहीं रात बितानी है ?"

और थोड़ा पहले अगर टुकु की माँ पुकारती तो दास जी अवश्य पूछते- "आज बेर नहीं खाने हैं क्या जी ?" परंतु अब उन्हें भारीपन-सा लग रहा है। हूँ..हाँ...की आवाज कानों से टकरा रही है। दास जी को स्पष्ट अनुभव हो रहा है। जैसे बेताल अब पिछड़ने वाले नहीं हैं। सिर्फ इतना कहा- "लो, यह आया !"

# तीरथ सारे इन चरणों में

तुम समझती क्यों नहीं, टुकू की माँ ! इस बात से तुम्हारे मन में दुख क्यों ? पात्र का लड़का गया है अपने माँ-बाप को लेकर पुरुषोत्तम, तुम इस तरह सोचोगी तो चलेगा ? वे लोग हैं- पैसे वाले ! उन्हें भगवान ने दिया है। वे जायेंगे, पर इस बात पर तुम क्यों खाना-पीना छोड़ बैठोगी ? मेरी समझ में तो यह बात नहीं आती। जाओ, उठो ! जो है थाली में, लेकर दो-चार ग्रास खा लो। वे जगन्नाथ जी क्या जानते नहीं होंगे कि अनेक दु:खी जीव ऐसे हैं जो चाहते हुए भी बेड़ियाँ काट कर नहीं निकल पाते ! - - - -

"आप का हाथ पकड़ा उस दिन से यही तो होता रहा है। आज कोई नई बात थोड़े ही है। बस जंजाल में डालकर गूँथोगे। आदमी को बीस-बीस बरस घर बसाये हो गए। देहरी भी लांघ कर कहीं नहीं जा सके। भीतर ही भीतर सीझ-भभक कर दिन काट दिये। कांची तेलिन की क्या बिसात ! वह गयी है गोविंद द्वादशी देखने ! आदमी उसके बराबर भी नहीं हो सके ! कितने ही लोग जायेंगे, कितने हाट-बजार, कितनी दुकानें, चीजें, सब वहाँ देखें, खरीदें। धिक्कार है ऐसा यह लुगाई बनकर जन्म लेना। पुरी से चार-चूड़ी लाकर पहनना भी भाग्य में नहीं है मेरे !"

बरामदे से दास जी ईर्ष्या-अभिमान अभियोग मिश्रित रुलाई सुनकर भी अनसुनी किये बैठे हैं। चारों ओर से घिरे आते काले बादलों की बूँदाबाँदी। हल्की-सी ठंडी हवा के झोंके से बरस जाय !

अनेक दिनों का दबा वह वाष्पीय कोह ! संपत्ति की गोद से आकर अभाव के आंगन में कर्म को ही सिर-माथे लगाकर पड़े रहने के प्रति विद्रोह, ज्ञात-अज्ञात और भी अनेकों, सैकड़ों असंतोष, कितनी ही अभिलाषाएँ. झुरमुटे के पिछवाड़े से झाँकते लाल-लाल अंगारों-सी आँखवाले बाघ की तरह का संतान कष्ट ! लगता था जैसे उन असहाय एवं कुरुप सुबकियों में वह सब प्रकट हो रहा है।

दास जी ने बात की ओर ध्यान देकर सोचा- "ये तो सर्वे समाना: कोई भी अब ठाकुर जी के दर्शनों के लिए जाता नहीं !" सब कुछ समझ कर भी उन्हें थोड़ी हँसी आ ही गई। पर कुछ बोले नहीं।

उस कमरे से सिसकियाँ स्पष्ट सुनाई पड़ रही हैं। ताड़पत्रों की पोथी बाँयी जाँघ पर पड़ी है। दास जी लेखनी धरती पर घिस कर गाल से परख रहे हैं। परंतु मन उनका कहीं और ही है।...सनातन दास के आठ प्राणियों का कुटुंब इस महँगाई के जमाने में कितनी कठिनाई से गुजर कर रहा है। पुजारी के रुप में लक्ष्मीनारायण का भोग थोड़ा बहुत लाकर सुबह बाँट-बूँट कर चल जाता है। बाकी रही दूसरी बेला।... दास जी कभी-कभी हँस कर कहते हैं- "हाँ, हो तो हो महँगाई। हमारी तो भगवान चलाते हैं। वे न चला सकें तो हम चला लेते हैं। क्यों भई ! हुआ कि नहीं ? जिस दिन दो पैसे जुट गये उस दिन भगवान चला लेते हैं। और जब कुछ न मिला, उस दिन धीरज और उपवास करते हैं, उस दिन हम चलाते हैं या वे ?"

जाड़े के दिनों में नंगे बदन धूप में बैठकर दास जी ताड़ के पत्तों पर केशव रामायण, सारला महाभारत लिखते हैं। मोती के दानों की तरह एक-एक पत्ते पर

तीन-तीन पंक्तियाँ लिखते, वहाँ जैसे गुँजा की मालायें पिरोकर रख दी हों ! कहीं एक अक्षर भी कटता नहीं, कि एक पंक्ति भी टेढ़ी नहीं होती। लिखाई पूरी हो जाती तो मिरग छाला से बाँध कर बिक्री करते। उससे भी कुछ पैसे तो मिल ही जाते। उनके ग्राहक अड़ोस-पड़ोस के दस-पाँच गाँवों के आदमी ही होते। जिसके पास दो पैसे हुए, वह दास जी से ग्रंथ लेकर गद्‌दी बनाकर स्थापित करता। इस छापेखाने के युग में भी लोगों की वह रुचि बदली नहीं है। वे कहते- "ताड़पत्र तो कालपत्र हैं.. पोथी की लिखाई...नहीं तो यह छपाई- क्यों रे, यह छपाई क्या ? अब यह सब छप गई। नहीं तो सब पोथी ही थीं, क्यों...वह चीज ही और है !"

शायद गाल पर लेखनी की नोंक देख रहे हैं। पर अब दास जी का मन लिखने से हट गया है। मन ही मन चिड़-चिड़ा रहे हैं। गोविंद द्वादशी आ रही है। सब कैसे उमड़ रहे हैं। जाने के लिए। पुण्य कमाने जा रहे हैं सब ? यार, एक भेड़ के पीछे सब दौड़ेंगी ही। उस साल पाटपुर में बादी पाला हुआ तो सारा गाँव ही उलट पड़ा। रात भर पाला का रस पीते रहे। इतने बड़े गाँव में एक कुत्ता भी नहीं था भूँकने। सुबह लौट कर देखते हैं तो प्रधान के घर कुहराम सचा हुआ है, धान की ओबरी ही कोई उठा ले गये। पात्र बुड्‌ढा तो तिजौरी सिरहाने रखे बिना सोयेगा नहीं कि इसके बिना उसे नींद आयेगी नहीं ! उस की अकल में कैसे पत्थर पड़े ? ठीक हुआ इन स्सालों का।... वैसे ही ये सब सोच रहे हैं कि पुरुषोत्तम में पता नहीं क्या कुछ हो रहा है! ये जाकर वह सब पायेंगे। ये नट-नटिनी का बाँस पर तमाशा देखनेवाले लोग हैं। जूठे हाथों ही दौड़े आयेंगे देखने ! क्या सचमुच ठाकुर जी के दर्शनों के लिए जा रहे हैं ? क्या पाप धोने जा रहे हैं ?

जिसे देखो, सब के हाथ में पैसा है। क्या जमाना आ गया, रुपये का छः पाव चावल बेच कर ये मरे, सब धनी हो गये !

हाँ, अगर हमारे हाथ में भी दो पैसे होते, तो हम भी जाते ही... परंतु न वह सोने की डोर हमारे हाथ लगेगी, ना हम पुरुषोत्तम जा पायेंगे ! अच्छा ! "फूँ" कर श्वास छोड़ने की आवाज निकली।

फिर से दास जी ने लेखनी उठाकर पोथी लिखने में मन लगाया। दो तीन पत्रों पर लिखा। केशव की टेक समाप्त की। अंदर घर में लड़कों ने किसी कारण से मारपीट कर रोना शुरु कर दिया था। "मैं जानता हूँ, बटिया तो अब आदमी होने से रहा। वह मुंआ तो हुरदंगा ही ठहरा। बच्चों को भी मारमार कर उनकी हड्‌डी पसली तोड़ देगा।"

"अरे बट, सुन इधर आ। तू, गधे, किसी नीच के घर क्यों नहीं जन्मा। मेरे घर में क्यों पैदा हुआ ?"

स्वर में अभी हिचकियाँ थमी नहीं थी। पुराने रोष में स्त्री ने भीतर से ही कहा- "तुम्हारा इस बच्चे पर ही इतना क्रोध क्यों है, बताओ तो ? किस घड़ी से बच्चा बिना तेल लगाये ही नहाने गया है कि अभी तक लौटा नहीं। ये दोनों इधर भर पेट खाकर झगड़ रहे हैं। वह घर में हो न हो, सारा कसूर उसी का।"

दास जी और कोई उत्तर नहीं दे सके। बच्चों का हो-हल्ला तो अब सुनते सुनते कान अभ्यस्त हो गये हैं। छोड़ो, ये ऐसे ही हैं। परंतु यह माँ होकर उनका और क्या लाड़ चाव कर सकी ! वह बेचारी बहू न होती तो कब से इनके शरीर पर दीमक चढ़ जाती।

बहू की बात सोचते ही दास जी एकदम नरम पड़ गये। मन ही मन कहा- अच्छा घर में भी क्या बच्चे हो-हा नहीं करेंगे ? लेकिन मेरी बहू लक्ष्मी है ! यह मूरख घड़ी भर भी घर में रहता है ! संध्या होते ही बस भागवत घर में चला जायेगा पखावज छपकने। उसे घर की तो कोई चिंता ही नहीं...अच्छा, इस बूढ़े के भी और कितने दिन हैं, गले में पड़ने पर ढोल को खुद ही बजाना सीखेगा, वरना वह जायगा कहाँ ?

मन ही मन हँस कर चश्मा उतार दास जी ने उसे सावधानी से कपड़े की थैली में रख दिया। पोथी को भी बाँध कर रख दिया। मुँह में तमाखू डालकर वे बाहर बरामदे में जा खड़े हुए। उनके घर के ठीक सामनेवाली गली में तेलिन के घर में ताला पड़ा है। वह पुरुषोत्तम गई है। गाँव आधे से अधिक उठ गया है रे !... हाँ, क्यों नहीं जायगा ? गोविंद द्वादशी जैसा दिन और बार-बार आयेगा ? जो परम सौभाग्यशाली होगा वही इस दिन जगन्नाथजी के दर्शन कर सकेगा। अगर एक कपड़ा नहीं खरीदता ! पर उन छः रुपल्ली से क्या होता ? यहाँ अकेले जाने का तो सवाल ही नहीं उठता। सब को ले जाने पर सौ ऊपर बीस रुपये चाहिएं। छोड़ो ! इस बात पर मगजपच्ची न करें तो ही अच्छा। दास जी पेट पर हाथ फेरते बरामदे में इधर-उधर टहल रहे हैं।

नीलकंठ पंडित भी पुरी गया है। जाना-माना आदमी जो ठहरा। काशी से कोई हराम में पढ़कर आया है ? दो पैसे भी हाथ में आ गये। पंडित सुबह-सुबह नहा कर आता है। पाटंबर पहनता है। और उस पर रामनामी चद्दर डालता है। अच्छा, वह आधे से भी अधिक समय तो मेहमान बना रहेगा। बेटे इंद्रमणि के लिए पुरी से जो प्रस्ताव आया है, उसी में डूबा रहेगा। द्वादशी को कौन पूछता है ? पुरी में सगे-संबंधी हुए तो कभी भी जाकर ठाकुर दर्शन कर आयेगा। जगन्नाथ जी कहीं भाग नहीं जायेंगे !

फिर भी दासजी का मन बहुत भारी हो रहा था। इसी बीच देखा, बट रोता-रोता आ रहा है। उसके पीछे बड़ा लड़का रघु गुस्से में तमतमाया हुआ आ रहा है।

"क्यों, क्या हुआ रे ?"

"जाओ, गधे, चंडाल, ऐसे ही कभी पानी में डूबकर प्राण निकल जायेंगे ! इसे देख रहे हैं ! पिताजी ! इसके हाथ-पैर कैसे हो गये हैं ! पानी में डुबो-डुबो कर इनकी गति कैसी कर दी !"

"अच्छा छोड़ दो इसे। यह तो वैसा ही निकला। करें भी क्या अब इसका ?"

बट कृष्ण घर में घुसा कि टुकू की माँ ने उधर से घींस-घींस कर उसे फिर चौक में ला खड़ा किया।

"देखो, देखो तो, कोई दुश्मन को भी ऐसे मारता है ! उसकी पीठ की क्या हालत कर दी ? लहू-लुहान हो गया बेचारा ! तू बड़ा भाई हुआ तो क्या इस प्रकार जान से ही मार डालेगा ?"

बटिया की पीठ पर पाँच अंगुलियों के निशान उभर आये हैं। चमड़ी उधड़ गई है।

दास जी ऐसा तो बराबर ही देखते हैं !

अतः कुछ नहीं कहा। चुपचाप उस ओर देखते रहे।

"इसे न डरायेंगे तो यह शैतान हो जायगा ? - ठीक है अब कहोगी तो मैं उसके शरीर में हाथ भी नहीं लगाऊँगा। जाने दो, वह जो होता है होने दो।"

रघु की बात के उत्तर में भी दास जी ने कुछ नहीं कहा। पर टुकू की माँ सप्तम स्वर में टेक लेकर कहने लगी-

"क्यों होगा वही शैतान ? बाकी और कौन-से पंडित हो गए ? या हाकिम हो गए ? जीता रहा तो भीख माँग कर ही पेट भर लेगा, यों जान ले लेने पर क्या मिलेगा ?"

हो-हल्ला-रोना-चिल्लाना-मारा-पीटी बहुत कुछ जो बीच-बीच में होता रहता है वही चल रहा है। दास जी इसी बीच अंगोछा कंधे पर डाल लाठी हाथ में लेकर रास्ते-रास्ते चले गए। कोई लक्ष्य नहीं। सिर्फ थोड़ी दूर चला जाय।...

सच, जीवन व्यर्थ हो गया। इस जंजाल में घुट कर कब आदमी के प्राण उड़ जायेंगे ! पता नहीं।... जाओ, स्साले, जो जैसे हो बनो, मेरा क्या जाता है ? इस दुनिया में कौन किसका है। सब अपने-अपने कर्म-फल को भोग कर मरेंगे, दुष्ट ! इसमें मेरे हाथ में क्या है ! या किसी और के हाथ में क्या है ? मर गया वह बोड़ा मिश्र, मुक्त हो गया। और कितने दिन घुटता ?... संसार बसाया, भोग किया, कार्तिक के श्रेष्ठ महीने में उठ गया। सब तो वैसे ही जायेंगे। कोई किसी के पीछे नहीं दौड़ेगा। जीते जी माया छोड़ती नहीं इसी लिए तो इतनी बातें हैं !

तब तक दास जी अनायास ही ठाकुर जी वाले पथ पर आ पहुँचे। यह राह बावरी साही होकर लक्ष्मी नारायण मंदिर के पीछे निकलेगी।

"चलो, ठीक है, थोड़ा-जल्दी निकल आया। इसमें क्या है ? ठाकुर जी की मुखशाला में और भी अच्छा लगेगा।" जनेऊ में सदा चाबियाँ बंधी रहतीं। उन्हें टटोल कर देख लिया।

धीरे-धीरे आगे चलने लगे। छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ। कई पिल-पिलाते सूअर। टोकरियाँ और छबड़े बनाने के लिए हर घर के आगे बाँस का ढेर लगा है।

इस्स् ! वृंदा बावरी भी घर में ताला डालकर गया ! भाग जाने दो। उससे क्या होता है ? बावरी है तो क्या वह नहीं जायगा ? दासिया बावरी भी तो फिर नाम कर गया है। सच, कितने निर्मोही हैं। ये लोग भी ! गर्व, अहंकार का तो नाम तक नहीं इन के मन में ! सेवा इनका धर्म है ! आहा, ये सब हैं ज्ञानी ! हम तो ऊँची जाति-ऊँची जाति कहा कर हजार पाप कर लेते हैं !

कालिया-धूलिया बावरी के बच्चे भी तो उसी तरह मोटे हैं। मोटी सूअरी के साथ अकेला खेल रहा है। उसके माथे पर हलके थप-थपा रहा है। और वह भी सूं...सूं.. कर आदमी के बच्चे को सिर से पैर तक सूँघ रही है।

इसमें तो जरा भी माया नहीं है। पर, गंदगी में सारा जीवन कट जायगा क्यों रे ? कर्म ही सब कुछ है ! कर्म-फल के अनुसार भोगता है। और भई भोगेगा। कोई उससे मुक्त नहीं हो सकता। राजा नल से भी बढ़कर सत्यवादी पुरुष कोई है ? उनकी क्या-क्या दशा हुई ! रात बीतते राजा होगा। मगर किसी हालत में नहीं हो सके ! चौदह वर्ष के लिए वन गये राम ! छोड़ो, छोड़ो, बड़ा विचित्र है यह कर्मफल भी ! क्यों रे तूने खुद ही कहा है- "सबहिं नचावत राम गोसाँई।" वह तो हमारे अंदर रहकर सब कुछ कराता है। फिर कर्म कहाँ से आ गया, जो हम कर्म

फल भोगेंगे ? मूल बात है- वही करता है। वही फिर भोगता है। हम क्या कुछ भी नहीं ? फिर इतना तमाशा क्यों फैला रखा है ? पूजा-पाठ, होम, यज्ञ, व्रत, उपवास, ये सब क्या झूठे हैं ? जीवात्मा बेचारी जंजाल काट कर परम में मिल जायेगी। तब तो फिर हम सब आ गये। छोड़ो ! ये सब बहुत गहरी बातें हैं। इनमें से क्या कोई पल्ले पड़ेगी। कोई तो नहीं समझ सका है। शुक सनकादि भी हार मान बैठे हैं।

मंदिर के पिछवाड़े में कितनी गंदगी हो रही है ? सनिया को कहना पड़ेगा। वह यार खेत खाता है, मंदिर की सफाई के नाम पर। देखा जाय तो काम धेले का भी नहीं करता। अच्छा, जाने दो, मिलेगा तो कह देंगे।

द्वार खोल कर दास जी अंदर दाखिल हुए। बहुत सुनसान घड़ी है। नाट्य मंदिर वाली सीढ़ी पर हल्की-हल्की हवा और थोड़ी-थोड़ी धूप। दास जी पत्थर के खंभे पर पीठ टिका कर बैठ गये। और कोई समय होता तो तुरंत सो जाना निश्चिंत था। पर आज अब उन आँखों में नींद है ही नहीं। बारबार उन्हें याद आ रहा है।

सब तो गये गोविंद द्वादशी देखने, वे नहीं जा सके। यही सोचते-सोचते थोड़ी आँख लग गई। पलकें झपक गई हैं। पर दास जी का मन बहुत सचेत होकर सिर्फ उसी एक बात को दुहरा रहा था।

प्रधान के घर में सच कितने लोग हैं ! प्रधान बूढ़ा जा रहा है। सुनकर गाँव भर के लोग पीछे-पीछे हो लिये। इतने लोग बोरिया-बिस्तर बाँध कर निकलते हैं। तो क्या कम भीड़ होती होगी ? स्टेशन पर तो पहुँच गये, पर रेलवाई वाला क्या इतने लोगों को बिठा लेगा ? ये प्रधान के बेटे, टिकट बाबू को दो पैसे न दोगे तो कैसे काम चलेगा ? घुस जाओ.. अंदर चलो !! अरे वहाँ नहीं। उधर, ज्यादा पैसे लगेंगे। ओह ! कितनी धक्का-मुक्की है ! रे रघुवा, अरे विप्रचरण ! उन बच्चों को पहले खिड़की के रास्ते ही घुसा दो। कांची, अपने बोरिया-बिस्तर सिर पर रखे आ जाओ। रेल छोड़ देगी। ऐ बृंदा, यहाँ क्या "हटो...हटो" लगा रखी है। सब तो रले-मिले हैं। यहाँ कैसा भेदभाव ? ...छोड़ दी गाड़ी ! चल पड़ी ! अरे सब चढ़े या नहीं ! हे बिरजू ! चढ़ा या नहीं ? ...अच्छा...अच्छा... बक्सा संभाल कर रखना !

हो हल्ला, घो-घा इंजन की सीटी। और फिर सब के बाद सिर्फ इंजन की आवाज रह गई। हाँ, बृंदा नायक की आवाज सुनाई पड़ रही है। कैसे वह सोते-सोते एक बार गाड़ी से गया था। रुकी, लो रुक गई। गाड़ी में सावधान रहना। देखो और किसी को चढ़ने मत दो। नहीं तो सब घुट कर मर जायेंगे। अरे...हे..बुढ़िया है उसे जरा ले लो। नहीं तो फिसल कर वह मर जायेगी।

देखो प्रधान कैसे ऊँघ रहा है ! यह फिर सबको संभाल लेता ! कितने आदमी कितनी जगहों से आकर बैठे हैं ! इस डब्बे में! जान नहीं, पहचान नहीं, जरा भी रोक-टोक नहीं। सब का मुँह तो एक ही ओर है। पुरी यात्री हैं। एक रेशमी डोर सबको खींच कर ले जा रही है। यहाँ फिर अपना-पराया क्या ? "जय जगन्नाथ" आवाज गूँज रही है। रोम-रोम सिहर गया। सब में कैसी उत्कंठा भरी है ! थोड़ा झुक कर रेल के डब्बे से ही नीलचक्र देख लेना चाहते हैं। हरि...पतितपावन ! सब भक्ति से गद्‌गद् हो रहे हैं ! आँखों से प्रेमाश्रु पोंछ रहे हैं। आत्मा का मैल धुल गया है। "जय जगन्नाथ !" एक साथ सब रेल यात्री आवाज लगाते हैं। पुकार से आकाश फट जाय !

अच्छा चलो, पंडा जी महाराज ! अब और देर नहीं सही जाती। किसी तरह गरुड़ स्तंभ के पीछे ले जाकर खड़ा कर दो। ...समुद्र स्नान होगा ? अच्छा चलो। चलिए प्रधान जी ! ओहो ! कैसे घू-घू गर्ज रहा है ! यह अनंत तक फैला सागर ! तीर्थराज है यह ! महोदधि में सिर डुबा दो। तन पवित्र हो जाने दो ! अच्छा, हो गया ! चलो, अब यहाँ नहीं। इन लहरों में मतवाले हो गये तो फिर गए। निकल आओ। देरी न करो।

लो यह बड़दाण्ड की धूल सिर से लगाओ। इस में कोटि-कोटि महापुरुषों की चरण रज है। इसी पर नंदिघोष के चक्के चलते हैं। लोट जाओ सब इसी धूल में। यह धूल नहीं है ! आकाश से देवता भी यहाँ आकर पैदल चलते हैं ! यह धूल नहीं है। सारे शरीर में इसे रमा लो। गंगा स्नान से भी ज्यादा माहात्म्य है इसका !

ओः कैसा जनसमुद्र है ! चारों ओर सिर्फ नरमुंड ही नरमुंड ! हे कांचि ! उस दुकान से चली आओ। यहाँ एक-एक आदमी के बीच दुकान है। उसमें फंस गयी तो निकल नहीं सकोगी, मैं कहे देता हूँ ! कोई उधर देखो भी मत। कांटा लग जायेगा, मोह हो जायेगा। रेशमी डोर गीली हो जायेगी ! ऊपर आँखें करो - देखो, देखो पतितपावन की पताका कैसे फर-फर उड़ रही है ! आगे चलो, आगे बढ़ो ! जय जगन्नाथ ! जय जगन्नाथ ! मेघनाद दीवार और कितनी दूर है ! क्या यह पत्थर की बाड़ और थोड़ी सरक नहीं जाती !

चौदह भुवन जिसके लिए खेल है ! उसके लिए यह क्या है ? प्रभु ! हटा दो इसे ! यह मेघनाद प्राचीर मेघ तक सरका दो। सब दूर-दूर से आये दीन-दुखियों, रंक सब को अंदर आ जाने दो ! सब पास आ जायें ! आः आ गये !! दूर से मुकुट दिख रहा है। आदि भूत जगमोहन में बिजे हो रहे हैं। नहीं...नहीं और नहीं, यह आ गया अरुण स्तंभ। फिर सिंहद्वार ! बाईस पावछ, नाटमंदिर और गरुड़ स्तंभ ! ओहो ! ओहो ! जगन्नाथ, उद्धार हो गया ! हे बलियार भुज ! विशाल बाहो ! हे चकानयन, विशाल नयन ! हे पतिततपावन, हरि !! यह रुप देखते-देखते ही प्राण जायें। नाचो...नाचो गाओ...नाच-नाच कर सब तरल हो जाओ, बह जाओ ! हरि, जगन्नाथ ! जय जगन्नाथ !....

सूर्यास्त होने को आया...

सनिया झाडू बुहारने आया है। दास जी को देख खड़ा रह गया। वे घुटने मोड़े सिकुड़े-सिकुड़े लेटे हैं। सिरहाने अंगोछा है। आँख के कोने से आँसू ढरक आए हैं। सारा शरीर रह - रह कर सिहर उठता है। क्या अस्वस्थ हो गये ?

...जी महाराज ! इस असमय में सो गये क्या ? शरीर कहीं अस्वस्थ तो नहीं ?

आँखें खोली तो भरे हुए आँसू बह गए। चारों ओर घड़ी भर तक टक-टकी बाँध देखते रहे। फिर आँख मूँद कर पत्थर के खंभे पर गाल टिका दिया।

"सनिया है क्या ? परिक्रमा बेढ़ा में जरा बुहार देना बेटे। ऊँ हूँ! यह शाम को ठंड हुई, तभी साला ज्वर हुआ ! ओहो ! कितनी ठंड लग रही है ! दे पहले बुहार दे ! अच्छा, मैं उठ रहा हूँ। हरि जगन्नाथ ! तुम्हारी इच्छा। प्रभु ! ऊँ...हूँ...!

# धनागम

"क्या इतनी सब चीजें खरीदे जा रहे हैं, दास जी ?"

"अरे बाप रे, बृंदा नायक कहाँ से आ टपका ?" दास जी ने परसों ही घर का टिकस अदा कर दिया है। और क्या बाकी रह गया ?

पात्र बूढ़ा जीरे की पुड़िया सूत से बाँधते-बाँधते कहने लगा- दास जी तो प्रवास पर जा रहे हैं। घर के लिए महीने भर का आटा-दाल रखे बिना कैसे चलेगा ?

पात्र बूड्ढे का काला स्याह चेहरा, छोटे-छोटे गाल हँसी से और फैल जाते हैं। बाघ की -सी मूँछों के नीचे पान से रंगे काले दांत ! उनके बीच एक सोने का दांत चमक रहा है।

"ऐसी क्या बात है ? क्यों दासजी, सचमुच ?"

"हाँ, वह मदनपुरिया महाजन धवलेश्वर के पास रुद्राभिषेक करना चाहता है। जाने की सोच रहा हूँ।"

"हाँ क्यों नहीं जायेंगे ? फिर दो पैसे रोजगार करने से ही तो चलेगा। उधार ही तो फिर इतनी चीजें ले रहे होंगे। रुपये दस-पंद्रह का खर्च नहीं है, इन्हें भी तो फिर लौटाना पड़ेगा !"

"और क्या, अब उन्हें उस जमाने का दास जी समझ रखा है ? नायक जी ? अब तो सब नगद में है। बेटा हर महीने पैसा जो भेज रहा है।"

"अरे सच तो ! मैं भी कहूँ कि...क्या दास जी के लिए तो अब उधार-सुबार कर चलने वाली बात नहीं। सोचा, शायद ले रहे हों उन्हें लौटाने में भी क्या है ? रघुनाथ तो साहब के पास अर्दली का काम करने लगा। समझ लो वह साहब से भी बड़ा हो गया। पहले वही सब की दात-पुकार सुनता है। इसीलिये तो अर्दली कहलाता है। क्या वृंदा नायक को भी यह बताना पड़ेगा ? जो हो, दास जी, हम पर भी दया रखेंगे। बेटा हाकिम के पास रहेगा। कभी कोई बात कह दी तो हमारा भी भाग खुल जायेगा।"

"हाँ, सब भगवान की इच्छा है। तुम सब का आशीर्वाद बस, उस बच्चे पर सदा बना रहे।" दास जी ने सारी चीजों का हिसाब कर पैसे गिन दिए और उठ खड़े हुए। वृंदा नायक को रास्ता छोड़कर अलग हटते भी देखा। पात्र बूढ़ा और वृंदा नायक मुँह से मुँह मिला कर कुछ संकेत में बातें कर रहे हैं। दास जी को थोड़ी हँसी आ गई। पता नहीं क्यों कुछ शंका भी लगी। जैसे दास जी का उन सब से सदा का संबंध टूट गया है। पाली-पोसी हुई बछिया बड़ी होने पर सींग हिलाती है तो उसके पास उसका मालिक भी जाने में पीछे हट जायेगा। उसे दूर से ही चू-चू कर थोड़ा थप-थपायेगा। वही अवस्था नहीं है क्या ? उनकी दया, अनुग्रह, सहानुभूति पर जो दास जी जीते थे, वे ही आज अपने पैरों पर खड़े हो गये, यह क्या कम अचरज की बात है ? थोड़ी ही सही, ईर्ष्या भी नहीं होती होगी ?

अरे नहीं भई, यही बच्चा क्या इतना बड़ा हाकिम हो गया ? पेट भरने के लिए दो पैसे भेज देता है। और क्या ! हम क्या कोई मलमल पहनने लगे ? या

पत्थर का घर चिनवा लिया। ले देकर एक जून मिल जाता था, अब दोनों वक्त पेट भर मिल जाता है। यही तो, क्यों ? तुम सब तो यों ही सोच रहे हो। ...बात वहाँ नहीं है। ...असल में सनातन दास जैसा आदमी है, आधा दिन उपवास रहने की बात...वह यदि दोनों वक्त पेट भर भोजन पा गया तो इसमे बढ़ कर अन्याय और क्या होगा ? साले परश्रीकातर हैं ! जरा-सा किसी के पास कुछ देखेंगे तो हड़कंप मच जायेगी इनके बीच।

समझता हूँ सब कुछ। सारी बात की जड़ तो रुपया है। उसी पर मान-सम्मान, उसी से आदमी छोटा-बड़ा हो जाता है। इनकी बात ही क्या कहें ? रघुनाथ रुपये भेजने लगा उस दिन से टुकू माँ उस बहू को तिनका भी तो तोड़ने नहीं देती। वही बेटा है जिस पर इतना चिड़चिड़ाती थी - कर्महीन हो गया। अब उसी की बड़ाई के गीत खत्म ही नहीं होते। जो पैसा कमाता है वह हुआ अन्नदाता। अब उसे मैं पहले की तरह दो बातें कह सकूँगा ? वह कुल का भगीरथ हो गया ! पिण्ड कर्त्ता... !

घर पहुँच कर दास जी सब चीजें छोटी पुड़िया, कागज, ठोंगा एक-एक कर धीरे-धीरे रखते गए। बट, जयी, टुकुआ सब ने एक-एक कर घेर लिया। इतनी सारी चीजें घर में आ गई !

अरे ठहरो। उन सबको मत खोलो। आपस में मिल जायेंगी। अरी ओ, उधर से बर्तन लेती आना। यहीं भरकर रख देंगे। बोतल, टीन के डब्बे, सिकोरा, हांडी, कटोरी, सब आ गये।

"उसी पात्र बूढ़े में ऐसा क्या शहद लगा है। क्यों, क्या कोई उधार लाते हैं ? वह जैसा दे देगा वही ले आयेंगे ? ...देखो तो ! ये मिर्च कैसी सड़ी-गली दी हैं। काली राख और आधी से अधिक तो बीज और नाके होंगे। क्यों गणेशा की दुकान से ले आये नहीं ? कल बट से जीरा मंगवाया था। सारे में एक भी कंकड़ होता भला ! चुग-साफ कर दिए थे जीरे के दाने। ...अरे लो, वह सरसों बिखर गई, मैं इनको नहीं सकूँगी। अरे बट, ले बाबू इन सबको बाहर ले जा जरा।"

स्त्री की इस प्रतिक्रिया पर दास जी सोचने लगे - उधार-पुधार में उस जमाने से पात्र बूढ़े से लाता रहा हूँ। अब नगद देकर लाऊँ तो और दूसरी दुकान से लाऊँ ? बता तो, वह क्या सोचेगा ? यह भी कोई बात हुई ? परंतु स्त्री को दास जी ने कुछ नहीं कहा।

"देख-भाल कर चलना। ये कल हुआ सोमवार। बीच में तीन सोमवार जाने के बाद अगले हफ्ते वाले सोम तक लौट आऊँगा। घर में सुदेई है ही। मामू जो, पिता वही। और कोई दिक्कत नहीं। अच्छा, तुम्हारे भैया किधर गए ? आ कर सांझ हो गई।"

टुकू की माँ प्याज छाज में डाल कर छिलके छाँट रही है। "पहले तुम देह का ख्याल रखना तो ? खाने-पीने में कभी अबेर-सबेर मत करना। तुम्हारा शरीर औरों के शरीर जैसा नहीं है। हाथों से रांध कर दो मुट्ठी भात एक वक्त खाओगे...बस इसी बात की मुझे चिंता है। कैसे माँ मंगला देवी महीना भर बिता कर सब आनंद मंगल से लौटा जायेगी। बहू की इधर ये हालत ! महीना-बीस दिन रह गया। तुम भी घर पर न रहोगे। बेटा रहा प्रवास में। हम पर भरोसा रखकर। आने पर क्या

कहेगा ! ऐसे समय ही इन्हें जाना था ? थोड़ा ठहर जाते तो क्या नहीं चलता ?"

"अजी भगवान हैं, सब बातों को देखनेवाले। तुम रहते तो क्या कर लेते ? हाँ सिर पकड़ने वाला घर में कोई मरद न हो तो बात जरा अच्छी नहीं लगती। ...वैसे सुदेई है ही। घर की बात कोई रघुनाथ से छुपी थोड़े ही है ? जाने से डेढ़ सौ रुपये मिलेंगे। इस जमाने में डेढ़ सौ रुपये छोड़ कर बैठे क्या करेंगे ?"

"इस छोकड़े को बाहर छोड़ दिया है। गाय-बाछी किसी समय सींग घोंप देंगी तो !" सुदर्शन नन्द छोटे भानजे को गोद में लिए अंदर दाखिल हुए।

मैं जानती हूँ। वह बट किसी काम का भी नहीं हुआ। इसे छोड़कर उछल कूद कर रहा होगा कहीं। ...तुम गये किधर थे ? तुम्हारे जीजा खोज रहे थे।"

दास जी नीचे बरामदे में पैर धो कर अंगोछे से पोंछ रहे हैं। यहाँ माँ के पास खड़े रहना, बेटे, मैं आता हूँ। कहकर नन्द जी दास जी के पास चले गये।

"नहीं रे, मैं तो यों ही पूछ रहा था, इतनी देर हो गयी किधर चले गए इसलिए। तुम बात मानकर रहे इसलिए तो मैं हिम्मत के साथ निकल रहा हूँ, नहीं तो क्या जा सकता ? देखो, ठाकुर जी का काम तुम्हारे सिर रहा। ताला अच्छी तरह देकर आना। गहना-गांठी कितना कुछ है। आदमी के लोभ की तो कोई सीमा नहीं। कोई साला निगह रख रहा होगा तो घुस कर ले जायेगा और हम सब बंध जायेंगे।... इधर बच्चों की जिम्मेदारी भी देखना। यह टुकू तो बहुत शैतान हो गया है। उसका खयाल ज्यादा रखना।"

"अच्छा, ठीक है ! आप इन सब बातों की जरा भी चिंता न करें। मैं सब चला लूंगा। चौदस की चौदस एक महीना ही तो रहेंगे ? देखिये आप के आने के बात तुरंत मैं जाऊँगा। मेरे वहाँ गाँव में कितने काम हैं, आप जानते हैं। तीन भाई हैं। मगर सब...।"

"अच्छा तुम नहा धो लो। मंदिर चल कर सब दिखा आऊँ।"

XX XX XX

"तुम्हें क्या रात भर नींद नहीं आ रही दास जी ! खाली करवटें बदल रहे हैं। कितनी रात बाकी है ये ! और थोड़ा सो लीजिए।"

"नहीं रे, पहला मुर्गा तो बोल भी चुका। तड़के ही निकल जाना ठीक रहेगा। छः कोस का रास्ता है। जल्दी नहीं गए तो ? वह यार मारवाड़ी नहा-धो कर बड़ी सुबह से ही संकल्प करने के लिए बैठा होगा। ...हाँ, हाँ तुम फिर क्यों उठे ठंड में ?"

"नहीं, चलो जरा पहुँचा आता।"

पानी का लोटा ला कर मुँह धो रहे हैं, नन्द जी। "ओहो, ..ऐसे क्यों गरज रहे हो नन्द ! जरा धीमे से मुँह नहीं धोया जाता ? उधर तुम्हारी आवाज से बच्चों की कच्ची नींद टूट जायेगी। इस तरह जोर से खंखारने पर गला फट नहीं पड़ेगा ?"

"क्या समय हो गया ?" कहकर दूसरी कोठरी से किवाड़ खोलकर टुकू की माँ बाहर निकली। जलदी से मुँह धोया। दास जी ले जायेंगे, अतः तलघर से दो मुट्ठी चिवड़े, पुड़िया में एक डली गुड़, एक लोटा, दो-चार दातौन, धोती, गमछा, पात्र, श्रुव, कुशा, पान का बटुवा, नसवारदानी, नारियल तेल की शीशी आदि सब तैयार कर दिए।

"तुम्हारे थैले में तुम्हारे जीजाजी का सारा सामान भर दिया है। समझा सुदेई ! तुम तो अभी जा नहीं रहे। वे उधर से लौटेंगे तो तुम्हारा थैला भी ले आयेंगे।"

दास जी सोने वाले कमरे के सामने बरामदे में इधर-उधर आ-जा रहे हैं। जरा बच्चों को ही देख लेते। कमरे में कैसे जायें ? बहू सोयी होगी। किवाड़ की फाँक से दिख रहा है। बटिया के बाँये पैर का घाव अभी भी सूखा नहीं है ! तलैया के कीचड़ में खप्पर पड़ा था। पानी में डुबकी लेते समय फँस गया। बच्चा इसी बीच कितना सूख गया है! लगता है लंबा हो रहा है।

"इस थैले में सब है, समझे ! और इस गठड़ी में तुम्हारी चद्दर, सुदेई वाली कंबल भी बांध दी है।"

"वह सब क्यों दिया ? उनकी जरुरत पड़ेगी ? अच्छा तो, लाओ, मुझे वह थैला दे दो। मेरी लाठी उस कोने में है। आओ नन्द, चलोगे। पहन लो। ... अच्छा, तो मैं चलता हूँ। सुदेई रहेगा। ठीक है ! और क्या ? देख संभलकर चलना, बहू का ध्यान रखना। लक्ष्मी नारायण किसी तरह उसका भी बेड़ा पार करेंगे ही।"

"दास जी आकाश की ओर देखकर बुदबुदाये- "दुर्गा माधव, दुर्गा माधव, दुर्गा माधव !" चलो नन्द !"

"अच्छा चलो !"

बाहर बरामदे तक आकर टुकू की माँ खड़ी हो गई। दास जी ने मुँह मोड़कर देखा। टुकू की माँ कह रही है, "देखो, शरीर का ध्यान रखकर चलना !"

गाँव के उस ओर वाले नाले तक दोनों चुपचाप चलते गये। "तो...मैं यहीं से लौटता हूँ।"

"लौटोगे...अच्छा !"

"वहाँ पहुँचने में आपको देर तो नहीं हो जायेगी ?"

"नहीं रे, कितना ऐसे रास्ता है जो ?"

"अच्छा, बच्चों की चिंता आप नहीं करेंगे। मैं तो हूँ , सब देख लूँगा। मैं चिट्ठी दूँगा।"

"अच्छा !"

दास जी ने खड़े होकर देखा, नन्द जी भोर के कोहरे में जल्दी-जल्दी दूर ओझल होते गए। मुँह मोड़ कर दास जी ने धोती घुटनों से ऊपर टेक ली। पानी की धार में घुसे। "आदमी का अभाव में स्वभाव नष्ट हो जाता है। साला, दो पैसा होता तो घर में बाल-बच्चों को छोड़कर प्रवास पर जाता मैं ? बहू की अवस्था ऐसी! आदमी को यह लोभ भी कैसा घेरता है !"

सुख-दुख में नहीं चल रहे थे क्या ? मगर अर्थ तो सारे अनर्थों की जड़ है। सारी जिंदगी आदमी, पागल की तरह इस पैसे के पीछे भाग-भाग कर मरेगा। ....क्यों रे, यह पैसा तुझे स्वर्ग ले जायगा ? पैसा भला, सुख ही देता ! वह भी नहीं, यदि पैसा न मिला तो मन में कष्ट, यदि किसी प्रकार दो पैसे मिल गये तो लोगों के मन में कष्ट ! बड़ा अचरज होता है। आदमी के खाने-पीने पहनने की सारी चीजें तो धरती से पैदा हुई, फिर बीच में यह छपा हुआ कागज, पीतल ताँबे के

ये सिक्के क्या हैं ? वो न रहे तो काम चलता ही नहीं ! वह भी साल दर साल कितना बदलता जाता है। रानी मार्का, वेणी मार्का, बूढ़े के सिर वाले गए, फिर आया काना पैसा, वह गया, अब आया है, तिनके जैसा हल्का पैसा ? हम तो बाप-दादों के जमाने से सुनते आए हैं रुपये के सोलह आने, चौसठ पैसे। ये क्या सौ पैसे बिना रुपया ही नहीं होता ! दिन पर दिन जमाना बदल रहा है। लोभ ग्रस रहा है लोगों को, कामिनी-कांचन - ... यही तो पाप है ! ...वह सान्तरा के बच्चे के गले में सोने की जरा-सी जंजीर थी, तो वह, क्या नाम उसका...वह स्साला मदुआ उसका गला टीप रहा था। ...यह सब क्यों ? इस पात्र बूढ़े की ही बात लो ! इसे रात में कभी नींद नहीं आती। आधी रात में भी बूढ़ा डर के मारे गीत गाता रहेगा। भोर होते ही फिर बैठ जाता है। रोजगार करेगा। ...क्यों रे मूर्ख, वह पैसे की बक्सा मरते समय सिर पर लाद ले जायेगा, या तेरे बच्चे ले जाकर तेरे साथ उसे चिता पर रख देंगे ? तुम्हारी अंगूठी भी निकाल कर रख लेंगे रे ! तू व्यर्थ ही इसके पीछे पड़ा है। ...ओं हरि !!! नाले के उस पार घने जंगल से बैलगाड़ियों का धूल भरा रास्ता। दास जी लंबी सांस खींच कर तेजी से कदम उठाते हुए चल पड़े। उजाड़ रास्ते में चिड़ी या कौवा भी नहीं ! कैसा भारी-भारी लगता है। मुड़कर दो तीन बार देखा। गाँव के उस छोर से दो तीन बार कुत्तों के भोंकने की आवाज थोड़ी बहुत सुनाई पड़ी ! बस !

वो सुबल के घर बरामदे में बाघवा भोंक रहा है। क्या ? चोर घुस गए ? नहीं अभी तो बहुत रात बाकी है ..निशा गरजती-सी लगती है। घुटने के नीचे कुछ ढीला-ढाला लगता है। पैर उठते ही नहीं। इसी बीच सूनापन भेदती-सी आवाज सुनाई पड़ी। क् क् के क ए...ए....कँ।"

ओहो ! तो रात बीत गई। यहाँ इन झाड़ियों के बीच कितना सुनसान लग रहा है ! छिः छिः कम मोह है आदमी में जीवन के प्रति ? मोह जितना, भय भी उतना ही ! ओ, इसे काट सकें तो सब योगी न हो जाते। और फिर क्या ?

डेढ़ सौ रुपये गिन देगा कुछ दिन में, कोई कम मालदार है वह भी! उसके पास इस इलाके में सबसे ज्यादा पैसा जो ठहरा ! उसको इन डेढ़-सौ रुपयों की क्या परवाह ! पर पैसे तो हमारे हाथ में पड़ने से पहले ही भाग-माप हो गए। उधार के देने में ही चले जायेंगे चालीस के कराब-करीब। सास-बहू के लिए पहनने की साड़ी भी नहीं। तीसेक की साड़ी। पिछवाड़े की बाड़ की तो लुगदी ही हो गयी है। उसमें कुछ पैसे चले जायेंगे। हो तो गए सौ। ! और रहे पचास। किस ओर पानी की तरह बह जायेंगे, पता ही न चलेगा। लक्ष्मी चंचला जो ठहरी ! अभी होगी, तो अगले क्षण, पता ही न चलेगा। सदा तो अभाव, क्या करे आदमी ?

अच्छा मदनपुर में जो बाबू भैया लोग मोटर गाड़ी में घूमते हैं। उनके पास पैसा न होगा ? होगा, पर उसी के अनुसार क्या खर्च न होगा ? क्यों भई, जितना बड़ा बाँस उतनी ही मोटी पोल, वह किधर जायगी ? वे भी तो बच्चू हमारी ही तरह घुट रहे होंगे। कभी किसी को अभाव ने छोड़ा है या छोड़ेगा ? इसके पीछे दौड़ते रहोगे तो दौड़ते रहो ! पाँच पाये, तो पच्चीस के लिए मन होगा। पच्चीस पाने पर पाँच सौ के लिए। जितना पाने पर भी मन में कभी संतोष होता है ? उसे छोड़ भी नहीं सकता। ...पैसा चबाने पर किसी का कभी पेट भरा है ! पर वह चक्रधर न हो

तो भोजन नहीं कि पहनना नहीं। योगी थाली लेकर घूमता है। उसे तो पैसे की परवाह नहीं, कि लोभ नहीं। उसे पेट के लिए दो मुट्ठी, पीठ पर एक कपड़ा मिला तो संतुष्ट। खा-पीकर जिंदा ही तो रहना है ! पर उससे मन हटा कर पैसा कमाने के लिए लोग क्यो इस तरह पागल हैं ? यह क्या सिर्फ मोह है ? अब तो यही हर बात में योग्यता का मापदंड है। जीवन के बाकी सब प्रयोजन इसकी सहायता से ही पूरे होंगे ...पुरी क्षेत्र में कितने देवी-देवता हैं ! क्या पंडा को पकड़े बिना उन्हें देख सकेंगे हम ? वह तो रास्ता रोके खड़ा है। उसे छोड़कर क्या जा सकेंगे ? वैसे ही जिंदा रहना है तो, बेटे, पहले पैसा निकालो। नहीं तो सूख-सूख कर मरो, तुम को कोई पूछेगा भी नहीं। ...इस्.. खूब है यह दुनिया भी। ..तांबा-निकल के पैसे मनुष्य से भी बढ़कर हुए तब तो धन बल के सामने जनबल क्या है, मन बल क्या है ? कोई नहीं ठहर सकता। तब क्या पात्र बूढ़े की तरह रुपयों की थैली की रखवाली करते-करते प्राण जायेंगे रे ! पेट को रोटी नहीं, तन को कपड़ा नहीं, साला यक्ष है ! यक्ष! भूत खायेंगे उन पैसों को। वैसे मधु संचय करने की तरह पैसा इकट्ठा करने से क्या फायदा ? अबे कमाया है। उसे तो खा-पी लो। पर उसको तो उसी में संतोष है। हम उसे मूर्ख कहें, वह भी तो हमें वैसा ही कहता होगा ? वैसा न होता तो क्या वह सच मूर्ख होता ! साँप बने बैठे रहो बेटे, पैसे पर ! वह तुझे पार कर देगा ! झूठी माया !

कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ी !

अब बैलगाड़ी की लकीरें छोड़ कर दास जी ने पक्की सड़क पकड़ ली है। तब तक उजाला काफी हो गया। खड़े होकर मुँह में पान का टुकड़ा डाल कर बढ़ते चले आगे की ओर।

"नमो नारायण ! नमो नारायण !"

# दीक्षा ग्रहण

"गुसाँई जी महाराज, इन दो बरषों में आप के दर्शन ही नहीं हुए ! महाराज ! आज कल के ये छोकरे अब ब्राह्मण-देवताओं को कुछ नहीं मानते। पता नहीं कैसे मन हो गया जो महाजन ने इस बार आप को बुलाया है ! नहीं तो वह शरीर से मैल की बत्ती भी न दे। शायद उसकी बुढ़िया माँ ने कोई मनौती की होगी ! मगर महाराज ! उसके पिताजी वाकई आदमी थे ! आह ! आप तो जानते ही हैं। कोई साल बैशाख ब्राह्मणों को बुलाये बिना नहीं जाता। आपने तो कई अनुष्ठान किए हैं उनके।"

सनातन दास जी धवलेश्वर के पास पांच दिन से अनुष्ठान पर बैठे हैं। तीन हजार से अधिक बेल पत्र चढ़ाते-चढ़ाते दिन ढल जाता है। खा-पीकर बाहर बरामदे में बैठे हैं। पाटमाली ने आकर चर्चा छेड़ी है।

उस मंदिर के पास बड़े तालाब के किनारे दो घर हैं। एक में लंगड़ा माली तीस बरस से रहता आ रहा है। दास जी उसे पहले से ही जानते हैं। दूसरे में कभी अतिथि अभ्यागत आते हैं तो ठहर जाते हैं।

"हाँ, सुरजा का बाप हरि भगत भला आदमी था। परंतु हम क्या अपने बल-बूते पर आ सकेंगे, बिना इन धवलेश्वर की इच्छा के ? अच्छा ये जो रोज सुबह आते हैं। क्या गंगाधर शतपथी हैं ? वैसे मेरे साथ इनका खास परिचय तो न था। पर ऐसे क्या आदमी हैं ! रे बाबा ! उन्हें देखकर तो किसी का भी सिर झुक जायेगा।"

"महाराज ! इनकी बात क्यों कहते हैं ? वे तो आदमी के भेष में साक्षात् देवता ही हैं। निर्माया पुरुष हैं। प्रभु ने उन्हें क्या कम दिया है ? बेटे सब बड़े आदमी हैं। अब आप उन्हें ऐसे देखते हैं ! वे भी अपने जमाने में बहुत बड़े आदमी थे। वे कोई मामूली आदमी थे ? उन्होंने कौन-सा राज्य नहीं देखा ? ऐसा कोई तीर्थ नहीं जो न देखा हो, अब सब तरफ से मन टूट गया है। रोज नेम से आकर पूरब के उस कोने में बैठते हैं। मन हुआ तो कभी-कभी यहाँ रात में भी रुक जाते हैं। घर में मना कर दिया है। कोई उन्हें यहाँ बुलाने नहीं आयेगा। वे तो किसी से बोलेंगे नहीं, दंडवत करने पर थोड़ा-सा मुस्कुरा देंगे। उस दिन तो महाराज ! मदनपुर आकर धवलेश्वर के दर्शन किए बिना चला जाये, ऐसा कौन है ? किसी का भी इतना साहस नहीं होगा। ऐसा मंदिर तो महाराज संसार में और न होगा ! प्रभु बिराजेंगे अतः नन्दी और भृकुटि को हुकुम हुआ। दोनों ने पकड़कर इस पहाड़ को जरा-सा उठा दिया। नहीं तो महाराज, देखिए, इन घोर शिलाओं से भरा पहाड़। आदमी के हाथ से इस तरह दो खंड होकर फटता ? पत्थर ऊपर से नीचे तक तरेड़ कर फट जायगा, मगर इस छोर से उस छोर तक बीच में फटना आपने और कहीं देखा है ? उसी के भीतर फिर स्वयंभू हैं। और यह जलाशय तो आप देख ही रहे हैं ! दोनों ओर दो पर्वत ! उधर आँख पहुँचती ही नहीं। आदमी ने नहीं खोदा। यह देवस्थान, महाराज, और अपार है इसकी महिमा ! भुवनेश्वर में वे लिंगराज

हैं। उनको नहीं निन्दूंगा। मगर...मगर ऐसे प्रत्यक्ष देवता, स्वयं सारी व्यवस्था कर प्रकट होना कहीं नहीं देखा। क्यों, महाराज, आप तो बहुत चिंता में लगते हैं ? मन ठीक ठिकाने है तो ?"

"नहीं, नहीं, सब ठीक है।"

"हाँ, क्या कह रहा था। मंत्री आये थे। उसी समय इन घाटों पर सड़क पर बिजली के खंभे लगाये हैं। ये सीढ़ियाँ भी टूटी-फूटी थी। उन्हें भी ठीक-ठाक करा दिया। आँखों देखी कहता हूँ महाराज...मंत्री जी ने देव-दर्शन किए ही थे कि आँखें उस कोने की ओर उठ गईं। देखा बूढ़े खड़े हैं। सब देख रहे हैं। जाकर उनके पैरों तले गिर पड़े। बोले, - सर आप यहाँ ? ...सब अवाक् होकर देखते रहे। कौन है यह जिसे मंत्री भी सिर झुका रहे हैं ? पूछ-ताछ करने पर पता चला कि वे कलकत्ते में उन्हें कालेज में पढ़ाते थे। ...तब बूढ़े को मंत्री सहित सब बड़े-बड़े लोग घेरे खड़े थे। मगर उनकी तो वही हल्की-सी मुस्कान थी। बड़े अद्भुत आदमी हैं। महाराज, कोई नहीं माप सकेगा। बूढ़े हो गये तो क्या हुआ, देखने में अग्निपिंड हैं। मुझे तो, महाराज, बहुत डर लगता है। आश्चर्य होता है कि वे आप से इतनी देर तक बातें कैसे कर लेते हैं ? आपको विश्वास नहीं होगा, महाराज, वे ऐसे किसी से नहीं बोलते।- - - मैं जरा चलता हूँ उधर साग चढ़ा दिया था, देख आता हूँ।" लंगड़ाता वह चला गया कमरे की ओर।

डर क्या, साले तुम अकेले को ! इस आदमी को जो मुश्किल होती है। क्या बतायें। बच्चू बूढ़े के पास बैठने पर कैसे हीनता का अनुभव होता है। यह आदमी इतने दिन तक संसार में वृथा ही पड़ा फंसा रहा, कुछ नहीं जान सका। पर शत्पथी महाशय तो ज्ञान के भंडार हैं। पूर्व भाग्य न होने पर ऐसे महापुरुष से भेंट होना भी सहज नहीं। आज कह रहे थे - "संसार में बंधन हमारे अपने बनाये हुए हैं। मकड़ी अपने पेट से सूत निकाल कर जाला बुनती है। और फँस जाती है। बात ठीक है। पर जो दिखता है और उस में आदमी प्राण देता है, उसे मिथ्या कह देना सहज है। धन, दारा, पुत्र, सब तो माया के बल से हमारे चारों ओर लगे रहते हैं। उन्हें दूर हटा देना क्या कम साहस की बात है ? नहीं, महाराज, वह हमारे जैसे अज्ञानियों के बस की बात नहीं। मक्खी जितना भी पंख फड़फड़ाये उड़ने के लिए, गुड़ से छूट नहीं सकती, उलटे और अधिक लिपटती जायगी, गुड़ में पंख डूबते ही जायेंगे। फिर क्या लाभ ? सिर्फ थकने की बात है ! करोड़ों में एक कोई उड़ जाता है। उसकी बात अलग है उनके पंखों में ताकत अधिक है या गुड़ सूख गया है। पकड़कर भी ना पकड़े, उस तरह थोड़ा-बहुत लपेट लिया तो क्या हुआ ? ...बूढ़े प्रोफेसर थे। सारे भारत में घूम आये हैं। कोई शास्त्र और बाकी नहीं छोड़ा। परसों किस तरह मुझे गीता समझा रहे थे। हम क्या ढाई अक्षर नहीं पढ़े हैं ? पर उस ज्ञान के अनुसार कौन करता है ?... "बचपन से बड़ा होना जो, बूढ़ा होकर मर जाना भी वही" कौन मना करता है। "शरीर जलकर खाक हो जायेगा, पर आत्मा उसी तरह और एक घर में प्रवेश कर जायेगी।" यह भी ठीक है। क्या होगा इन सबसे, हम तो सुन-सुनकर पक गये। पढ़ते आये हैं। कभी मन से दुविधा नहीं गई। "उन्होंने कहा कि हमारे मन में विश्वास का अभाव है। क्यों जी ? ...वैसे हजार देवताओं पर विश्वास करना विश्वास नहीं है। ब्रह्म में वही एक में अगाध विश्वास

चाहिए।" अरे भइ, विश्वास वही भक्ति ही है न ? जगन्नाथ क्या ब्रह्म नहीं है ? या उनकी कोई भक्ति नहीं करता ? हम तो उनके पास सब देखते हैं। सब देवता उनके पास ही जमे हैं। वे ही मूल हैं। वे ही आदिकर्ता हैं।

हाँ, वे इस पर कितनी अच्छी-अच्छी बातें कह गये ! बोले, जगन्नाथ जी का कितना अद्‌भुत रुप ! पैर नहीं, वे अचल हैं। स्थाणु हैं। तुम्हारे पास आ कर कुछ नहीं कर दँगे। हाथ नहीं, वे कर्म में निर्लिप्त हैं। कान नहीं - इस्... कैसी बात है ? सच ! जितना पुकारो, वे नहीं सुनेंगे। सिर्फ श्याममुख पर सूर्य-चंद्र की तरह बड़े-बड़े गोल-गोल नेत्रद्वय हैं। वे वहीं गंभीरता से सिर्फ देख रहे हैं। उनकी आँखों में पड़ जाय वैसा काम करना पड़ता है। वही धर्म है। ओह ! मैं जितना सोचता हूँ, उतना ही इस में खोता जाता हूँ। कितनी चमत्कार से भरी लगती हैं। पर कैसे खुद को दोषी-सा लग रहा है। मानो इन अनजानी बातों को जान कर सूत से प्रभु को नाप रहा हूँ।... दरअसल ऐसा कुछ नहीं रे, इस बात से उस बात को जोड़ देते हैं। इसलिए चुप रहना पड़ता है। नहीं तो यह ज्ञान हमें नहीं चाहिए। क्यों जी, भगवान कोई यंत्र है जो उन्हें जरा-जरा-सी बात में बाल की खाल खींचने की तरह अर्थ चाहिए। तुम ऐसे सोचते हो, पर वे तो मन देख कर रुप दिखाते हैं। इसका कोई हिसाब है ? हाँ, उनकी साखी रखकर उनके नाम पर ही सब कुछ करना होता है। वही अकेला तो सब करता है। कहा भी तो है - "अनादि परम कारण।" सब बातों के मर्म को उन से बढ़ कर कौन जो लिख सके ? जगन्नाथ दास उड़िया में भागवत रचयिता। पर वे हल्के-हल्के मुस्करा कर कितनी बातें ज्ञान के बीज रुप में सरलता से कह देते हैं। सुनने में कितनी मधुर ! मन में नव-विश्वास भर जायेगा।

"तू" या "मैं" कुछ नहीं। वही सर्वत्र अवस्थित है। सब घट-घट का वासी है। अतः जो सोचते हो, कहते हो या करते हो, सब वही करता है। यही जानो, इतना हो गया, तो फिर अहंकार नहीं रहेगा, ममता नहीं रहेगी। अपने पराये का ज्ञान नहीं रहेगा। घर-बाहर का भेदभाव नहीं रहेगा। काम करने पर उसमें भी और मोह नहीं ग्रासेगा, फल की आशा नहीं रहेगी। अतः दुख-सुख जीवन से चला जायेगा। पद्‌म-पत्र पानी पर तैरने की तरह संसार में रहकर भी उसमें न रहने को तरह रहोगे"

कितनी बातें इसी तरह मन को भातीं। पर इनमें और नई क्या है ? वही तो पुरानी शास्त्र विद्यायें हैं। इनमें मन डालकर सब समझे तब तो कोई असुविधा नहीं। परंतु असल में आदमी शुरु कहाँ से करे ? यह संसार तो जैसा है, इसमें दम लेने भर की तो फुरसत नहीं। जितना चाहेगा, प्रभु से लय लगाने, वह क्या सहज ही संभव है ? हजार बातें आकर मन में बस्ती बना कर रह जायेंगी। क्या करें ? जीभ चाहेगी स्वाद चखना। बच्चे घर में अच्छा पहनेंगे। स्त्री को संसार का आधा भाग मिले तो भी पूरा न पड़े। यह सब देखते-देखते ही दिन रात बीता और आदमी करे क्या ? अच्छा, इस शरीर को भी घोड़े की तरह खिला-पिला कर न रखो तो वह सहज दौड़ेगा कैसे ? शरीर को जो कुछ चाहिए, मन हुआ उन सब का मालिक। जीभ खायेगी, परंतु सुख मन का या जीभ का है ? शरीर स्वस्थ है। तो मन प्रफुल्लित रहेगा। इस साले शरीर को फिर और कोई चलाता है ? चलाता ही होगा, नहीं तो शास्त्र क्या झूठ कहता होगा ? पर अपने शरीर से सुख-दुख क्या भिन्न हैं

- बड़ी असुविधा वाली बात हुई यह तो। इस पर विश्वास क़रना सहज है ? महा समुद्र में तो चारों ओर पानी ही पानी। कितना गहन है। कोई हिसाब ही नहीं। उस पानी को उलीच कर नीचे की जमीन देखने की कहे तो कैसे देखेगा ? जितना पानी उलीचोगे, वह तो उतना ही भरता जायेगा। वैसे ही उस नमकीन पानी में भींग कर, उसे उलीचते-उलीचते ही जीवन जायेगा। हाँ, साला, यदि कोई नाक भींच, सांस रोक डुबकी लगाये तो जमीन छू सकेगा। पर वैसे सपूत हैं कितने ? सब ऊपर ही पानी पीटते रहते हैं। भींगते रहते हैं !

दास जी ने सांस ली... पहाड़ के कारण वहाँ अंधेरा जल्दी ही उतर आता है। फिर यह जगह भी इतनी सुनसान है कि अकेला बैठने पर बहुत सन्नाटा लगता है।

"जाता हूँ, महाराज पानी बाल्टी लाऊँगा। इस बार हाट से एक अच्छी-सी मिट्टी की हंडिया लाये बिना बिल्कुल नहीं चलेगा।"

बाँया पैर खम खाकर उठते समय बाल्टी टन् कर बज उठी। पाटमाली दास जी को दो शब्द कहकर पोखर की ओर पानी के लिए चल पड़ा।

पोखर के उस ओर किनारे पर दो-चार बड़े मोटे-मोटे पत्थर पड़े हैं। वहीं से इस हलके अंधेरे में ही एक सियार भूंक उठा। उसके पीछे-पीछे और भी दस-बीसेक मिलकर यों ही दो-चार बार भूंक उठे। इसके बाद निस्तब्धता छा गई। दास जी को लगा मानो वह उन्हें दबोच ही लेगी। जरा सिरहरी-सी लगी। उन्होंने इधर-उधर देखा और छिपाने से क्या होगा ? उन्हें, सच, डर लग रहा है। छि: छि: क्या ऐंसा मोह है आदमी का इस जीव के प्रति ? ओह ! बच्चों को ही फिर क्या कहा जाय ? मैं आकर बूढ़ा हो चला। मुझे भी अंधेरा घिरने पर या सुनसान होने पर डर लगता है। कहीं मौत आ जाय, इसीलिये तो इतना डर है ! अरे जा ! इस धरती पर कौन साला है जो सिर पर अमरता बाँधकर आया है ? मारेगा तो मर जायेगा, उससे क्या हो जायेगा ? - धरती क्या एक के मरने पर मिट्टी-बजरी हो जायेगी ? अरे, फिर इतना डर क्यों ?"

ऊँचे स्वर में दास जी मन बोध चौंतीसा के कुछ पद बोलने लगे :-

सुनरे मनुवा बात मानजा.... मेरी।
चलो देख लें श्यामल श्री मुख,
कर ना अब तू देरी..।
कितने दिन से आश लगायी,
कब घट जाय छोड़ी।
क्या लेकर तू जायेगा जब,
टूट जायेगी डोरी ..।
सुनरे मनुवा बात मान जा मेरी ...।

"बोलिये महाराज और बोलिये - यह मनबोध चौंतीसा किसी जमाने में गुरुजी ने हमें पढ़ाया था। पर आज भी याद है, कौन गाता है अब ...ये जो पद हैं! इन्हें याद कर पढ़ने से महाराज, मन अपने आप संसार से छूट जायेगा !"

"सच ठीक ही तो कहते हो !"

"आप बोलते रहें महाराज। मैं पानी डाल कर अभी आया।"

"झाड़ फूँक कर भूत भगावे,
घर घरनी भी तेरी।
बंधु कुटुंबी न्हाय-धोय कर
क्रिया करेंगे तेरी।

वाह, कितनी सच्ची बात है ! आदमी तो व्यर्थ ही उनको लेकर घुट रहा है। ये सब कोई किसी के नहीं ? सब अपने-अपने रास्ते चलते हैं।" झूठी माया झूठी नगरी।"

इधर तो कहता है "सब अपने-अपने कर्म के लिये दायी हैं। कोई किसी के लिए न सोचे। इन सब से मन को हटा कर ले आओ।" फिर उधर कहता है - कुटुंबी बने हो तो उनका पालन-पोषण करना तुम्हारा धर्म है। ये तो बड़ी जटिल बातें हैं। ससुरी ...। भई, इसमें किसे करे, किसे न करे ! ओह ! असल बात वहाँ नहीं, बात यह है कि पाँच आदमियों के साथ रल-मिलकर रहें तो वे जैसा करेंगे, यह आदमी वही करने को बाध्य है...इसमें अकेला रहने का साहस नहीं है। इसलिए एक साथ रहना, एक सुविधा नहीं तो और क्या है ? जीवन में आधा तो आदमी जग-हँसाई से डर कर बाल-बच्चों का भरण-पोषण करता है। बाकी आधा आशा के सहारे पोसता है। शायद वृद्धावस्था के दुर्बल समय में बेटा बड़ा होकर पूछेगा, भरण-पोषण करेगा, पालेगा। इसी में मोह छुपा है। मेरा कहने का अधिकार यदि न होता तो दूसरे पशुओं की तरह उसे पाल-पोस कर बड़ा करने का दायित्व भी न रहता। मगर माया भी कैसा जकड़ लेती है कि उन सब को देखते ही मन अपने आप पिघल जाता है... जटिया नया कमीज पहन लेता है। या अच्छी-सी मिठाई कभी सब साथ बैठकर खाते हैं तो कैसा आनंद लगता है ! नहीं कैसे आयेगा रे ! वे सब आत्मा से जो निकले हैं। ये, पर इतने ज्ञानी हैं। वे कहते हैं - यह सब मिथ्या है। इसमें एक बार फँस गए तो फिर निकलना मुश्किल है। इसका मतलब तुम्हें कोई संन्यासी बनने को नहीं कह रहा है। तब तो हार कर संसार छोड़ बैठे यही कहना पड़ेगा। जरा-भी उपेक्षा किये बिना गृहस्थ धर्म का पालन कर। बस, मन रहे नीलाचल में। तुम्हारे परिवार में सब का तुम पर अधिकार है। तदनुसार सब अपना-अपना हिस्सा लेंगे ही। सब को समान अनुपात में स्वयं को बाँट डालो। ऊपर ही ऊपर इस शरीर से जो आमदनी होगी उसी पर उनका अधिकार है। मगर सावधान ! तुम्हारे आत्मा के पास ये सब न जा पहुँचे ! मेहमान जितने भी हों घर के बाहर बरामदे में ही तो बिछा कर रात भर सुलाओगे, उन्हें देवता के घर में ले जाकर मत भर देना।

यह सब तो सही है। महाराज, पर मन तो शरीरधर्मी है। वह फिर इससे भिन्न कैसे हुआ ? मन पर तो ये सब पहले ही आसन जमाये बैठे हैं। तभी तो यह शरीर चलाता है, नहीं तो यह जड़ शरीर क्या स्वयं कुछ करता ?

बैठ गए यहीं जरा थिर होकर। इसके बाद थोड़ा मुस्करा कर कहने लगे- "सच है, पर जिस मन की बात तुम कह रहे थे वह तो स्थूल मन है- वह तो एक इन्द्रिय है। एक और सूक्ष्म चेतना तुम्हारे अंदर है। उसे चित्त कहते हैं। उसे शुद्ध रखना पड़ेगा। इधर बाहर जो कुछ हो रहा है होने दो। बस अंत में शांति रहे।"

.यह सब क्या अब तक मेरी समझ में आया था ? हाँ, असल गूढ़ ज्ञान कहते हैं।

वैसे पंडित हों तब जाकर उनकी बात का अर्थ समझेगा। क्या हम जैसा ? छिः.... और भी कई बातें कही उन्होंने। बोले –"आदमी में पशु स्वभाव भरा है। उस विचार से आदमी जो, पशु भी वही। सिर्फ भेद इतना ही है कि वन का पशु बिगड़ कर हिंस्र हो जाता है। और आदमी मन के पशु को पालतू कर लेता है। वह है विवेक बुद्धि। लेकिन जितना पालतू हो तो क्या हुआ ? पशु तो फिर पशु ही ठहरा ! उसे उसका आहार न दिया तो वह गर्जेगा, टिकने नहीं देगा। एक उदाहरण देता हूँ। गायों का झुण्ड लेकर सुबह ही सुबह चरवाहा उन्हें गोचर जमीन पर छोड़ देता है और स्वयं पेड़ के नीचे बैठ कर बंशी बजाता है। वैसे ही संसार के इन जंजालों को मुट्ठी-मुट्ठी दाना डाल कर स्वयं चित्तशुद्धि में लग जाओ। उन्हें चरने न देना जितना बड़ी भूल है उनके पीछे हरदम दौड़ते रहना उतनी ही बड़ी भूल है।"

वाह ! यह तो मन में लोहे की लकीर खिंच गयी। उन्होंने बहुत ही सही बात कही है। ऐसा होता है पंडित ! नहीं तो वह नीलकंठिया ! कहाँ राम-राम, कहाँ टाँय-टाँय, छोड़ो, पर उन्होंने अपने जीवन का उदाहरण दे दिया। हमारी बात क्या उन्होंने समझी है ? क्यों जी, हम ठहरे सब बात में अभाव वाले। इधर पैसे का बल नहीं, मन का बल नहीं, बुद्धि का बल भी कम ही है। ज्ञान बल की तो बात ही क्या कहें ? उन्होंने जो गाय चराने वाली बात कही, जिस की वैसी गोचर जमीन होगी तभी तो। जिसकी नहीं है वह तो इस बंजर से उस सूखी धरती पर अपने झुंड को लेता फिरे ! उसे फिर समय कहाँ वंशी बजाने का ? ...महाराज, हम लोगों के लिये यह बड़ा कठिन है। आप सोचिये। हाँ, आपने जैसे बताया अभाव में प्रभु की याद तो अधिक आती है। जितना अधिक जंजाल घेरेगा, यदि थोड़ा चैन है आदमी को तो, उसे उतना ही असहाय अनुभव होगा। वह उतना ही प्रभु पर निर्भर करेगा। पर आँख मूँद लेगा तो माया कहाँ से उठा कर कहाँ पटकेगी उसका कोई हिसाब भी नहीं।

"मुझे जरा देर हो गई, महाराज ! आप बैठे हैं। मैंने सोचा दो रोटी खाकर ही चला आता। इस जगह महाराज, इतनी ठंडी हवा, और कहने की बात ही नहीं। घड़ी भर बैठ गए तो नींद उतर आये।... ओहो, हरि, हरि, हरि !"

बरामदे के उस ओर दीवार के सहारे टिक कर पाटमाली बैठ गया।

"आप की चिट्ठी का उत्तर घर से कल तक तो आ ही जायगा, महाराज रास्ता तो इतना ही है। आदमी सुबह जाकर शाम तक लौट आ सके। पर डाक में चिट्ठी पड़ने से पहुँचते-पहुँचते तीन दिन लग ही जाये।

"सच है भई, मन कभी-कभी चक्कर में पड़ जाता है। इस संसार में कोई किसी का नहीं। परंतु यह जो माया लगी है, उसमें पिरोये बिना चारा भी तो नहीं। बहू की इधर अवस्था, बेटा उधर घर पर नहीं, नन्द जी हैं। वे हमारे साले हैं - वे भी तो अभी कच्ची उमर के ही हैं। उन्हें क्या मालूम ? ऐसे में आदमी दो पैसे के लोभ में चला आया। अच्छा, इन धवलेश्वर की इच्छा। रघुनाथ को पुत्ररत्न दें, इनके पास ही आकर मुंडन करायेंगे।"

"बस, यही हुआ समझें। यहाँ आकर कभी किसी की मनौती निष्फल नहीं हुई।" कुछ समय तक दोनों चुप रहे।

"अच्छा महाराज, मैं तो मूर्ख आदमी। पढ़ा लिखा भी नहीं। सिर्फ धवलेश्वर की सेवा करना ही मेरा धर्म है। एक बात किसी को पूछूँ-पूछूँ बहुत दिन से मन कर

रहा है। पूछा नहीं जाता। उन बूढ़े को पूछता, पर डर लगता है। ..बात यह है कि जितने लोग यहाँ आकर जुटते हैं। सब पहले से कुछ न कुछ मनौती मान कर आते हैं। बहुत से तो जोर से पुकार-पुकार कर कह जाते हैं। मेरी समझ में नहीं आता मुझे यह तीस से भी ज्यादा साल हो गए। कभी कुछ मनौती करने की इच्छा नहीं हुई। पता नहीं क्यों, लाज-सी आती है। ठाकुर जी को देखोगे। और देखते-देखते क्या मांग बैठोगे ? वह भी फिर पहले से ही, ठीक-ठाक कर आओगे। ये भी कोई बात हुई ?"

"इस् ! कितनी बड़ी ज्ञान की बात पूछ ली भई !" दास जी तनिक रुक गए। फिर पाटमाली को देखकर कहने लगे - "वो उस दिन कह रहे थे कि चार प्रकार के लोग यहाँ आते हैं। जिसमें विपद पड़ी होगी, जो जानना और समझना चाहता होगा जो कुछ कामना किये होगा और जो ज्ञानी। इस तरह हुए चार प्रकार ! प्रभु सब के मन की बात जानते हैं। और तदनुसार फल भी देते हैं। कहा है :-

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति तिन देखी तैसी। बाकी इसमें एक झुंड जो हो हल्ला करते हैं। वो तो बस आदत के वशीभूत होकर चिल्लाने की बात है, उसका कुछ अर्थ भी नहीं कि कोई हानि-लाभ उससे नहीं।"

"ठीक ठीक कहा महाराज आपने।"

"समझा भई माली ! तुम्हीं एक सुखी हो। हमारे जैसे हजार जंजाल तुम पर नहीं हैं।" तुमने इस संसार में न फंस कर बहुत अच्छा किया। नहीं तो व्यर्थ ही घुटते रहते।"

"नहीं जी, यह आप जैसे ज्ञानी आदमी क्या कह रहे हैं। मेरा भी कोई दिमाग है ! मैं आप को क्या बता सकूँगा ? पर महाराज, संसार में घुसे बिना क्या संसार छोड़ता है ? मैं तो बचपन से ही यहाँ हूँ। मन में पाप कभी नहीं घुसा। क्या यह मैं दावे से कह सकता हूँ ? असमर्थ आदमी हूँ। घर संसार करना तो सहज नहीं महाराज। पर अकेले मन माना ? अंत में मेरी रिश्ते में एक बहन थी, उसका एक लड़का और लड़की लाकर पास रखा। उनके लिये जो मुझ से संभव हुआ, सब किया। लड़के ने पढ़कर नौकरी कर ली। लड़की सुख से ससुराल में है। संसार न हो कर भी मेरा संसार है। जंजाल है। जीव रहने तक जंजाल तो रहेगा ही, पर लगता है बूढ़े को यह सब नहीं व्यापा। उनका सब होकर भी कुछ नहीं। महाराज यही तो हुई असल बात ! मन के अंदर से जो संसार की बात निकाल सका, वही एक सुखी है। बाकी हम जैसे अज्ञानी..."

अरे वाह ! यह तो बड़ा पंडित है ! मैं तो इसे मूर्ख समझ रहा था। मुझे तो इसने पाठ पढ़ा दिया ! यह भी ससुरा सच बात कह रहा है कि मन के अंदर से सांसारिक बातें निकाल देनी होंगी।

दास जी ने कहा - "माली, सच है, तुमने सोलह आना सच समझा है।"

बहुत रेशमी ठंडी हवा बह रही थी। माली ने मन ही मन और दो-चार बातें कहीं होंगी। फिर दीवार के सहारे ऊँघने लगा।

पहाड़ के ऊपर लाखों अनगिन तारे।

सच, यह अचंल पर्वत कितना कुछ नहीं सह रहा है। धूप, बर्षा, शीत, सब

पीठ पर सैंकड़ों वर्षों से लादता आ रहा है। पर उसका हृदय पवित्र है। खुला है। अपने अंदर स्वयं को स्थान दिया है।

यह तालाब क्या कम है ! जिसे जितना पानी चाहिए, इससे ले जाता है। लहरें आती हैं। खाली ऊपर ही तो। भीतर का पानी क्या हिलता है ? वह स्थिर है।

पर इस घर के अंदर रह कर आदमी चला जायेगा, घर पड़ा रहेगा। इसी प्रकार यह जीवन है। बहुत सारी माया-मोह इसके साथ जोड़ कर क्यों अधिक जटिल करें इसे ?

पहर रात वाले गीदड़ भूक उठे। चारों ओर गूंज कर वही शब्द दास जी को स्थिर बैठने नहीं दे रहा है। दास जी उठ खड़े हुए।

माली दीवार के सहारे लंबा पसर कर खर्राटे भर रहा था।

"अरे माली, चल घर में जाओ, हे...ओ...हो..सुना, उठो..." ओहो,,देखा। आँख कैसे झपक गई ! इस पवन का गुण ही यह है - अच्छा, समय हो गया, चल हम सोयेंगे।"

पर माली नींद में ऊँघता-सा लड़खड़ाता-सा कमरे में आया। किवाड़ बंद किया। दास जी ने मन ही मन कहा - "हे प्रभु ! इस अज्ञानी को पार करो, हे जगन्नाथ !

भवसागर से पार उतारो, रखियो अपनी लाज।

पतित उधारण नाम तिहारो, सांचो करियो आज।।

# नकुल भाव

"महाराज, बच्चों के लिए क्या कुछ ले आए? दोपहर में गए थे और अब पहर रात बीत गई। ऐसे क्या खरीद रहे थे?"

धवलेश्वर के यहाँ अनुष्ठान करते आज सनातन दास को पूरा-पूरा एक महीना हो गया। महाजन देर तक भूखा नहीं रह सकेगा, अतः फल दान का कार्य आज जल्दी पूरा हो गया। दासजी दक्षिणादि लेकर निवास पर आए। जल्दी-जल्दी पकाकर जैसे-तैसे भोजन किया और तुरंत मदनपुर बजार से दो-चार चीजें खरीदने निकल पड़े। सच, घूमते-घामते रात एक पहर बीत गई। माली बेचारा लंगड़ाता-लंगड़ाता उनके आते ही कमरे में घुस आया।

"और क्या खरीदी करेगा कोई? यहाँ तो बाबू भैया हों तभी अंदर घुसा जाए। एक साला छूने का भी पैसा लगे। सच, जमाना कितना मंहगाई का हो गया है? गमछे का पाँच रुपया! एक कमीज के सात रुपये! कस्ते के टुकड़े का बारह रुपये! इसमें क्या खरीदे, कैसे गुजारा करे, बताओ कोई?"

"पर असल चीज ढूँढकर लाए हैं!... ये सब दुहरी बुनाई के हैं। पानी में सूत और भी फूलेगा। और नहीं तो क्या? समझ लो रगड़-रगड़ कर साल भर तो पहन ही लेंगे इसे। और जो कुछ मिलता है, सब खाली छनछना जाल-सा... मकड़ी के जाले के सूत जैसा समझो।"

"उनमें से मुझे क्या नहीं दिखाया? उसे पहनने पर तो लगता है जैसे शरीर पर कपड़ा है ही नहीं, सब पानी की तरह लगता है वो तो। अटपटा, शरीर बाहर दिखेगा। उसे पहन कर तो बस अपनी इज्जत खोना ही है यार!"

"सच, आप ने ठीक कहा। उसे पहन कर जोर से एक बार छींक दिया तो बीच से दो टूक हो जाएगा। फिर उसके अधिक पैसे! लो सुनो!"

'लेकिन उसे लेने वाले भी क्या कम हैं? उसके लिए हर दुकान पर भीड़ है। और! इस मोटी धोती को देखकर तो नाक उनकी तीसरे आसमान पर चढ़ जाती है। सब पतली छनछनी देखकर पैसे गिन देते हैं।... क्या सुनोगे? अच्छा, छोड़ो, जो हुआ सो हुआ! कुछ रुपये समझ लो पानी में गए। उठें – बाँधा-जूड़ा कर रख दें, भोर, तड़के ही चले जाना है।"

"अच्छा, तो सुबह ही आप जा रहे हैं? आप महीने भर रहे तो आदमी आदमी जैसा लगता था। अब फिर अकेले का अकेला। खैर, ये सब तो भाग्य की बात है!"

"और नहीं तो क्या? देव इच्छा न हो तो आदमी से क्या होता है। खैर, इन धवलेश्वर की कृपा हुई तो फिर भेंट होगी। देखना, कोई रस्सी हो तो तुम्हारे घर में – इस सबको एक ही जगह बाँध देता।"

"देखता हूँ।"

"खैर, अब चलेंगे, यहाँ से किस युग से बाल-बच्चों को देखा नहीं, मन बहुत बेचैन हो रहा है। नंद तो वहाँ होंगे ही। सारी बात वे देख लेंगे। बहूरानी का क्या

हुआ, क्या नहीं, कुछ पता ही न चला।

"अच्छा, उस प्रभु की इच्छा!"

"यह चलेगी या नहीं, देखिए? और एक है। मगर वह बहुत मोटी-मोटी है।"

"हाँ, यह बिलकुल ठीक है।"

"महाराज, पकड़ कर बाँध देता हूँ, लाइए।... इतना ही है या और कुछ?"

"नहीं, भई, और कहाँ से आएगा? लोटा रह गया है। बाहर पानी-सानी जाने के लिए चाहिए सुबह-सुबह। उस थैले में जगह है। उसे वहाँ भर देने से चलेगा।"

"क्यों आज रसोई बनाई या नहीं? इस बेला क्या भूखे ही सोने का विचार है? मैं ला देता हूँ, कुछ चिउड़े, भिगो कर खा लीजिए।"

"नहीं, नहीं, चिउड़े रात में क्यों खाता रहूँ?"

"क्या खाली पेट इतना रास्ता चले जायेंगे? बिना खाये रात में कैसे सोयेंगे? भले-से केले भी आज एक आदमी लाया था। उन्हीं में से दो-चार ला देता हूँ। थोड़ा शक्कर डालकर खा लें।"

"अच्छा तो ले आओ। तुमने जिस तरह कहा है, मना करने का भी उपाय नहीं। तुम्हारे यहाँ भी कुछ खा-पीकर जायें, और फिर भेंट हो या न हो।"

"यह क्या कह रहे हैं, महाराज! मेरी फिर क्या चीज है? कोई किसी को देता नहीं कि कोई किसी से लेता नहीं। उसी एक की ही चीजें हम सब बाँट कर खाते हैं।"

दासजी हाथ-पैर धोने के लिए बाडी की ओर चले गए। वे समझ नहीं रहे थे, वरना वैसे देखा जाए तो उन्हें तेज भूख लग रही थी। और अब कोई प्रेम से दो चिवड़ा दे रहा है, तो उसे क्यों मना कर दें?

अचानक उन्हें याद आ गए गंगाधर शतपथी। उनकी तो ताम्बे की-सी देह। खाण्डे की-सी नाक। दासजी जल्दबाजी में भोर ही नहा-धोकर महादेव जी के पास पहुँचेंगे तो वे कोने में पद्मासन मारे बैठे होंगे। दृष्टि भ्रू-लता के बीच टिकायी रखेंगे। दासजी थम कर खड़े रह जाते। उन्हें लगता है जैसे किसी पर्वत की आत्मा तपस्या में लीन है। देर बाद साँस लेकर दबे पाँव आगे बढ़कर पूजा की थाली रखते। अत्यन्त सावधानी से कोई शब्द किए बिना अपना काम शुरू कर देते।

दासजी पैर धोने के लिए झुके हुए हैं, यह विचार आते समय हाथ की जगह हाथ और पैर की जगह पैर थम गया।

"उधर से ही महाराज अच्छा पानी भी लेते आना, चिउड़ा धोने के लिए।" मानो, स्वप्न देखकर जगे हैं! दासजी ने हड़बड़ी में पैर धोये।

"अच्छा, उधर ही रख दो। मैं पोखर हो कर आता हूँ।"

"शायद शक्कर कुछ कम पड़े, जो थी ला दी है।"

"ओ हो, जितना है उसमें क्या नहीं चल जाएगा? वहीं रहने दो।"

बाहर का किवाड़ बन्द कर पाटमाली लंगड़ाता-लंगड़ाता चला गया। पहनी हुई धोती धोकर कमर तक नहा लिए। पर मन में विस्मय, श्रद्धा, भय, भक्ति आदि सब मिलाकर दासजी शतपथी को समझने की चेष्टा कर रहे हैं।

गीली धोती निचोड़ कर उससे मुँह पोंछते-पोंछते दासजी घर के अन्दर आए। किसी दिन दीवार में दो कील गाड़ी थी, उसी पर फैला दी। रात भर में सूख जाएगी।

यहाँ आदमी महीने भर रहा, पर तीन ही बार उनसे बातचीत हुई है। अच्छा, भला वे ऐसे क्या ध्यान करते हैं? और कैसे इतनी-इतनी देर तक ध्यान कर सकते हैं? पूछने पर वे क्या नहीं कहते? पर उन्हें पूछने के लिए भला कम साहस चाहिए! छोड़ो! अदरख का व्यापारी जहाज का भाव क्यों करे! विधाता ने तो सुसरे को मूर्ख बनाकर जन्म दिया। संसार में घुट-घुट कर प्राण जाने की लकीर इस भाग्य में खींच दी। और आगे मन लुभाने से क्या फायदा? वे तो समर्थ, ज्ञानी पुरुष हैं। सब जानते हैं, समझते हैं। आत्मा की मुक्ति का उपाय कर रहे हैं बैठकर। संसार का जञ्जाल तो अब रहा नहीं। जिसका इतना न रहा वह तो भाग्यवान है। क्यों भई, जिसकी संसार की चिन्ता मिट गई और आत्मा के चिन्तन की सुविधा मिली, वही तो भाग्यवान! बूढ़े जी की और सारी रस्सियाँ खुल गई हैं। अब सिर्फ पिंजरे से उड़ जाने की बात है। ओह! भला, कलियुग में ऐसे कर्म कर सके ये!! इन्हें ही तो महात्मा पुरुष कहेंगे।

अरे वाह! कैसी मीठी है यह कदली और यह चिउड़ा कम पतला है! माली ही मटा अच्छा खाता है। हाँ, खाएगा नहीं तो और क्या करेगा? उसके आगे नाथ न पीछे पगहा। लंगड़ा है तो क्या हुआ, इस पिण्ड को तो पालना ही पड़ेगा।... अरे, तुम इतने पण्डित हो गए, इसलिए तो यह देह तुम्हारे लिए मिट्टी समान हो गई, नहीं तो पेट के लिए दो मुट्ठी, पीठ पर दो गज कपड़ा तो सब को ही चाहिए। यह बेचारा जितनी दूर हाथ बढ़ा सकता है, दो मुट्ठी लाकर पेट भरता है। और कोई पाप तो नहीं करता। ठीक करता है। न मिला तो नहीं, मिलता है तो फिर क्यों नहीं खाए। उसमें फिर कौन-सा मोह लग जाएगा।

ओह! बढ़िया तासीर हुई, इसमें तीन-चौथाई नारियल कोर कर डालता तो बस! और ऊपर से मलाईदार थोड़ा-सा दही। फिर तो कहना ही क्या!... वैसे अब भी बुरा तो नहीं हुआ है।...

शतपथी महाशय बहुत ज्ञानी ठहरे। बड़े-बड़े उपदेश देते हैं। पर एक बात है। वे हमारे जैसे इस तरह दरिद्र, ऐसे कुटुम्बी आदमी होते तो क्या यह सब कर सकते थे? उनके लिए रास्ता भाग्य ने सँवार दिया था। इसलिए तो!... क्यों जी, दस सीढ़ी ऊपर तो तुमने जन्म ही लिया, उस पर और चार कदम चढ़ते नहीं क्या? हमारी तरह गीली जमीन पर खड़े होते तो वैसे ही मिट्टी पकड़ लेती, पीठ पर दूब उग आती।... आप भी खूब सके हैं! महाराज, आपको नमस्कार! पर ईश्वर आपको कभी गरीब न करे।

"नहीं दरिद्र सम दुःख जग माहीं।" फिर तो पेट-पीठ को भरते-भरते ही समय पूरा नहीं होगा... हरि... जगन्नाथ!

दासजी उठे। हाथ धोये। आकर चैन से बटुआ लेकर बैठे। सुपारी काट रहे थे। याद आ गई टुकू की माँ। उसे ले कर तो फिर दासजी ने संसार बसाया। वह बेचारी औरत जात, वह अपना कर्त्तव्य करती है। इतने छोटे-से इतना बड़ा किया।

उसका फिर कहाँ दोष रहा? उसे ही अब माया की टाँग, जञ्जाल की जड़ कह कर त्याग देने की बात सोचना उचित होगा? कह न देते हैं, हम और कहाँ त्याग सकते हैं? हम कैसे जञ्जाल में पड़े हैं, वैसे ही वह भी तो पड़ी है। उसका उद्देश्य तो नहीं कि इसे आदमी को पकड़ कर माया में बाँध दो। वह बेचारी औरत जात ठहरी। हाथ पकड़कर ब्याही आई उस दिन से अपना कर्त्तव्य करती आई है।

अब उससे दूर चले जाना किस धर्म में लिखा है? बट, जयी, टुकुआ तो फिर बच्चे हैं। उनको चलने-फिरने लायक करने तक रहना होगा। अपने लिए इन सबको पराया आदमी कैसे समझ लिया जाय? उन्हें जन्म दिया तो फिर इनके लिए कुछ करना होगा कि नहीं! ना, ना, कुटुम्ब पैदाकर उन्हें पराया समझना पाप है। उन्हें चलाने के लिए हजार कष्ट सहने पड़ें तो क्या इस कष्ट के लिए सबको छोड़कर संन्यासी हो जायें? छोड़ो रे, यह सब फालतू बातें हैं। कर्म में ही जो कुछ है। ऐसे केवल कह देने से हो जाएगा? हम ठहरे गृहस्थी, सुख में, दुःख में कुटुम्बी साथ रहेंगे। बच्चे बड़े हो गए तो टुकू की माँ को लेकर तीर्थ भ्रमण चला जाऊँगा। गंगा में डुबकी के लिए किस जमाने से मन कर रहा है। जाएँगे, घूम आएँगे। फिर प्रभु की जो इच्छा! मारना चाहेंगे तो मारेंगे। तारना चाहेंगे तो तारेंगे।

पाटमाली की चटाई कोने में पड़ी थी। फैला दी दासजी ने। बँधा हुआ थैला सिरहाने लगाया। अंटी से कागज की पुड़िया में बँधे रुपयों को टटोल लिया। साँकल लगा दी। दीपक जल रहा था, उसे बढ़ा दिया।

कल घर पहुँचने तक दिन दो घड़ी हो जाएगा। टुकुआ बाहर वाले बरामदे में खेल रहा होगा। बच्चा कितना सूख गया है? तो क्या! वह ऐसे लिजलिजा हो रहा...! क्यों रे जयी? भाभी को छोटा मुन्ना हुआ है! अच्छा, अच्छा!... सच, टुकू की माँ कितनी झड़ गई है! लो, ये रुपये रख दो।

दासजी को नींद ने घेर लिया। बाईं ओर की पहाड़ी के पास सियारों का झुण्ड हूक रहा है। मन छटपटा रहा है दासजी का। पर नींद आ ही गई।

"महाराज! दासजी! उठें। चेत कीजिए!" किवाड़ों पर धड़-धड़ थाप दे रहा था माली। भीतर से कैसी गूँ... गूँ..., घुटने की-सी आवाज आ रही थी। "महाराज! चेत कीजिए! उठिए! ओ... हो...!" इधर किवाड़ पर धड़-धड़, भड़-भड़ आवाज! कुछ देर बाद किवाड़ खोले।

"क्या हुआ महाराज? आपको तो इस तरह कभी बड़बड़ाते नहीं सुना। ओहो! जो आवाज! मैंने सौ बार थपकी लगाई होगी।"

"गोविन्द! गोविन्द!! क्या बताऊँ भई! बड़ा डरावना स्वप्न देखा? बड़ा अशुभ स्वप्न है।"

"क्या स्वप्न देखा?" कहकर माली बिस्तर के पास नीचे बैठ गया।

दासजी उसी तरह हाथ पैर फैलाए बैठे हैं। जैसे बहुत श्रम के बाद थक गए हों।

"मैं सपने में देख रहा हूँ, जैसे घने अन्धेरे में कहीं चल रहा हूँ। रास्ते में एक नदी पड़ी है। ओह! वह भी क्या नदी है। काली राख जैसा पानी। मेरी आँखों को

ओर-छोर कहाँ नहीं मिलता और न ही हाथ पैरों को!... मेरे पास कन्धे पर झूल रही है टुकू की माँ! देख रहा हूँ वह मेरे हाथ-पैर सब कसकर पकड़े है। इसलिए चल भी नहीं पा रहा। पानी में डूबता जा रहा हूँ। फिर व्याकुल होकर ऊपर उठ आता हूँ। जितना छुड़ाने पर भी सब सवार की तरह मेरे शरीर से लिपट गए हैं। साँस रुक गई-सी लगती है। तो सब को गुस्से में गाली-गलौज कर रहा हूँ। कुछ फायदा नहीं। इसी बीच तारों की छाँह में कोई नाव लेकर दूर पार जा रहा है। हमारे इन शतपथी महाशय-सा लगता है। मैं उन्हें जोर से पुकारता हूँ। पर वे... कहाँ... उधर ही अनसुनी करते चले जा रहे हैं। मैं पुकारते-पुकारते थक जाता हूँ। पुरी समुद्र की तरह सूँ-सूँ करती हुई काली-काली लहरें बढ़ती चली आ रही हैं। तारे सब छुप गए हैं। और जोरों से चीख कर पुकारता हूँ। ओह! बड़ी भयंकर नदी है। देखो न तभी लगता है जैसे नाव में बंशी के काँटे से मछली खींच रहा हूँ। हँस रहा है, काला आदमी खींचते समय। ओह! टुकुआ डोर पकड़ कर ऊपर उठ आया है। देह में प्राण नहीं! ओह हरि! गोविन्द! हरि गोविन्द!"

"कुछ नहीं महाराज, यह सब अपने घर देखने से दूसरों को होता है। आप जाइए महाराज, बासी मुँह से छोटा कोई पौधा उखाड़ कर फेंक दें।"

'अच्छा जाता हूँ। कितनी रात और बाकी है? मुझे तो नींद आती लगती नहीं।

"रात और कहाँ महाराज! यही देखिए भोर का तारा उग आया है।"

"अच्छा... अब तो पिर उठकर तैयार होना पड़ेगा, जाने के लिए।"

# जातक समस्या

"समझे दासजी, अब और मेरे रहने की जरूरत नहीं। ईश्वर की कृपा से बहू का भी सब ठीक हो गया। उसी की मन में बहुत चिन्ता थी। कैसे छोड़ जाएँ? अब खबर लो। मैं तो चला। घर मैंने चिट्ठी दी थी। महीने भर रहकर आता हूँ। आकर डेढ़ महीना हो चला।"

"हाँ, हाँ जी! तुम्हारी हर बात में जल्दी की आदत है। क्यों जी, बच्चे का इक्कीसा (जन्म के २१ दिन बाद होनेवाला संस्कार) तो होने देते, चले जाना। अरे बट, बेटे. अपने मामूँ के लिए चटाई तो लाना बरामदे में। मैं बच्चे की टिप्पणी लिख देता हूँ...। उसकी जन्मपत्री बनवानी है। नीलकंठ पण्डित के पास जाने पर वह बना देगा।"

बाहर वाले बरामदे के एक कोने में बैठे हैं दासजी। नारियल की चाँच पर पंचांग खुला हुआ है। और पास ही भींगे कपड़े में कुछेक ताड़पत्र बन्धे पड़े हैं। एक छोटे-से पतले ताड़ पत्र पर दासजी पंचांग से जन्म मुहूर्त्त, दिन, वार आदि लिख रहे हैं। भोजन कर दोपहर में यह काम कर दें, फिर नीलकण्ठ पण्डित को कह देंगे, जन्मपत्री बना देगा।

वह थोड़ी चीं-चपड़ करता लगता है। क्यों, कोई मुँह देख कर काम करेगा? हक के पैसे देंगे, कोई सेंत-मेंत में थोड़े ही कर देगा! दासजी सोचते जाते और लिखते जाते।

"लाओ बेटे! यहाँ पर डाल दो। बैठो जी, मैं जरा इसे ही पूरी कर लूँ।"

"मैं कह रहा था कि, ओह! इतने दिन हो गए! असुविधा थोड़ी हो गई इसलिए, नहीं तो कब से चले जाने की बात थी।"

"तो क्या हो गया? अब कौन पराए घर में बैठे हो? चले जाना, चले जाना भई, बच्चे के इक्कीसे पर सत्यनारायण की पूजा कर देना! बस, उसके दूसरे दिन जाइए, मुझे कोई आपत्ति नहीं। और अब रहे भी कितने दिन! आज हुआ मंगल! बुध, गुरु, शुक्र, शनि! रविवार को इक्कीसा। बीच में बस चार दिन और नहीं ठहर सकते, जो जाने की रट लगा रखी है? बड़े अजीब हैं आप भी।"

"अच्छा सोमवार होते ही फिर आपकी एक न सुनूँगा। इस दिन जाना पक्का रहा। हम भी तो सुनें बच्चे के कैसे दिन-वार-घड़ी निकले?"

"हाँ, छाँटने की जरूरत ही नहीं। सप्तम-सोमवार को महेन्द्र बेला में जन्म है। बालक की, लगता है, कुण्डली जोरदार ही होगी।"

"आप ही क्यों नहीं कर देते? कौन है वह नीलकंठ पण्डित, जो उसके पास दौड़ेंगे! आप ही बना देते तो चल जाता।"

"छिः छिः, सब गया तो क्या आदमी कुण्डली भी लिख दे? ज्योतिषी तो ग्रहपुत्र होते हैं। उनका मुँह देखने में ही दोष लगता है। यार इक्कीस दिन तक अन्न नहीं मिलेगा। वे लोग कोई ब्राह्मणों की शुमारी में हैं? यह काम हमारे यहाँ चौदह पीढ़ी में किसी ने नहीं किया। नीलकण्ठ पण्डित भी छोड़ देने बैठा है। कैसे कहेगा?

उसका सात पीढ़ी का यह धन्धा ठहरा। उनका तो ज्योतिषी घराना ही है। इसलिए वे लोग नीचे के स्तर के ब्राह्मण हैं।"

"वो कुण्डलियों का बण्डल क्या अपने इन बच्चों का है?"

"हाँ, ये सब बहुत दिनों के हैं। इसमें मेरी दो, तुम्हारी बहन की दो, बाकी बच्चों की एक-एक है। खोल दो, मैं कहता हूँ। और निकालो, हाँ वही है मेरी। हाँ, वे दोनों मेरी हैं। पिताजी का तो मैं एक ही पुत्र था? एक बार पाटपुर में बड़े-भारी ज्योतिषी आए थे, इतने विचक्षण कि क्या कहा जाए! ऐसे चेहरा देखकर बस अंगुलियों पर गिनते और जो कुछ घटेगा सब कह देते। उसके हाथ से एक जन्मपत्रिका बनवाई थी पिताजी ने। इसलिए दो है। बहू की जन्म-कुण्डली से भी मन नहीं माना। अतः शादी के बाद पाटपुर में बैठकर एक और बनवाई।"

"यह नई किसकी है?"

"उसे रख दो। वह तो टुकुआ की है। वह हमारी अष्टम गर्भ की सन्तान है। हमारे घर में उसका भाग्य सबसे तेज है। भगवान ने सही-सलामत रखा तो बड़ा आदमी होगा। वह किसी की जन्म-कुण्डली बनते समय कभी बड़ाई कर नहीं कहेगा। पर नीलकण्ठ पण्डित ने कहा – 'दासजी! यह सन्तान तो आपके दरवाजे पर हाथी झुलाएगी। उसकी कुण्डली में देखो, तीन ग्रह कितने उच्च स्थान पर हैं। वृहस्पति पञ्चम में।' भगवान ने उसे उमर दी तो वही इस घर का नाम बड़ा करेगा। बस तुम्हारा आशीर्वाद बना रहे।"

"भाग्य में हो तभी तो आदमी ऐसा कुटुम्ब पाता है। अब तो समझे दासजी! इस बण्डल को बाँधकर रख दें, मेरा कहा मानो तो। अब तुम्हारे गाँव में नया अस्पताल खुला है। उसमें कहीं से आकर एक अफसर पहुँचा है। वह कहता है -- सरकार बहुत चेष्टा कर रही है लोगों की संख्या कम करने पर। कहते हैं कि बहुत आदमी पैदा होने से दुर्भिक्ष पड़ता है। वह गाँव में देर तक इस तरह गाल बजाता रहा। भला कोई तो उसकी बात जरा सुनता? ये सब बातें क्या अखबारों में नहीं छपती?"

"हाँ ससुरे विनाश काले विपरीत बुद्धि! प्रकृति न छोड़े तो क्यों कोई ऐसे कहता?... क्यों रे, जन्म-मरण कोई तुम्हारे वश में है? यह सब चित्रगुप्त की बही में पहले से ही लिखा हुआ है। तुम्हारे कहे से जनसंख्या घटेगी या बढ़ेगी?"

"तभी तो ये कहते हैं कई उपाय खोज निकाले हैं रोकने के लिए।"

"अपने पास ही रखो अपने ये उपाय। छिः, भ्रष्ट होने के बाद मुँह पर कोई लाज शर्म रहती है?"

"अच्छा, सुदेई! तलघर में चलना तो। उसे ठीक करना। छींके तक हाथ ही नहीं पहुँचता।"

टुकू माँ के पीछे-पीछे उठकर सुदर्शन नन्द चले गए। दिन ब दिन आदमी ने अब क्या बात देखी है! कहते हैं, जिन्दे रहे तो क्या-क्या नहीं देखोगे! इन सबकी बुद्धि अब अधर्म की ओर ढलती जाएगी। घोर कलियुग जो आ गया है। क्यों जी, जन्म का नियन्त्रण तुम लोग करोगे? फिर तुम जितने लोग जीवित हो, सुख से रहो, और तुम खाओ-पीओ। अतः और कोई जन्म न ले? स्वार्थ के लिए भ्रूण हत्या की जाय? चण्डाल कहीं के! ये सोचते हैं कि वे ही जन्म देते हैं, वे ही पालते हैं। और

वे हो पोषते हैं। अरे नहों! जो जन्म देता है वह कोइ और है। उसकी इच्छा के बिना तुम कुछ भी कर पाते? वह जन्मदाता है। तो वही पालेगा, पोषेगा और मारेगा। अज्ञानवश तुम यह सब नहीं समझोगे। उलटा कहते हैं कि खाने को पूरा न पड़ा। तो सबको कुँवारा रखकर मारोगे? क्यों, इतने तो यन्त्र बना डाले, जमीन से और अधिक खाने की चीजें उपजा डालो न! निर्लज्ज कहीं के!!

क्यों जी, बच्चे के सिर के लिए तेल न जुटा सके तो उसका सिर ही काट डालो! यह कहाँ का न्याय?

अरे! कौन महापुरुष कब जन्म लेगा, इसका भी कोई ठिकाना है? तुम जैसे असमर्थों का झुण्ड मिलकर उन्हें आने नहीं देगा? तुम जैसे करोड़ भी हों तो क्या, न हों तो क्या? भोजन की कमी हो जाएगी, रहने को जमीन की कमी पड़ जाएगी।... छप्पन करोड़ जीवों को जिसने थान दिया है, उन्हें आहार दिया है, वह क्या इन आदमी के बच्चों की उपेक्षा कर उन्हें मार डालेगा? तुम सब ने पढ़-लिखकर अन्त में यही समझा? यही सीखा?

हम ठहरे पुराने जमाने के आदमी। भगवान की कृपा से मेरे पाँच बेटे हैं। यह तो कोई दण्ड मिल गया, नहीं तो आठ बेटे होते, अब तक!... मैं उन्हें जन्म देकर पाल-पोष नहीं रहा, यही कहते हो तो? अच्छा, मैं नहीं पोषता, तो क्या आकर तुम उन्हें पोषते हो? वे एक लक्ष्मी नारायण ही उन्हें पालते-पोषते हैं। न सही, अब तुम अपने एक बेटे को जैसी कमीज ला देते या जैसी तिपहिया गाड़ी ला देते हो, मैं वैसी नहीं ला सकता। उससे क्या हो गया? क्या मैं एक जीव को उसके आने का अधिकार भी उसे न दूँ?

हाँ, वे सब जी कर ऐसा कुछ खास कर डालेंगे, सो बात नहीं है। पर किसी का जीवन व्यर्थ भी तो नहीं है। इन सबको जन्म देने में प्रभु की कौन-सी इच्छा पूरी होती है? इसे हम लोग नहीं समझेंगे। और, देखो, आम के पेड़ में पत्ते उगकर झरेंगे। पाँच हजार डालियाँ फैलेंगी।... आकाश में जगह नहीं होगी, सो डालियाँ काट डालोगे? बीच में ताड़ के पेड़ की तरह बस, चोटी-सी रहने दो! उसमें पाँच ही आम लगें चाहे, पुष्ट होकर होंगे? कितने अनगिनत पेड़ और कितने अनगिनत फल नष्ट कर रहे हो, जानते हो? एक आम लगता तो एक पेड़ होता। इतनी तुम्हें जरूरत नहीं? अरे, तुम्हें क्या एक ही चाहिए? क्या यह सारी दुनिया तुम्हारे कारण ही चलती है, या चलेगी?

"आपका जन्मपत्री बाँधने का काम पूरा नहीं हुआ? यों अध-बीच में बैठकर क्या सोच रहे हैं?"

"तुम्हारी ही बात सोच रहा था।"

"अब और सोचकर भी क्या करें? सोचने के समय में तो सोचा नहीं।"

"क्यों सोचता रे? वे सब भी कोई सोचने की बातें हैं? जो विधाता ने भाग्य में रेखा खींच दी, वही तो होगा। हमारे हाथ में मरण नहीं कि जन्म भी नहीं, पाप नहीं। लाखों जीव-जन्तु भी तो फिर जन्मते ही हैं। या नहीं? उनकी संख्या क्या नहीं बढ़ती? खूब याद आया। अब तो नई पढ़ाई करते हैं। बट अपनी किताब में पढ़ रहा था कि समुद्र में एक जीव है जो अण्डा देता है। यदि सब अण्डों से बच्चे निकल कर जीवित रहते तो तीन साल में ही समुद्र में जगह की कमी पड़ जाती।

करोड़ों की संख्या में बढ़ते। इसलिए विधाता ने उन्हें एक सीमा के भीतर रखा है। आदमी को भी क्या ८-१० से ज्यादा कहीं होते हैं? ऐसा कहीं एक आध-ही होगा। यदि उसे भी नहीं सम्भाल सकते हो, तो क्या उसकी यह व्यवस्था है? जो आ रहा है, उसे जन्म ही न देना? देखना अन्त में यह होगा, केले की तरह एक फल देने के बाद फिर नहीं होगा।"

"आपकी भी बस जिद्दी बातें हैं। आप उस जमानेवाली लीक को बदल नहीं सकते। और इसलिए ये बातें भी समझ नहीं पाएँगे। बैठें, मैं चार पान लगाकर लाता हूँ।"

"बात ठीक है। ये लोग जो कहते हैं, वह भी एक तरफ से सोचा जाए तो ठीक ही है। घर में नहीं धन, बेटा ब्याहने पर मन। एक बच्चा पोसने की ताकत नहीं, आठ प्राणी पैदा कर केवल भाग्य की निन्दा करने में कौन-सी विवेकवाली बात हुई। सब बेकार होकर भीख ही तो माँगते फिरेंगे। मगर गृहस्थी हो तो बेटे-बेटी होंगे ही। माया लगी है। स्त्री-पुरुष अलग-अलग तो नहीं रह सकते। भूख-प्यास मिटाने की तरह कुटुम्ब बढ़ाने की भी तो प्रवृत्ति है। उसे और किसी तरह रोका नहीं जा सकता? पर ये लोग कौन-से बुरा कर रहे हैं। सूअरी की तरह दर्जन तो नहीं होंगे। दूसरे पशुओं के लिए ना विधाता ने सारी व्यवस्था की है। आदमी थोड़ी बुद्धि का धनी है। उसमें ईश्वर की इच्छा प्रकट नहीं होती है, कौन कहेगा? आदमी को शायद इसी तरह थोड़ा-थोड़ा विलोप कर देना ही उस सृष्टिकर्ता की इच्छा हो!"

तो फिर कौन-सी बात ठीक है? इधर दरिद्र होकर अभाव में पलकर सारे जीवन छट-पटाने की अपेक्षा जन्म न देना ही अच्छा।

उधर फिर आत्मा को जन्म न देकर उसे मानव जीवन में साधना करने नहीं दिया जाता। धनी-दरिद्र सदा बने हैं, रहेंगे। गरीब होकर भी तो आदमी मुक्ति का उपाय करेगा। मनुष्य शरीर दुर्लभ है। अतः दुःख पायें, चाहे कष्ट, छोड़ो, सब को जन्म लेने का अधिकार दे दो। यह भी साली कोई बात हुई। किसी में मीमांसा ही नहीं हो रही। सबके दोहरे अर्थ हैं। यह करो, नहीं, वह करो। समझने पर कोई कुछ नहीं जानते। एक-एक लकीर पकड़ कर उसे पीटते हैं। संसार तो बहुत बड़ा जंजाल है। इसमें पड़कर घुटने में किसे सुख मिलता है? खुद तो इस कीचड़ में पड़े, और कइयों को लाकर इसमें पीसने से क्या फायदा? उससे फिर एक बड़ी समस्या जुड़ी है। शास्त्र-पुराण कहते हैं कि मरने पर आत्मा फिर दूसरे घट में प्रवेश कर कर्मफल भोगती है। पर मन क्या मानता है? मरने पर तो सब समाप्त। इसके बाद कुछ रहता है? साला, वह सब कुछ नहीं तो सब मिट गया। तब आत्मा क्या करेगी, जन्म क्यों लेगी? छोड़ो, सुसरी ये सब बहुत पेचीदी बातें हैं। हम इसमें क्यों माथा खपायें? अब जो लोग आयेंगे उनके लिए ये सारी समस्या है। अच्छा भई, तुम जो कहते हो वही बात रहे। हमारी तो और शक्ति नहीं जो हम कह देंगे कि वही ठीक और दूसरी सब बेठीक!"

"आप यही पान लीजिए। इसमें ज्यादा सुपारी है।" सुदर्शन नन्द पान बढ़ाकर बैठ गए। उसी एक बात को पकड़ कर फिर कहने लगे –

"हमारे गॉव में निधि महान्ति के यहॉ जो कुछ हो गया, सुना होगा। सब बातों में वही अगुवा रहता। निकल पड़ा आपरेशन के लिए। तब उसके दो बच्चे थे – एक लड़का, एक लड़की। जब वह लौटा सबके मुँह पर उसी की चर्चा। नया अफसर उसे जरा भी नहीं छोड़ता और वह भी वहाँ से नहीं टलता। होते-होते ऐसा कालाजार हुआ कि दोनों ही बच्चे उतर गए।"

"ओह! देवता का कोप हो गया बेचारे पर!"

"और क्या करेगा? बहुत दौड़-धूप की, पैसा पानी की तरह बहाया। पर हथेली का गुड़ कुहनी तक बह जाने के बाद जीभ लम्बी पसार कर चाटने से क्या फायदा? ऐसा सुन्दर आदमी, अब काला काठ सरीखा हो गया है। उसे देख कर कोई पहचान भी नहीं सके।"

"मूर्ख कहीं के! इस चक्कर में पड़कर यों ही वंश डुबो दिया। अब तो इस जनम में बेटे-बेटी का मुँह देख नहीं सकेगा। साले ने सात पीढ़ी का नाम डुबो दिया। बहुत मामलतकार है निधि महान्ति। हमारी ही उम्र के होंगे। दो पैसे बाप-दादों के जमाने से हैं। इसलिए आदमी उन्हें मक्खी जैसे लगे। कहेगा – कलेक्टर ने उनको स्वागतपूर्वक ले जाकर खाना खिलाया। कमिश्नर उसके कुटुम्बी हैं। ऐसी डींग मारेगा कि क्या बताये! पुराना गप्पेड़ी कहीं को। गाँजा खींचता है। और डींग मारता है। पर अब उसके रंग-ढंग बदल गए। घर के अन्दर बैठता है। किसी को दो शब्द भी नहीं कहता...!"

"बेचारा ठगा गया ना! मैं उसके पिता रत्नाकर को जानता हूँ। वह भला आदमी था। दान धर्म खूब करता था। इस निधिया के जन्म पर कितना पैसा नहीं खर्च किया होगा! हमारे मामा ने उसके लिए साल भर तक गोपाल सहस्रनाम का पाठ किया है। इतने व्रत-उपवास किए, तब बेटा हुआ। अन्त में पानी देनेवाला भी कोई वंश में न रहा। सब भाग्य की बात है। नन्दजी! तुम कहोगे झूठ, पर बाद में मानोगे ही!"

"सच, सच है! इतनी जमीन-जायदाद किस काम की रही? अब पराए घर से बेटा लाएगा। उसके नाम पर सब लिख देगा। सिर्फ लोग दिखावे का बेटा रहा। नहीं तो... छोड़ो, वह किसी बेटे की गिनती में होगा?"

"नन्दजी! यह संसार बहुत विचित्र है। यही रघुनाथ – कल की-सी बात है। जब जन्मा था, पिताजी तब काफी उम्र के हो गए थे, बहुत खुश होकर बोले – "ओहो! कुल में तो भागीरथ ने जन्म लिया है। हे प्रभु रघुनाथजी! इस बच्चे को लम्बी उमर दीजिए। ओड़गाँव में जाकर मुण्डन करायेंगे। कल की बात है। समय कितनी तेजी से गुजरता है। देखो! उसके फिर पुत्र हुआ और मैंने उसकी टिप्पणी उतारी! धन्य है वह जिसने यह सारी लीला लगा रखी है। आँखों के सामने कितना सब हो जाता है। ये बच्चे सर-सर कैसे बढ़ते जाते हैं। आदमी बस अवाक् देखता रहे। काल-चक्र घूम रहा है। हम भी उसमें कीड़े-मकोड़ों की तरह पड़कर घूमते हैं। आदमी क्या जन्म रहस्य भेदेगा या उसका हिसाब रखेगा? एक मुट्ठी घास उगती है। यह समझनेवाला कोई है माई का लाल?"

नन्दजी ऊपर की ओर देखते हुए पान चबाने लगे। कुछ समय बीता। बाँध-बूँधकर सब एक तरफ रख दिया। गमछा कन्धे पर डाल उठने लगे। बोले –

"मैं एक बात कहता हूँ। आदमी के हृदय में पाप बहुत बढ़ गया है। अतः बहुत संहार होगा। उसके दिन सरक आए हैं। जिस बुद्धि से इन सबको जीता, उसी बुद्धि में व्युत्पात होगा। बम गिराकर आदमी आदमी को मारेगा। इधर जन्म निरोध कर मरेगा। रहकर सब कुछ ग्रास कर जाएगा! झूठा डर जैसे यदुकुल को खा गया, इन्हें भी वैसे ही कहीं से अनजान भय आकर ग्रस गया है। अब आगे-आगे सब उलटी बुद्धि दिखाई पड़ेगी।"

वे तर्जनी दिखाकर चेतावनी के ढंग से बोले, पर नन्द जी को जरा असुविधा-सी हो रही थी।

"अरे जयी! टुकुआ को क्यों रुला रहा है! देखना!"

"यह चक्केवाली कमीज वह पहनेगा! मैंने अपना निकाल कर पहन लिया है। वह अपना गन्दा कर चुका है। कहता है – यही पहनूँगा।"

बट को कुछ समय तक दासजी देखते रहे।

"अच्छा, ला दे, वह उसे दे दो! पहनने दो। उसकी अपनी सूख जाने पर वह वापस दे देगा? दो, उसे दो। अरे बेटा, बट! दे, बेटे दे! यह सब रख दो, जाओ। चलो नन्दजी दुकान होते हुए घूम आयेंगे। जल्दी, काम पहले कर डालें, फिर मन्दिर की ओर जाना पड़ेगा।

# भाग्यं फलति

"नीलकण्ठ के पुत्र इन्द्रमणि का शुभ-विवाह बैशाख शुक्ल दशमी को है। पुरी के महापात्र की कन्या इला के साथ निश्चित हुआ है।"

"इला या पिंगला! यह भी कोई नाम है!" चश्मे के अन्दर से सनातन दासजी ने पत्नी की ओर तनिक देखा! फिर पढ़ने लगे कार्यक्रम – मंगल, वरानुगमन...! इस्... कैसे निमन्त्रण पत्र उधर से छपवाकर लाया है इन्द्रमणि देखो तो! वाह! कितना सुन्दर बना है!"

"कहाँ, कैसा हुआ है! इधर जरा देना तो, देखें! मैं इस जीवन में दो आँक भी ठीक से नहीं सीख पाई! सोने के बने ये अक्षर कैसे झलमला रहे हैं! अरे ओ भाइग, जा बेटे एक लोटा पानी लाना। जल पी लें। तू इतना बड़ा होकर क्या देख रहा है?"

"अरे, ठहरो भी जरा! ये सब क्या देखने देंगे!"

"ॐ प्रजापतये नमः... महाशय!" टुकू की माँ बैठी थी। उनके पीछे से झुक कर बट पढ़ रहा था। जयी बाईं ओर से अंगुली रख कर कहने लगा – "यह 'म', यह 'ख'...!"

टुकू गोद में घुस कर कागज खींचने लगा।

"टुकुआ, मुझे जरा दे दो। नहीं दोगे। नहीं तो? अच्छा, फिर तेरी मेरी कुट्टी!"

"दे दो, जयी को बिलकुल न देना! आ मेरे पास, हम खेलेंगे। उसे देवता बनायेंगे।"

बट टुकुआ को गोद में उठाकर ले गया। जयी रोते-रोते पीछे दौड़ रहा है।

"अरे! इसमें पानी ले आए? वह लोटा कहाँ गया?"

"मिला नहीं" – कह कर भाइग भी घर के अन्दर भाग गया।

"अरे हो, यह ऐसे क्या निमन्त्रण दिया? खुद आकर नहीं बुलाएगा? हल्दी-पिठऊ आदि नहीं भेजेगा? रघु के विवाह पर हमने क्या यह सब नहीं किया? यह घर तब ऐसा था? रंग-रंगीला एक कागज छाप कर दे देने से क्या हो गया? हल्दी शुभ होती है।"

"अरे, आजकल सब नए ढंग से हो रहा है। तुम्हारे जमाने की बातें और हैं। तुमने तो छोटी कन्या से शादी की थी। ये सब ब्याहेंगे एकदम बहू को, साथ में लम्बी पूरी लायेंगे। अच्छा ही तो है। नहीं तो ये मुए वर्ष-दिन गिनते रहेंगे...! निमन्त्रण क्या नीलकण्ठ पण्डित नहीं देगा? वह तो समझदार आदमी है।"

"क्या कहते हैं, सुपारी(निमंत्रण) देना छोड़ देगा? हमारा तो उसके यहाँ जमाने से आना-जाना है। व्यवहार देन-लेन भी है। वह अवश्य सुपारी घर पर देकर जाएगा। और अभी तो पाँच दिन बाकी हैं। हालांकि बेटा नया-नया पढ़ कर आया है। बाप तो फिर हमारे ही जमाने का है। लोकाचार को क्या दरकिनार रख देगा? कौन जाने?"

"इन दिनों देन-लेन के लिए मिलता भी क्या है, जो दें? चार नारियल के तो दो रुपये। एक छोटा-मोटा हुआ था बाड़ी में। दे देंगे। एक टोकरी में बैंगन, शक्कर कन्द मिलाकर भेज देंगे। अब से एक-एक चीज जुगाकर धरने से जाकर उस समय सुविधा होगी। नहीं तो हैरान हो जायेंगे तब।"

"अच्छा, देखा जाएगा तब की तब।"

सुबह मन्दिर से आकर दासजी बैठे हैं। पोथी को साफ करने। बीच से धागा निकाल लिया। एक-एक पत्र को पाटे पर रख रहे हैं। पास ही थाली में नारियल की टोकसी के कोयले, पीसी हुई हल्दी, वह भी नारियल तेल से भींगी रखी हुई है। उसी में जरा कपड़े को डुबो कर पत्र पर फिरा देते हैं और साफ कर रहे हैं।

आज इन सब पर रंग लगेगा, सूखेगा, उसे बाँधकर रखना है। "नहीं, जी इसी एक पोथी को ठीक कर रख दूँ। बाकी फिर कल कर देंगे। दो पान ही लगा लाओ ना? जीभ कब से बेस्वाद हो रही है।"

"पान तो आज सुबह से ही नहीं है। परसों शाम को पचास पान आए थे और कितना रहता?"

"अच्छा तो मेरा वह तम्बाखू का डब्बा तो ला दो। मेरे कमरे में कब से नहीं है।"

उसे खोजते-खोजते दासजी सोचने लगे – क्या करूँ, कुछ न कुछ तो देना ही पड़ेगा। इधर महीना पड़ा है। बेटे के दिए पैसे भी समाप्त होने को आए। नीलकण्ठ के बेटे का विवाह हो रहा है! कुछ भी हो हम खाली हाथ जाकर खड़े हों तो अच्छा थोड़े ही लगेगा? वह तो फिर इतनी सारी चीजें लेकर रघु के विवाह में मेरे घर पर आया था। हमें कुछ तो लेकर जाना ही पड़ेगा। उसके साथ धोती-जोड़ा तो नहीं दे सकेंगे। अपनी क्षमता के अनुसार कुछ तो ले जाना ही पड़ेगा। उसका भाग्य अभी तेज है। यार, तीस साल पहले तो कोई उसे पूछता ही न था। काशी से लौटकर कर्मकाण्डी कहलाता था, लेकिन 'पुरुष' को पुरुख पढ़ता था। गाँव भर में उसका एक भी जजमान न था। सब को डर था कि वैदिक सूत्र से सरञ्जाम में अधिक खर्च आएगा।... अब उसे देखो! भाग्य खुल गया। जमीन-जायदाद, पक्का घर चिनवाकर कितना बड़ा बन गया और कितनी इज्जत से चलता है। वृन्दा नायक जैसा आदमी, जिसे देखकर हाथ जोड़कर एक ओर हो जाता है। पण्डित को देख नमस्कार, जाने पर नमस्कारों की झड़ी लगा देता है। पण्डित भी बांकी छड़ी को ठुड्डी से लगाकर आशीर्वाद देगा। उसका बेटा! इंजीनियर है! उसे गाँव भर में कोई कुछ कहनेवाला नहीं...!

यही नीलकण्ठ, उमर में दासजी से साल-दो-साल बड़ा हो तो हो या नहीं, एक साथ पढ़ने जाता था। इस गधे को मुक्का मारने पर उफ् करना तक नहीं आता था। हाथ साधने के लिए हजारों ताड़पत्रों पर लकीरें खींची होंगी। फिर भी अक्षर लिखेगा जैसे बिल्ली ने नोंचा हो। तीन बोझ खड़ी घिस डाली होगी। पहाड़े-घूंटे तो इसे कभी याद ही नहीं हुए, पर कैसे संस्कृत पकड़ी कि पढ़ता ही चला गया!... उस दिन टोल में जमीन्दार पधारे! हम दो को छाँटा गया। मेरे हिस्से में पड़ा उनके गले में माला लटकाना और साला नीलकण्ठिया बोला श्लोक! उसी से

तो जमीन्दार लट्टू हो गया, कुछ करने का निश्चय किया। टोल के पण्डितजी ने कई प्रकार से समझा दिया। नीलकण्ठ को छात्रवृत्ति मिली चालीस रुपये मासिक। नहीं तो इतने रुपये खर्च कर काशी में वह पढ़ता ना उसका बाप! उसके बाद जितने श्लोक बोले कोई सुननेवाले थे ना छात्रवृत्ति देनेवाले लोग थे? उसका बाप गोपाल त्रिपाठी आकर हमारे दरवाजे कितने दिन नहीं बैठा होगा! लक्ष्मी-नारायण मन्दिर में कोई पर्व-त्यौहार होने पर पिताजी उसे बुलाते थे। उस पर सदा आशा लगी रहती। देखते ही देखते क्या, ना, उसका बेटा बड़ा पण्डित हो गया। दो पैसे वाला आदमी बन गया! हम बस पुजारी के पुजारी रह गए! पर वह नहीं है। असल चीज ग्रह दशा होती है। वही विद्या के स्थान को ऊपर उठा दे, नहीं तो चाहे जितने हाथ-पाँव पटको, धेले भर का काम नहीं होगा।

यह इन्द्रमणि कौन-सा कम भाग्यवान है? यह परिश्रम कर पढ़ता ही तो था। बिल्ली के भाग से छींका टूटा। इसकी परीक्षा समाप्त होते न होते छात्रवृत्ति मिल गई। किधर-किधर से आकर अपने आप व्यवस्था हो गई। हमारे रघु से तो नहीं हुआ कुछ। वही कौन-सा क्या हो गया है। और रघु बिना पढ़े कौन भूखों मर रहा है? हमारे इतने बड़े कुटुम्ब को भी तो पैसे भेजता है कि नहीं? ये सब सोचने से क्या होता है? भाग्य से बड़ा कुछ नहीं! मेरी उमर थी, शक्ति थी तब पढ़ता तो क्या रघु को नहीं पढ़ाता! स्कूल भेजने की सोची, तो वे दुष्ट ग्रह ऐसे पड़े कि लड़की मरी। सन्तान खोने का वह हमारा पहला कष्ट था। वह गई, सब बिगड़ गया। अन्त में रघु पढ़ा टोल में। वहाँ भी क्या उसने मन लगाया? ऐसे ही बस समय काटता गया। इसी की देखा-देखी औरों ने भी पढ़ाई से जी चुराया। इसे क्या कहूँ? हमसे सात गुना नीचे है। वे पियोन काम करते हैं। हमारे लड़के ने भी वही काम कर पैसे भेजे, हम खाते हैं। छोड़ो, किया भी क्या जाय?

इन्द्रमणि पढ़ाई-लिखाई कर बड़ा आदमी बना। उसे लखपति ससुराल मिली। वहाँ से कितना सम्मान मिलेगा। हमारे जैसा कौन है? अरे जा, धेत्त... इसमें मन में दुःख करने से क्या होगा? और भाग्य की निन्दा करने से भला क्या होगा?..., फिर कलकतिया बाजा वाले आकर मदनपुर में हैं। वे भी आयेंगे मोटर में बैठकर बारात सजाकर जायेंगे। पूरे गाँव भर को निमन्त्रण दिया है। इधर इन्द्रमणि के साथी, अफसर, हुक्काम सब आयेंगे। खूब धूम-धाम से विवाह होगा।

हाँ होने दो। हमेशा क्या सब एक समान रहते हैं। कभी नाव गाड़ी में और कभी गाड़ी नाव में। ऐसे ही चलता रहता है। उसके अच्छे दिन आए हैं। क्या हम बाल नोंचे अपने? अरे कहा भी तो है – "कालस्य कुटिला गति।" कब आदमी का क्या होगा, कोई कह सकता है? कुछ हो जाय तो कुछ कर डालूँ, इस तरह कहने के क्या होगा? उधर से स्थिर हुए बिना आदमी के हाथ में क्या है जो वह करेगा! यदि भाग्य में लकीर खिंच गई है तो उसे मिटानेवाला कोई नहीं। होगा ही। उसके लिए स्वतः सारी व्यवस्था हो जाएगी। और यदि नहीं है तो जितना भी ताकतवाला हो, उसे मानना पड़ेगा। दशरथ जैसे क्षत्रिय इच्छा करते तो इस पृथ्वी को हिला कर रख न देते? पर उनके भाग्य में लिखा गया था कि सत्य वचन का पालन करते हुए पुत्र को वन भेजेंगे और उसी में उनके प्राण जायेंगे। हम कहें कि हमारी कोशिश से सब होगा। इन्द्रमणि पढ़ाई न करता, परिश्रम न करता, तो क्या

भाग्य खुलता? अरे, बात यह नहीं, उसके भाग्य में था इसलिए उसने उस दिशा में प्रयत्न किया, पढ़ाई की, सब हुआ। वह चाहता तो भी मूर्ख नहीं रह सकता था और न मदनपुर में पियोन ही हो सकता। भविष्य हुआ सबसे बड़ा। वही सबका भाग्य सहेजकर रखता है।

"यह लीजिए! माँ ने डिब्बा भेजा है।"

"अरे, जा कहाँ रहे हो, जयी? माँ क्या कर रही है?"

"पता नहीं!"

"चण्डाल! तुम भी बिलकुल गधे हो।"

फिर चिन्ता की धारा बह निकली डिब्बा खोलते ही।

– अच्छा, आदमी की आँखों में सब बातों का भेद-फर्क स्पष्ट क्यों नहीं होता? आदमी को जो मिलता है, उससे अधिक पाने की लालसा लगी रहती है। उसे लगता है, जैसे उसके जैसे या उससे नीचे वाले बहुत से लोग अहेतुक अनुग्रह पा गए हैं। ईर्ष्या होती है। असन्तोष होता है, पर इन सबसे मन में कोई समाधान नहीं हो सकता। खुद को समझाने के लिए तो फिर उपाय चाहिए। भाग्यफल कह देने भर से तो आधी बात खत्म। उसमें जो असमान लगे, उसे भी मानने को बाध्य हैं या नहीं। यदि न हुआ तो कहेंगे कर्मफल! जो कर्म स्वयं किए हैं, उनका फल जन्म-जन्मान्तर तक भोगना पड़ेगा। वह भी मन में न जँचा तो फिर बाबू स्वर्ग लोक है ही। तुम्हारी बहुत योग्यता है और तुम्हें ही यहाँ कुछ न मिला, सोचते हो, तो तुम्हारे लिए स्वर्गपुरी रखी ही है...।

गरीब को सदा गरीब रहने, सिर नवाये, कष्ट सहते रहने देने हेतु और वे कहीं धनियों से ईर्ष्या करेंगे, इस भय से उन्हें भाग्य-भाग्य कहकर बहला देते हैं। पता नहीं यह सब कैसा गूढ़ रहस्य है? यार, ठीक से कौन जानता है?

क्या कहते हो भाग्य नहीं है? भाग्य है ना। इस छोकरोंवाली उमर में किसी को विश्वास नहीं होता भाग्य पर, पर बाद में चोट खा-खाकर अपने-आप विश्वास हो जाता है।... क्यों जी, उस सामंतराय के घर वाली लड़की ने किसका क्या बिगाड़ा था। उसे जब मण्डप में लाए तो आग की तरह शरीर चमक रहा था, ऐसी सुन्दर लड़की कहाँ होगी? उसका वर क्या कम सुन्दर आदमी था! पाँच हाथ वाला ये कद्दावर आदमी! जरा साँवला हुआ तो क्या हुआ? शरीर पर मक्खियाँ फिसलती थीं। पर हुआ क्या? दिन सात में ही सब कुछ उजड़ गया। सान्तराय को जितना कहने पर भी, लड़की को दूजी नहीं बरी। इसे क्या कहें? सारा जीवन हा-हा-कार में ही कटेगा या नहीं अब उसका?

इस तरह किसी के सिर पर बज्र पड़ता है तो किसी के सिर पर हाथी सोने के कलश में पानी उँड़ेलता है। कोई पचासों यज्ञ दान-व्रत कर भी बेटे-बेटी का मुँह देखने को तरसता है तो किसी के घर में यों ही झुण्ड के झुण्ड बच्चे भरे हैं। यह सब क्या लीला है? इसे कौन करता है? मुझे ऐसा लगता है कि इस मिट्टी के पुतले के हाथ में भी कुछ नहीं है। कोई सब कुछ मशीन घुमाने की तरह चला रहा है।

भाग्य कहने पर अब उस विधाता ने जो लिख दिया वही तो या और कुछ? कुम्हार चाक पर कच्ची मिट्टी के लौंदे में थोड़ा पानी डालकर उस पर बिठा देता

है। बीच में दोनों अंगूठों से दबाकर ऊपर की ओर उठाता है। किनारा निकाल कर चिकना कर देता है। नीचे से नाल छेदने की तरह सूत से काट कर उतार लेता है। फिर सूखती है। आँवे में पकती है और बिक्री के समय दो बार टन् टन् बजाकर कहता है – "इसमें दो सेर चावल के भात बन सकते हैं।... इसमें सात पाव।" तब छोटी हाण्डी और भी छोटी दिखाई पड़ती है। कितनी पकी है यह देखने के लिए ठक्-ठक् बजाने पर वह बड़ी वाली की तरह टन्-टन् नहीं बजती। वह तो पाव भर कम ही ठहरी न! पर उसका क्या कसूर? कुम्हार की जो इच्छा वही तो करेगा ना। सब हण्डियों को समान करने पर भी नहीं चलेगा। उसी तरह कोई राजा के घर जनमा तो कोई रंक के घर। कोई ऐसी बुद्धि लेकर जनमा कि बस देखते ही सब विद्या आ गई। कोई गधा ऐसा मूर्ख निकला कि बकरी चराने लायक भी नहीं। आदमी केवल उमर ही नहीं, सब बातों में अपना-अपना नाप लेकर जनमता है। सीधी बंधी लकीर के मुताबिक जीने की बात। उससे कोई हट नहीं सकता। बीच-बीच में ऐसा लगेगा मानो कोई रखवाला नहीं है। मन इच्छा चलते जाओ। वहीं बस बिजली गिरेगी। एक ही चोट में अपने रास्ते पर आ जाओगे। बीच-बीच में चेताना पड़ता है। किस की सीमा कहाँ पर है! किसी को खींच लाएगा सँकरी गली में और किसी को गला पकड़कर धौल जमा कर दिखा देगा कि उसके लिए कितना चौड़ा राजमार्ग है!

असल बात है कि इन सब में वही एक है। उसे मानना ही पड़ेगा। उसने जितना दिया उतने में संतुष्ट रहे तो ठीक है। और छटपटाने की जरूरत नहीं रहेगी। मुझे थोड़ा मिला उसे बहुत, ज्यादा सोचना बच्चों के जमाने की बात है। जो मिला है, उसे ही लेकर सन्तोष से चला लो, यही यथेष्ट है।

सीढ़ी पर नीचे जितने, ऊपर भी उतने ही हैं। नीचे देखने पर कम-कम दिखेगा, ऊपर देखने पर ज्यादा-ज्यादा। इसमें कौन कहाँ सब है। सब से ऊपर भी कोई नहीं है, कि सब से नीचे भी कोई नहीं। कोई धन में ऊपर होगा तो जन के मामले में नीचे होगा, इस तरह मिला-मिलूकर बाँटा गया है। वैसा समझने पर यह जो कमोबेस दिखता है सब भ्रम है। सुख-दुःख की मात्रा मिला देने पर सब समान है। जो लहर में सिर झुकाकर उसे ऊपर झेल लेता है, उसके लिए ऊँचा-नीचा कुछ नहीं। उसे सबमें सन्तोष है। असल बात यही है। इच्छामय जगन्नाथ! सब कुछ उसी का खेल है।

"आपका वह एक काम पूरा नहीं हुआ? बैठे रहिए बस!"

"अरे ये ले, हो तो गया!" स्त्री की बात पर चौंक कर दासजी पत्ते में जल्दी-जल्दी रंजन लगाने लगे।

"चलो खा लो, आज मेरा तो सोमवार है, मैं तो आमिष खाऊँगी नहीं, सिर्फ प्रसाद ही ले लूँगी। तुम्हारे लिए वह बहू बेचारी कब तक भूखी बैठी रहेगी? चलो ना!"

"अच्छा, यह पत्र तो पूरा कर लूँ। चलो, पत्तल लगाओ। बस मैं आया।"

"रघू ने उस दलेई के लड़के से कहलवाया है कि..."

"क्या?"

"उसकी माँ पिछवाड़े में कह रही थी कि वह खाने-पीने की बड़ी तकलीफ पाता है, इस महीने आकर बाल-बच्चों को ले जाएगा। वहाँ भाड़े का घर लिया है।"

"बच्चा अभी छोटा है। अभी ले जाकर क्यों हैरान होगा? और दो-एक महीने ठहर जाता। इस धूप में नन्हीं-सी जान को लेकर कहाँ जाएगा? बरसात होने पर मैं खुद ही छोड़ आता।"

"तुम्हारी बातों में सब वह और है। मैं पिछली बार से ही जानती हूँ, इस लड़की को सहज मत समझना। क्या मन्तर फूँक दिया है कि जाते समय रोक-ठोक बातें कर रहा था रघू। टुकूआ पास जाता तो झिड़क देता और तुम कहोगे तो भी क्या वह सुनेगा?"

"हाँ, तुझ सुसरी को, सब जैसे मालूम है।"

"नहीं तो क्या तुम्हारी तरह? सब बातों को अवाक् की तरह देखते रहो! कुछ नहीं समझोगे!"

बटिआ बाहर वाले कमरे में शोर करता हुआ आ गया। "भाभी कहती है भात लगा दिए हैं पत्तल में।"

"अच्छा, चलो! मैं आया। इसे ऐसे ही बाँध दूँ। नहीं तो रहने दो ऐसे ही। जरा बच्चों को देखते रहना, कोई इसे छेड़ न ले। उठो...! ॐ नारायण! जगन्नाथ!"

# परलोक

किस के सिर पर भूत सवार हुआ है जो उसे घर में बहू बनाकर बैठाएगा? ओ हो... ऐसी है वह आग लगी लड़की! अनहोनी बातें गढ़ कर रख देगी। वह आज इतनी-सी है, बड़ी होने पर तो फिर क्या नहीं करेगी वह?"

तल घर से बटुआ लेकर ऊपर के बरामदे में सुना-सुना कर टुकू की माँ आ रही है। रात एक घड़ी बीत गई। बच्चे सब जल्दी ही खा-पीकर बाहर बरामदे वाले घर में बैठे हैं। दासजी खुशी से दाँत कुचर रहे हैं। रात में भोजन कर सबकी चख-चख सुन रहे हैं।

"किसकी बात कहती हो?"

"वही कुमो! हरि पण्डा की लड़की।"

"ओ! हरिया पण्डा की लड़की! बाप तो उसका ऐसा है यार जलता है, क्या कहें! क्यों, क्या बात हुई? मुझे दो, मैं सुपारी काट रहा हूँ। आज वाला वह बरहमपुरी कत्था लाई हो तो?"

"मुझे जरा दे रे जयी, मैं सूँघ लेती।"...

"मैं जरा-सा?"

"माँ, मुझे... एँ!"

"जा खा, जा खा, मुट्ठी भर कत्था खा ले, कलमुँहे कहीं के!"

"अरे, रे, रे! रख उस बटुवे के भीतर कत्थे को। एक बार तो सूँघ चुका। सुगन्ध आ रही है और कितनी बार सूँघेगा?"

"वह आई थी, घर पर। यों ही जरा घूमने। आई तो धीरज से एक जगह आदमी बैठे, बोले, बातचीत करे। सो तो नहीं, और इस घर में घुसी, उस कमरे में निकली, उस बक्से में क्या है, इस पेटी में क्या है, इस सबसे उसको क्या मतलब, कोई पूछे भला?"

"ऐसी भी कुछ होती हैं। किसी का जरा-सा भी सुख देख नहीं सकती। वे तो बस जलने-भुनने वाली होती हैं। वैसा ही यह हरिया पण्डा है।"

"पहले बात तो सुन लो जी! सोने के कमरे में घुस गई। अन्द-फन्द करती उसकी आँखें घूम रही थी। उस घर के कोने में तो टणक पड़ी है ही।"

"देखो तो रखी है। बैठ गई उसके पास। उसे कितना सहलाया, कितना पोंछ डाला। पूछा - यह किस की है? मैं कहना तो चाहती थी कि तेरे बाप की नहीं है। पर सिर्फ इतना कहा – हमारी ही है। रघू ने भेजी है, बोली - हमारे यहाँ इससे भी मजबूत है। यह तो लचर-लचर हो रही है। हमारी वाली भी ऐसी ही नीली, मगर बहुत मजबूत है। हमारी को तो बीना दीदी ससुराल ले गई। पिताजी कह रहे थे कि और दो... नहीं नहीं... चार लायेंगे...।"

"जबाब क्यों नहीं दे दिया – अबे! जा... तुम्हारे मुँह से ही पता चलता है चार ना आठ! जैसे मुफ्त में ही कहीं पड़ी है! उठा लाना!"

"और भी तो सुनो, वह यों ही बस ताले को मरोड़ डाल रही थी। बोली – इसमें क्या भर रखा है? फटे-चिथड़े होंगे। पूर भर दिया होगा। चिरे-फटे गूदड़ों को समेट कर भर देना भी ठीक ही है।"

"अब मैं क्या जबाब देती? इसके बाद देख ही तो ली आले में रघु की सुगन्धित तेल वाली शीशी रखी थी। बोली – ऐसा तेल हमारे भैया लगाते हैं। वे तो दूसरा तेल लगाते भी नहीं हैं। हमारे भैया का तेल तो इससे भी ज्यादा खुशबू देता है। इसका तो बस एक रुपया या बारह आना लगा होगा। मुँह पर मार देती, दो-चार बातें? पर सोचा क्यों? यह आज पीहर में है, कल ससुराल चली जाएगी, छोड़ो इसकी तो आदत ही ऐसी है मुई!"

"रखी रहो रे! तुम्हारी तो पिछली बुद्धि है। सुना देती तो वह छोकरी बन्द नहीं हो जाती? उसका तो भला हो जाता। दूसरे गाँव जाकर क्या निहाल करेगी? अच्छा छोड़ो, उन सबकी बुद्धि तो इतनी-सी है। अरे! टूट गया पान! और मत तोड़ उसे! मुझे दे दो, मैं रख लेता हूँ उसे! पका हुआ पत्ता है न, बड़ी अच्छी चीज होती है। आज बूढ़े ने चुन-चुन कर खुद आधे-कड़े की जगह पूरा एक कड़ा दिया है।"

"बापू, मुझे भी एक टुकड़ा सुपारी दो?"

"नहीं,... सुपारी कफ करेगी। ले जरा-सा टुकड़ा चबा लो। अभी से अमलदार बनने से कैसे चलेगा? कहा भी तो है - 'सौ पर सुपारी, हजार पर पान। सौ रुपये कमाने वालों को सुपारी खानी चाहिए, हजार कमाने वाले जा कर पान खाते हैं।' हम तो बचपन से गन्दी आदत कर बैठे हैं, वरना तो खाने का सवाल ही नहीं।"

"भैया, भैया कहते हुए उस लड़की का गला सूखता था। वह हरि पण्डा का लड़का क्या करता है जी?"

"वह क्या करेगा रे, उसके हाथ से और होगा भी क्या, जो वह करेगा? कल हाट से लौट रहा था तो कोई कह रहा था कि फिर लाम पर चला जाएगा।"

"जाएगा नहीं! वह तो रघु से भी दो वर्ष बड़ा है। आकर रघु को तो बच्चा भी हो गया। अब भगवान ने चाहा तो और कुछ भी हो जाएगा। वह तो खाली, बस कुँवारा ही फिरता है। इस उमर में भी तुम्हारे आई साल बच्चे होते हैं। घर में जवान छोरों को कुँवारा ही रखा है।"

"हैं जी, क्या वह सचमुच लाम पर चला जाएगा? माँ कुछ नहीं कहती? बड़ा लड़का पिण्ड देनेवाला होता है। वह कैसे घर सम्भाल कर रहेगी? रघु तो यही छः कोस की दूरी पर है, तो भी नहीं मानता, फिर किस राज्य में लड़ाई चल रही है कि उसे लाम पर भेज रहे हैं।"

"युद्ध तो चीन में हो रहा है। वह उधर हिमालय के पास है।" उसने जानकार की भंगिमा में कहा।

"फिर यह दुष्ट युद्ध कहाँ था जो आ गया है, महंगाई का युग लिए आ रहा है। कैसे चलेंगे अब, राम जाने!"

"चीनी सेनाएँ बड़ी-बड़ी बन्दूकें लेकर लड़ रही हैं। हमारे पास वह सब कुछ नहीं है। इंगलैंड, अमेरिका हमारी मदद कर रहे हैं।"

"हाँ, चीनी आदमी का चेहरा क्या नहीं देखा है? वही तो जो मदनपुर में लोगों के हाड़-दाँत सब लगाता है। बन्दर खीं-खीं करने की तरह बातें करता है। वे ससुरे, गोल मुँह क्या लड़ेंगे रे! उनका मुँह टटोलने पर साले नाक, कान, मुँह हाथ में पता ही नहीं चले। वो लड़ाई-वड़ाई कुछ नहीं होगी। बहुत सारे हरि के लड़के हैं, शत्रुघ्न पण्डा सरीखे अवारा लड़कों को पेट भर खाने-पहनने को मिल जाएगा। मदनपुर में सब सा-ब सिपाही आकर बैठे हैं। जो उसे लड़ाई में भर्ती करायेंगे।"

"यही सब तो इसकूल के मास्टर कह रहे थे। वहाँ भर्ती का दफ्तर खोला है। वहाँ जिसे चुनेंगे उसे ट्रेनिंग के लिए भेज देंगे।"

– "माँ, कल मेरी चन्दे की तारीख है, रक्षा कोष में चन्दा देना है।"

"क्यों रे! अभी तो दिया था? जयी और तुम मिलकर वो आठ आने पैसे देकर तो आए थे, फिर यह क्या?"

"तू अपने मास्टर को कह देना, नहीं तो मैं जाकर कह आऊँगा कि हम और पैसे नहीं दे सकेंगे। हम एक वक्त खाकर दूसरे वक्त उपवास करते हैं। हम यों बार-बार चन्दा देने पर तो चोर हो जायेंगे। सच, कहाँ तक पैसा देगा आदमी! गाय दूहने की तरह है। दलई चला था बेटे को पढ़ाने, हार गया! यह क्या कोई सहज है? उनके कपड़े लाओ, पोथी-कलम का खर्च देते-देते तो एड़ी-चोटी एक करना पड़ेगा! इसके बाद हजार तरह के चन्दे!"

"यह गणेश पूजा के चन्दे जैसा नहीं है। यह सरकार उठा रही है। हमारी जो सेना लड़ रही है। उसे मदद करने के लिए।"

"अरे, सरकार मांग रही है तो उससे क्या हो गया। हम क्या देने से मना कर रहे हैं? हमारे पास नहीं है तो कहाँ से लाकर दें?"

"सब दे रहे हैं, ऊँ... ऊँ...!"

"बिल्ली चूहे को पकड़ ले, वैसे क्यों चें... चें... लगा रखी है? अभी से क्यों ऐसे उछल-कूद मचा रहे हो? दिन दस का समय तो है! देखेंगे... कितना पैसा देना है?"

"चार आने!"

"अच्छा देंगे भई, कल स्कूल जाते समय ले जाना।... यह तेरे हाथ के पास कुछ दिखा है। जरा बढ़ा देना इधर!"

"हे .... अरे चुप भी रहो... कोई बाहर बरामदे में है।" टुकू माँ की फुसफुसी से सब चुप हो गए। कुछ समय बीता खस्... खस्... की आवाज आई।

दासजी ने गला खँखारकर पूछा – "कौन है?... कौन?" कोई उत्तर नहीं। टुकू पान का बटुआ पकड़ कर माँ की गोद में दुबक गया। जयी और बट दासजी के पास सरक आए। दूसरे कमरे से भाइग चला आया।

"क्यों माँ! काहे की खुसर-पुसर हो रही है?"

"जरा ठहरो, आवाज मत करो।"

माँ बेटे की फुसफुसाहट दासजी को अच्छी नहीं लगी। "ओहो! क्यों, इस तरह हड़बड़ा रहा है। क्यों रे! तू लड़का है, क्या जरा-सी खस-खस में ही ऐसे डर

गया जो चिल्ला रहा है? वह कुछ नहीं। कोई कुत्ता बिल्ली होगा, आदमी होता तो बोलता नहीं क्या? नहीं, नहीं, साफ आदमी के चलने की आवाज है। सुर-सुराहट मैंने भी एक बार सुनी है।"

"हाँ, इस संध्या से चोर तुम्हारे ही घर में घुसे आते हैं, क्यों रे! तुम्हारे घर में चोर आयेंगे किसलिए?"

"चोर नहीं, भई, कुछ और होगा।"

"और क्या, कोई भूत?"

बच्चे सब एक कोने में हो गए। घबराई आँखों पर पलक भी नहीं पड़ रही है।

"हे... हे... लो, सुनो।"

"ओह, देना तो भाइग मेरी वह लकड़ी।"

"आओ जी, कल रात में दलई की बहू बाड़ी की ओर पेशाब करने गई थी, सो कोई उसके सामने भूस् करके भाग गया। उसके मन में भय घुस गया जो आज उसे बुखार ने दबोच रखा है। पड़ी पड़ी बक रही है... किवाड़ मत खोलो। जरा फाँक से ही देख लो।"

दासजी ने जरा-सा देखा ही होगा कि जोर से हँस पड़े और किवाड़ खोलकर लकड़ी को नीचे पीटते हुए बोले – "हुश्स् - बाघवा है - जा रे जा, चला जा! कुत्ते से इतना भय! वह साला कान में जूँ खोर रहा है। इन्हें सुनाई देती है, कितनी आहट, कितनी बात! धेत-तेरे की।"

'अच्छा, किवाड़ बन्द कर चले आओ भीतर। यह तो कुत्ता है। दलई की बहू ने क्या कुत्ता देखा था? उधर उस पेड़ पर एक रहता है ना।"

"धेत्! रहता है। सब खाली मन का भ्रम है। कहाँ, मैंने तो कभी देखा नहीं। एक दिन जरूर कैसे-कैसे लगा। मैं बाड़ी की ओर गया था तो चाँद का धुँधलका-सा था। मुझे लगा भोर हो गई है। चारों ओर देखा! सुना, कोई जैसे सिसक रहा है। यही लाठी मेरे हाथ में थी। यह पास में होने पर तो कोई डर नहीं। पिछले साल हरिहाट में जो यज्ञ हुआ था न, उसी कुण्ड का जला हुआ पैसा इसके रिर पर ठोंका हुआ है। यह देखो! इसे देखकर चुड़ैल तो क्या उसकी नानी भी पास नहीं फटक सकती। मैंने भी आवाज की। जरा चुप। पर फिर वैसे का वैसा। पत्थर उठाकर उधर फेंका तो क्या कुछ भस् कर उस पेड़ की ओर भाग गया। मुझे लगा उस पेड़ के पास जाकर वह वहीं लीन हो गया।"

"देखा, कम हिम्मत की बात कहते हो तुम? ब्राह्मण थे इसलिए वह पास नहीं आ सकी। नहीं तो, ऐसे पत्थर फेंकने पर वह छोड़ देती?" तब तक बच्चों की नींद कहीं उड़ गई थी। एक टक देख रहे हैं, सुनने में लगे हैं ध्यान लगाकर।

"वैसा फिर कभी नहीं करना। उनमें भी एक-एक दुष्ट चण्डी रूप हैं। वे किसी की नहीं मानती। मैंने सुना है। मेरी आँखों देखी बात है। कई चुड़ैल भूत सूँ... सूँ... हवा में तैरते हैं। ये छाबड़ी-सा सिर और नीचे से लकड़ी जैसे पतले। जमीन से सवा हाथ ऊपर चलती हैं। उसके धक्के में जो आ गया उसे कोई नहीं बचा सकता। वह आदमी को समूचा निगल जाती है।"

"कोई सुनी हुई बात है। वह तुम्हारी अपनी आँखें देखी बात हो लो ना। और कोई कहे तो सोचे कि झूठ है।"

"मेरी बात तो छोड़ो। मैं तो साक्षात् देख चुकी हूँ।" घर में भूत की बात आने पर टुकू माँ यह प्रसंग जरूर छेड़ती। बच्चे सुन-सुन मन में रखते, पर और भी सुनने की इच्छा रहती।

बट ने कहा – "माँ, तुमने खुद देखा है ना! कैसे देखा?" टुकू माँ भूल जाती है कि उन्होंने वही बात पचास बार बताई है। बच्चे भी भूल जाते हैं कि उसी बात को पचासों बार सुन चुके हैं।

"क्या बतलाऊँ बेटे, मैंने जो देखा है आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। तब मैं नई-नई बहू बनकर आई थी। मेरा तो भोर ही उठे बिना चलता न था। बासी काम कौन करे? ब्राह्मण के घर की बहू, पौ-फटते ही कोई देख न ले। बच्चे को पास में लिए लेटी थी। अचानक आँख खुल गई। चारों तरफ उजास था। ऊपर देखा शुक्ल पक्ष। रुई के फाहों की तरह बादल बिखरे हुए। साफ भोर जैसे दिखाई पड़ रहा था। इसके बाद क्या किया ना, अपनी यह जो टोकनी है उसे उठाया। दातौन दाँत में दबाकर निकल पड़ी। पोखर की ओर। पोखर कितनी दूर है यहाँ से। अपनी बाड़ी में कुँआ न होने तक रोज वहाँ नहाने जाती थी। इस सिन्दूरा के घर से पोखर तक कोई घर बार न था। दोनों ओर जजांग का जंगल, बीच में चलने की पगडंडी भर थी।"

"कहाँ देखा भूत, बताओ ना।"

"अरे बताती तो हूँ। जैसे मैं रास्ते पर खड़ी थी तो मुझे सूना-सूना-सा लगा। जब निकल ही पड़ी तो डुबकी लगा ही जाऊँ। सिन्दूरा के घर तक पहुँची हूँगी कि सफेद झक धोती बाँधे उन्हीं के मकान से कोई फर्राटे-से निकल भागा।"

"वह भूत था?"

"अरे सुनो भी। बीच में यह तो खचर-पचर होता रहेगा। वही तो कह रही हूँ। चुप रहकर सुनता तो नहीं और यह भूत है, वह प्रेत है - इस तरह क्यों चबर-चबर कर रहे हो?"

"मैंने उसे देखा तो सोचा कहीं सिन्दूरा के घर की बुढ़िया होगी। पोखर जाने निकली होगी। रात बीत गई है। बात तो करूँगी नहीं। सो घूँघट सरका कर चलने लगी। मन में डर तो इतना भी न था। लग रहा था कि मैं तो बोलूँगी नहीं, बूढ़ी मुझे पहचान कर बोलती। और वह रास्ता छोड़ कर इस तरह ऊजड़ क्यों चल रही है? वह खाली उस जजांग जंगल में मेरे साथ चल रही है।"

"माँ, मुझे डर लग रहा है।"

बट ने जयी को लताड़ा – "यह क्या सच है, जो डरते हो। यह तो कहानी है कहानी!"

"ऐसे ही मन में जरा पाप छू गया था। पर डर अभी तक नहीं लगा था। टोकनी को मेंड़ पर रख कर टट्टी गई। फिर वह नहीं दिखी। वहीं मुझे दबोचने सरीखा लगा। रात तब साँय-साँय गर्ज रही थी। दातून और क्या करती जीभी

करके फेंक दी. किसी तरह डुबकी लगा कर टोकनी डुबो दी, साड़ी निचोड़ी भी नहीं, वैसे ही आकर मेड़ पर खड़ी हो गई। आते समय जो बाँये था वह जाते समय पड़ा दाहिने। दाहिनी तरफ से घूँघट खींच रखा था, बस, भागती-सी चल रही थी। तिरछी देखती तो लगता वह सफेद धोती फर-फराते चल रही है। मुहल्ला पास हो गया। थोड़ी हिम्मत भी आ गई। मन ही मन कहा - अब डर नहीं। ठीक सिन्दूरा के घर के पास पहुँची कि मड़-मड़ा कर घुस गई। मुझे लगा मेरे ऊपर ही आ गई। पर पेड़ टूट कर गिरने की तरह वहाँ गिर पड़ी और क्या हुआ मुझे पता नहीं। होश गुम थे मेरे।"

"वहाँ भी एक है। वह खाली डराता है। किसी का कुछ बिगाड़ता नहीं। नहीं तो तुझ जैसी उसके चक्कर में पड़ी थी, प्राण रहते।"

"माँ, फिर क्या हुआ?" – बट ने पूछा।

माँ के होश गुम! आगे सुने बिना उसे धीरज नहीं लगता। "मैं तो बेहोश होकर गिर पड़ी। इधर क्या हुआ कि बूढ़ाजी दोहिते को लेकर घुमा रहे हैं और इधर मुझ पर जो गुस्सा, सो क्या कहा जाय! इतनी रात है, वह गई कहाँ? ठहरो, आने दो आज उसे मैं बताता हूँ। इसी बीच यही दलेई के घर वाला बूढ़ा बाहर निकल कर बोला – क्या बात है दासजी महाराज? देखना तो बहू इतनी रात को कहाँ गई है? घर में टोकनी नहीं है। लगता है नहाने गई है। मैं तब से इस बच्चे को बहला रहा हूँ। लौट आने की बात।"

"वही बात तो कान में पड़ी तभी तो मैं कहने आया। मुझे लगा महाराज के घर की बहू कहीं गिर पड़ी होगी। झन्-झन् कर कुछ गिर पड़ने जैसा लगा, यहीं सिन्दूरा के घर के पास।" तब मेरा शरीर गहनों से भरा था। गिरने पर जरूर आवाज हुई होगी। सब दलेई बूढ़े के साथ आए। देखा, मैं एक ओर, तो टोकनी कहीं दूसरी ओर पड़ी है। मुझे उठाकर घर लाए। देर बाद जब चेत हुआ, तब सारी बातें कही।

उस दिन से बुखार में पड़ी तो छः महीने लगे। कितने बैद, झाड़-फूँक वालों ने चेष्टा की तब जाकर रास्ते पर आया शरीर।"

"वह तो खाली आशंका हो गई। नहीं तो वह चाहता कुछ नुकसान करना तो क्या पानि में नहीं डुबो देता? इतनी दूर क्यों लाता?"

"देखो तो बहू, टुकुआ कैसे डर से सो गया?"

"हाँ, टुकुआ डर से सो गया और तुम सब आये भले लड़के। सब सो जाओ। रात हो गई, खाकर बैठते नहीं हैं। नहीं तो भात सब लार हो जाएगा। इन्हें लेना तो, सब को सुला दो।"

"हमें डर लगेगा।"

"डर क्यों लगेगा रे! माँ तो साथ होगी इन्हें डर खाता है। जाओ, सब उठो। सो जाओ चलकर!"

"टुकुआ को जरा लेना भाइग, मैं उठूँ यहाँ से। खाट पर बिछौना है, चलो, चलें सब।"

"यहाँ यह उजाला रहने दो। तुम्हारे सोने के कमरे में एक डिबरी होगी। इसे फिर क्यों उठा रही हो? रहने दो।"

लालटेन लेकर बाकी लकड़ी का निचला भाग देखने लगे।

"एक कील साली निकल गई। यज्ञ में जला पैसा कब झड़ पड़ेगा, ठिकाना नहीं। तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं की आहुति दी गई है, उस यज्ञ में। यह पास रहा तो भूत-डायन का क्या डर! वे तो इस के पास फटकेंगे भी नहीं। पर लोग जो कहें, सब आधे सच, आधे झूठ होते हैं। ज्यादा भूत तो आदमी के इस साले मन से पैदा हुए हैं।"

"उस दिन ऐसे ही शुक्ल पक्ष की रात में बाड़ी की ओर से आकर किसी ने कह दिया कि मिश्राणी बुढ़िया धोती फेंक कर नंगी बैठी है। सूने-सूने बस देख रही है। हम भी ऊँघते-से थे। उसकी बातों में आकर दौड़े। सच धोती दूर जा पड़ी थी और बुढ़िया के हाथ-पैर थर-थरा रहे थे।"

"गरमी के दिन सब बाहर द्वार उढ़काये सोये थे। किसी एक ने कहा – देखें बूढ़ी सोई है या नहीं! जाकर देखा तो बेचारी बुढ़िया अचेत पड़ी है। तो वह कौन है? सुन्दरा के घर का छोकरा भी कम साहसी है! बाड़ी की ओर से एक लकड़ी लेकर घुस गया। देखा तो एक छोटा-सा खजूर का पेड़ हवा के बल हिल रहा है और पात्र के घर से किसी ने हाण्डी के ऊपर चूना पोत कर वहाँ उलटा कर रख दिया है। सब जोर से हँसने लगे। परन्तु वह लड़का हिम्मत न करता तो वह बात कितना ऊपर उठती, कोई ठिकाना है?"

मगर टुकू माँ ने जो देखा वह क्या है? बिलकुल यह सब नहीं है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। वे सब हैं तो जरूर। पर हमें जैसे अन्धेरे सुनसान जगह अच्छी नहीं लगती, उन्हें भी वैसे प्रकाश या भीड़-भाड़ की जगह अच्छी नहीं लगती होगी। कभी कैसे धक्के चढ़ने की बात है। अच्छा, मरते ही क्या आदमी प्रेत होकर घूमेगा! वैसा होता तो इतने लोग मर गए। झुण्ड के झुण्ड प्रेत होकर दिन में भी घूमते। ऐसा नहीं है। पर कर्मफल के अनुसार पशु योनि की तरह प्रेतयोनि में आत्मा चली जाती है। उस दिन धवलेश्वर में पण्डितजी ने प्रसंगवश अच्छी बात कही थी।

"इन पितृ पुरुषों को पिण्ड देने की ही बात लो! लोग जो करते हैं, वह केवल विश्वास पर ही तो करने की बात। नहीं तो प्रमाण कहाँ? हम सबका विश्वास है कि पितृलोक है, पितृ पुरुष है। वे सन्तुष्ट होते हैं, तब सिद्धि होती है। इसलिए साल में एक बार पिताहीन आदमी अपने पिता को, दादा को पिण्ड देता है। यदि मरने के बाद सब समाप्त होता तो आदमी जी नहीं सकता। भय उसके पीछे पड़ा रहता। अतः मरने पर भी सम्पर्क रहेगा, आस्ते-आस्ते सात पीढ़ी के बाद जाकर कटेगा। इससे ही थोड़ी-बहुत आशा होती है या नहीं? नहीं तो बचना महा-मुश्किल हो जाता।"

"सच है, महाराज, आपकी ही बात है। हम सबने मन को समझाने के लिए पितृलोक की रचना की है। नहीं तो वास्तव में मरने के बाद और कुछ नहीं। मगर नहीं करने के लिए भी तो वैसा प्रमाण चाहिए। असल बात तो यह है कि इन सब बातों के बारे में कोई कुछ नहीं जानता। इसमें आधे तो विश्वास करते हैं, आधे नहीं। ये सब खाली विश्वास की बातें हैं – अरे! हम तो दारू में ब्रह्म का विश्वास करते हैं। इसी स्तम्भ में दिया मन, यही हैं - भगवन। सूक्ष्म रूप में पितृ पुरुष हैं,

नहीं तो महाप्रभु स्वयं अर्जुन से कहते... पितृ पुरुषों में मैं अर्यमा नाम से...? आप सब ज्ञानी आदमी ठहरे महाराज! किस मार्ग से क्या बात कहेंगे, हम क्या समझ सकेंगे? हमारी तो सीधी-सादी बात है। हमारी सताईस पीढ़ी में पूर्वज यह सब करके कोई हीन नहीं हुए। हम इससे बाहर हो गए तो भी कुछ को हिला देंगे, ऐसी बात भी नहीं है। हम यह कहकर कि पितृ पुरुष नहीं हैं, उनके लिए, पिण्ड की बात टाल नहीं सकते। अरे, रे! देखो, परसों तो दशमी है?"

"अरे, ओ! जरा आना तो।"

टुकू की माँ थोड़ी खीझ में आकर बोली – "क्या कहते हैं?"

"परसों पिताजी का श्राद्ध है।"

"मैं जानती हूँ। क्या हुआ इससे?"

"नहीं, कुछ नहीं, पर कटहल के पत्ते थोड़े से सान्तरा की बाड़ी से लाने होंगे। दो-चार केले के पत्ते चाहियेंगे। हजार बातें हैं। कल ही करने से तो होगा।"

"करोगे नहीं? मैं पहले कह देती हूँ, कुशा भी नहीं है। फिर मांगते फिरेंगे।"

"अरे सच तो! कल जाकर पहले थोड़ी-सी जुगानी पड़ेगी, अच्छा कल तो है। बच्चे सो गए क्या?...उठें! बैठकर सोच रहा था कि..."

"अभी रहने दो, वे सब आपकी बातें, केवल भावना है।"

# कानफाड़ी

"मैं कहती हूँ – आकर सतरह दिन बीत गए, इस महीने को। वह अब और पैसे नहीं भेजेगा। तब तो मेरी बात बेवकूफी की लगती थी, अब आई समझ में? मैं सब जानती हूँ। मैं तो उड़ती चिड़िया के पंख गिन दूँ – वह मुझ से क्या छुपाएगी?"

"सुसरी, तुझे क्या मालूम है? यह देख, लिखा है – 'बापू, इस महीने बेटे को तबियत खराब होने के कारण खर्चा अधिक हो गया। पैसे नहीं भेज सकूँगा, किसी तरह चला लेना!' वहाँ बच्चे की तबियत खराब, उसकी तो चिन्ता नहीं, और इधर रुपया नहीं भेजा, इसलिए कसूर हो गया!"

"हाँ, बच्चे की तबियत! ऐसी क्या खराब हो गई, काचरा सूण्डी तो परसों-नरसों देखकर आया था, कह रहा था – तुम्हारे पोतेको देखकर आया हूँ, वे बाहर खेल रहा था। बहू को डेढ़ रुपये की चूड़ियाँ पहना दी। और अब तबियत बिगड़ गई! जिसे देने के इन्कार करना है, वह किसी भी तरीके से मना कर ही देगा।"

"अच्छा, ठीक है, न देगा तो नहीं। इससे क्या डरता हूँ? आज वह नौकरी कर रहा है। मैं भी तो लक्ष्मी नारायण की कृपा से, चालीस साल हो गए, इतना बड़ा कुटुम्ब चला रहा हूँ। छोड़ो, अब उसे पैसा कम पड़ रहा है तो वह अपने बाल-बच्चों को लेकर रहे। वह आनन्द से रहे तो हमें सन्तोष है। पचपन रुपये तो तनख्वाह, वह फिर किस-किस तरफ पूरा पड़ेगा, बताओ?"

"पिछली बार तो खुद अपने मुँह से कह रहा था – 'समझी माँ! दो पैसे ऊपर की आमदनी है, वैसे पकड़ो तो रोज चार-पाँच से क्या कम होते हैं? नहीं तो कोई तनख्वाह के पचपन में पचास रुपये भेज सकता है?' बहू थी, इसलिए तो महीने की महीने पचास रुपये पहुँच जाते थे। अब और यहाँ कौन है जो रुपये भेजेगा। ये लो, मैं गाँठ बाँध कर कह देती हूँ, वह और पैसे नहीं देगा, न सही। मैं क्या उससे डर जाती हूँ। मेरे तो अब गोद में या सिर पर पाँच-चार नहीं हैं जो झुक कर चलूँगी। बाप रे बाप करती फिरूँगी! इस बैशाख में टुकुआ को सात पूरे हो रहे हैं; आठवाँ चलेगा। दो अक्षर पढ़ना सीख जाएगा तो उसका भी हाथ चलेगा। अब तो उस जमाने की तरह सिर पर गठरी बाँध कर कन्या खोजना नहीं पड़ता। भगवान ने सही-सलामत रखा तो एक की जगह चार कन्या मिलेगी, फिर चुनकर मन इच्छा विवाह करेंगे।"

"इसमें क्या बात है? मेरे तो हाथ-पाँव टूट नहीं गए। उसे आदमी किया, इन सबको क्या नहीं कर सकूँगा? मैं सोचता हूँ, क्या रघुनाथ जैसा लड़का भी ऐसा हो सकता है?"

"क्यों, माँ, भैया ने चिट्ठी दी है, क्या लिखा है?" भाइग बापू की तरह कद्दावर, मजबूत हो गया है। बीच-बीच में पूजा-पाठ कर उसे लक्ष्मीनारायण के मन्दिर भी भेज देते हैं। रघुनाथ ने तो नौकरी कर ली! अब भाइग ही मन्दिर का काम सम्भालेगा।

"अब और क्या लिखेगा? न इस महीने और न किसी दूसरे महीने, वह अब आगे रुपये नहीं भेजेगा।"

बेटा पूछ रहा था और माँ बात समझा रही थी। दासजी चुपचाप सब सुन रहे थे।

"भाभी की बातों में पड़कर क्या भैया ऐसा कर रहे हैं?"

"सब बेटे तो ऐसे ही होते हैं। तू जब घर बसा लेगा तो वैसा नहीं करेगा? औरत का मुखड़ा देखने के बाद संसार में और कुछ दिखाई नहीं देगा। माँ-बाप की तो छोड़ो, लगेगा बस बूढ़े-बूढ़ी जितने जल्दी मरेंगे, उतने ही जल्दी काँटा दूर है।"

"हाँ, वह एक ऐसा हो गया तो क्या सभी वैसे होंगे?"

"देखा है रे बेटे, और कहना नहीं। माँ दस महीने पेट में रखेगी, इतना-सा से इतना बड़ा करेगी, नाक से कान से निकाल कर सब बेच-बाच कर आदमी करेगी। शादी के दूसरे दिन, वह हो जाएगा पराई का! इसके बाद वह पराई जाई आ जाएगी। वह कान में मंत्र फूँकेगी, वही होगी लोहे की लकीर!"

"वेद का वाक्य!"

भाइग एकदम शरमाता-सा पीछे दीवार की ओर देखकर बोला – "हूँ! ऐसे ही कोई मुफ्त पड़ा है?"

"अच्छा, तुम्हारा तो अभी पालने का वक्त पड़ा है। बच्चों को सब को दे दिया है। तेरे लिए सींके पर चिवड़ा-ऊखड़ा रखा हुआ है टोकरी में। रसोई घर की दीवार के सहारे सिलवर के गिलास में थोड़ा-सा दही है, डालकर खा लेना, जाओ! नहीं तो चलो मैं देती हूँ। तुम्हें सब मिल जाएगा? सब बाप की तरह हैं। वहाँ चीज पड़ी होगी, पर उधर लटर-पटर करते रहेंगे, वह चीज नहीं दिखेगी।"

वह सयाने बच्चे की तरह सिर खुजलाता-खुजलाता माँ के पीछे-पीछे गया। बट, जयी, टुकुआ दोपहर को खाना खाकर लेटे हैं। पता नहीं कैसे जान गए कि माँ कोई चीज निकालने जा रही है। सब एक दूसरे को बुला-बुला कर पहुँच गए, नीचे वाले घर के बरामदे में। दासजी को सब बाहर वाले कमरे से दिख रहा था।

बटिया कमर पर हाथ देकर झुककर पूछने लगा – "यह क्या है माँ?"

"पेट भर तो इसमें से खाकर सोया था, पहचानता नहीं है? ठहर जा, तेरे भैया ने नहीं खाया है, उसे दे दूँ? अभी तो, बस माँग-माँग कर खा लो और जब हाथ-पैर लम्बें होंगे तो बोलेगे – माँ कौन है?"

इसी बात को घुमा-फिराकर एक बार फिर कहा जाएगा, यह दासजी जानते हैं। अतः इधर कान न लगाकर बेटे की चिट्ठी पढ़ने लगे।

यह छोकरा अक्षर ऐसे डेढ़ हाथ की लम्बी पूँछ लगाकर क्यों लिखता है? "परम पूज्य, परमादरणीय पितृदेव के चरण कमलों में मेरे कोटि-कोटि सादर प्रणाम स्वीकार हों।" हजारी उमर हो बेटे, जगन्नाथ तुम्हारी सब कामों में मदद करें! "छोटे बच्चे की तबियत आज सात दिन से खराब है। उसे अस्पताल ले गया था! सब कह रहे थे कि सरकारी नौकरों को दवायें मुफ्त मिलती हैं। पर यह सब झूठ है। बड़े-बड़ों को मिलती होगी। हमें कुछ नहीं मिलता इन अस्पतालों में।"

"इंजेक्शन खरीदे। आने-जाने में, रिक्शा-खर्च ही काफी हो गया। दो दिन हुए उसे घर लाया हूँ। शरीर कुछ लाइन पर आ गया है। तो भी दवा-पानी तो चल ही रहा है। मैंने कितनी चेष्टा की, रुपये-पैसे भेजने के लिए। पन्द्रह नहीं तो दस ही सही - पर वह भी न भेज सका। यह महीना तो किसी तरह चला लेंगे। आपको और माँ को इसकी पाँय लागन! दासजी मन ही मन मुस्कराये। बच्चा है। लिखता है... इसकी..."

चिट्ठी को सावधानी से मोड़ कर रख दिया। क्या बच्चे की तबियत इतनी बिगड़ गई! ओः वह तो बहुत रोगी बच्चा निकला। उसके बच्चे की तबियत ऐसी, इस चूतिए ने किसी मूँजी से सुन लिया होगा कि बाहर खेल रहा था। वह कंजूस तो पुराना गप्पेड़ी ठहरा। दो-चार मन-सुहावनी न कहे तो चूड़ियाँ कौन लेगी उससे। छोड़ो, औरत की जात ही ऐसी है। भई, कहा गया है - यावत् वित्तोपार्जन शक्तः। तावन्निज परिवारो रक्तः। - उनके हाथ में वित्त देते हो तो वह भी अच्छी, तुम भी अच्छे। नहीं तो फट से मुँह मोड़ लेगी, देखेगी भी नहीं। वही रघुनाथ है, पैसा भेजता था तो उसकी बड़ाई करते मुँह नहीं थकता था, एक महीना पैसा न भेजा तो देखो!

अरे चलो, वह क्यों तुम्हें पैसा देगा? बोलो तो भला? उसे भी तो भगवान ने दे दिया है। उसकी सुविधा-असुविधा क्या तुम देखोगी? उसे बस दुह लो। क्यों? उसने न दिया तो अन्याय कर दिया? आजकल तो सब के घर में यही बात है। विवाह के बाद बेटे-बहू सब अलग हो जाते हैं। अब तुम्हारा ब्राह्मण घर है, एक साथ रहने का कायदा है? जिसकी जमीन-जायदाद है, वे एक साथ, एक चूल्हे में चल सकते हैं। नहीं तो जमीन के टुकड़े-टुकड़े कर सब गरीब हो जाते। हमारी तो एक गज जमीन भी नहीं है। कोई न कोई सहारा देकर चलने की बात। इस पर यदि वह अपने धर्म को देखकर बूढ़े माँ-बाप की अपनी शक्ति के अनुसार सहायता कर सका तो ठीक, नहीं तो क्या अन्याय हो गया?

अब इन्द्रमणि इतना बड़ा आदमी होकर क्या देता है? मगर बाप को भी भगवान ने दिया है। अब वह जमीन-जायदाद कर गया। खा-पीकर हट्टा-कट्टा है। पर बेटे को मना कर दिया।

वह जानकार आदमी ठहरा तो! - "समझे दास, अब उस जमीन वाली बात तो रही नहीं। बच्चों को जकड़ कर जोंक की तरह रखने पर वे कभी चैन की साँस लेना जान ही नहीं पायेंगे। वे तो मूर्ख घर के आदमी नहीं हैं जो उन्हें हर बात बतायेंगे! स्वयं उनका मन होगा तो क्या माँ-बाप की बात नहीं देखेंगे? इन्द्रमणि तो कहता था कि साहब लोग विवाह-शादी के बाद घर आकर नहीं रहते। वे कमा कर अपना घर-बार कर लेते हैं, तब जाकर विवाह करते हैं।" - पण्डित होने पर भी यार ऊपर टांग रखने वाला है ना। अपनी बात को तो जरा टेक कर कहेगा ही - - बेटे से पैसे नहीं लिए। छोटे बेटे चन्द्रमणि और उससे छोटी बहन दोनों को उसके पीछे बाँध दिया। वे दोनों भी तो फिर खायेंगे, पीयेंगे, पढ़ेंगे - वह बात उसकी समझ में क्यों आने लगी? बाकी दोनों छोटों का अभी तो कोई जंजाल नहीं है। मगर एक ही बात हुई तो? पकड़ के मारे जो, बाँध के मारो सो। हमारे तो ये किसी काम के नहीं, वरना रघु के पास रह कर दो अक्षर सीख नहीं जाते? उधर से तो हुआ नहीं? दो पैसा नहीं भेजेगा तो कैसे चलेगा? हम तो फिरंगी नहीं कि विवाह

कर ले, वह बाप भाई को छोड़कर नया घर बसा ले, और वहीं रह जाय।

तभी कानों में आवाज पडी – "सब वहीं तो जायेंगे। उसके मुँह को देख लेने पर तो स्वर्ग पाताल-धरती तीनों लोक नहीं दिखेंगे। तब ये नहीं देखेंगे कि माँ के लिए। जीती रही तो देख लूँगी सब।"

बच्चे सब थोड़ा-थोड़ा समझ रहे थे। लाज के मारे गड़े जा रहे थे। सिर नीचा किए खा रहा था चुपचाप भाइग!

दासजी सोचने लगे टुकू की माँ झूठ तो नहीं कहती। सच, विवाह के बाद आदमी कितना बदल जाता है? नारी होती है मोहिनी, वह स्तम्भन, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन - इन चारों विद्याओं में पारंगम होती है। पारंगम क्या? विधाता ने उसे यह विद्या देकर ही जन्म दिया है। उन्हें देखते ही आदमी की अकल को क्या हो जाएगा कि दुनिया की बाकी सब चीजें तुच्छ जान पड़ेंगी। आग के सामने मोम की तरह पिघल जायेगा।... बड़ा अचम्भा होता है रे! न जान, न पहचान, क्षण भर में वह हो जाएगी'सब कुछ। प्रधान बूढ़े की ही बात लो। आज वह दान-धर्म कर रहा है। उसे तो बचपन से देखता आ रहा हूँ। इतना बड़ा होने पर नंगा ही तितली पकड़ता फिरता था। एक काला बोदा (बलि का बकरा) इससे हिल-मिल गया था। उसे ही पकड़े रात-दिन घूमता रहता। बाप ने देवी के आगे बलि देने की मनौती कर रखी थी। जिस दिन लेकर बलि दे दी, उस दिन मेमने की तरह गरजता-चिल्लाता सारे गाँव में फिरा। दूसरे दिन भूखे ही मामूँ के यहाँ चला आया। पर बाप को कभी दो शब्द नहीं कहे। अरे बाबू, देखते-देखते क्या ना जवान पट्ठा हो गया और जब शादी कर डाली तो बाप की वो गत बनाई कि क्या कहें! एक दिन क्या कोई लड़ाई-झगड़ा हो गया, लोग कहते हैं, बाप पर हाथ उठा दिया, दो थाप कस कर जमा दी। बस बूढ़ा फिर न उठ सका, जो खाट पकड़ी और अच्छा न हुआ! चल बसा। पैसों के मामले में जरा ठस्स है, नहीं तो ऐसा होगा किसी ने सोचा भी था? मगर उस औरत के सिखावे में क्या नहीं किया? यह तो एक नशा है! सिर में पकड़ ले तो होश-हवाश खो बैठे। योगी-मुनियों को भी यह पागल कर दे।

"तुम इसमें से एक-आध चख लेते?"

"नहीं रहने दो। कुबेला में भात खाए, वे भी अब तक पचे नहीं। रख दो, बाद में भूख होगी तो देखा जाएगा।"

एक-एक पींडी खा कर बट, जयी, टुकुआ मुँह पर पानी का हाथ फेरते दौड़ते आ रहे थे, सब घर से एकदम बाहर चले। "अरे रे, बट! इन दोनों को लेकर किधर निकले? दोपहर ढली भी नहीं, अभी से कहाँ चल पड़े?"

"यहीं हम गोप के घर के बरामदे में खेलेंगे" – कहते हुए भाग छूटे। भाइग कुल्ला कर सोने के कमरे की ओर चला गया। टुकू की माँ पंखा लेकर उसके पीछे-पीछे गई, बेटा सोये तो वह हवा कर देगी, दासजी को थोड़ी हँसी आ गई।

बूढ़ी को बहुत आशा हो गई है, बड़े बेटे को पराया कर दिया, यह बेटा तो उसको मानेगा। ये लोग जरा-सा आसरा लिए बिना बच नहीं सकती। इसका मन, उसका मन रख, इसी तरह सदा चलना पड़ता है। यही औरत न हो तो संसार चले नहीं। इधर ये हुई सब अनर्थ की जड़! इनके लिए कितनी मारकाट, कितनी कलह, इन्हीं के कारण रामायण, महाभारत!

कितना दुर्बल जीव है! बेल की तरह आकर लिपट जाएगी। पर देखते ही देखते इतनी जोर से जकड़ लेगी कि सुसरी समूचे पेड़ को ही खा लेगी। ठीक ही तो कहा – "नारी मोहिनी विष्णु माया।" औरतों के पास वह मोहिनी गुण जरा-सा रख दिया है, नहीं तो उन्हें कोई पूछता? यह सृष्टि इतने में ही समाप्त हो जाती। मगर कहाँ? उन्हें तो विधाता ने गढ़ते समय ही तरीके से रखा है... उस जानकी दूधवाले की लड़की को देखो। वह जिधर जाती है पीछे-पीछे झुण्ड लग जाता है। गई, छुट्टी हुई, किसी एक का हाथ पकड़ कर मुक्त हो गई। यह हुआ नियम! बेटा बहू को लेकर घर संसार करने को सबका मन होता है। और संसार की माया का स्वरूप ये औरतें!... माँ, बहू, बहन, बेटी – नाना रूपों में नाना पाशों में बाँध रखेंगी। पानी पर मलाई दिखा देंगी। नहीं तो झूठा संसार सपाट खुलता दिखता! उसमें मन का लोभ नहीं पड़ता। ये लोग ही उसमें लोभ लगा देती हैं। इनके लिए ही आदमी को जीने का लोभ हो जाता है। फिर उसमें टूट-टाट कर गिर पड़ता है। इन्हीं के लिए, अद्‌भुत जीव हैं। विचित्र बात है एक ओर से देखो तो एकदम निरीह, कुछ भी न जाननेवाले की तरह दिखेंगी, मानो उन्हें पकड़ कर न रखा तो बह ही जाएँगी। दूसरी ओर से देखो तो एक-एक अजगर हैं। समूचा निगलने तक दाँत लगाए भी नहीं। मगर समूचा ठूँस लेने के बाद एक बार दाढ़ इधर घुमाई, बस बेचारा प्राणी चूर-चूर, सुसरी ! असंयम बात हम तो करते हैं। ये औरत है। उसकी रखवाली करो। आदमी चारों ओर उसे बाघ की तरह घूर रहे हैं। आहा! वह बिचारी, हिरनी है! – अबे, असल में वे ही बाघिन हैं। उनसे उबर जाए जो, ऐसा पट्‌ठा कोई नहीं। सर्वत्र हार गई, हार गई, दिखाती रहे, पर अन्त में उसी की जीत रहती है। अबला रूप लेकर मोह लेगी कि शुम्भ-निशुम्भ भी काबू में आ जाएँगे। विरोचन तक मर जाएगा। मन्दराचल को दहलाने वाले असुर भी चक्कर खा जाएँगे। पीते रहो आँख से खाली मोहिनी रूप! इधर पत्ते में एक बूँद भी अमृत गिरने का नहीं।

ओहो, ये हैं मायावी विष्णु के अमोघ अस्त्र! उनके चरित्र को समझने का मतलब है विष्णु माया को समझना! कहा भी तो है – "त्रिया चरित्र, पुरुषस्य भाग्य, देवो न जानाति कुतः मनुष्याः"। यह सृष्टि जिस का खेल है, वह इस नारी को लेकर आँख-मिचौनी खेल रहा है। जवानी की उमर होगी, शरीर में दम-खम है, उसी समय ये कहाँ-कहाँ से आकर घेर लेंगी। घो-घो रानी के खेल में आदमी बीच में पड़ जाएगा। जिधर मुँह कर खुलना चाहेगा, देखेगा उधर ही कोई पहरा दे रही है। हाथ में हाथ डाले सब चौकस रहेंगी। नीचे झुक कर भागना चाहोगे, वे और भी झुक जायेंगी। कूद कर भागोगे, वे और ऊँची हो जायेंगी। उनके हाथ के बंधन पर चोट कर खोल सके तब जाकर पार हो सकोगे। मगर वह भी क्या सहज है? वे तो चारों ओर बीच वाले को डुबोती रहेंगी।... "बोल-बोल रानी, कितना पानी! पैरों जितना पानी! कमर तक पानी! बोल-बोल रानी कितना पानी? गले तक पानी!" इस तरह डूबता चला जाएगा। समय कहाँ? देखते-देखते चौकस रहते हुए भी डूब डाएगा वह!

त्रेता युग का पहलवान ! वह हनुमान था तो महायोगी। परम भक्त! पर! हार गया ना सुरसा के सामने। यह योग बल से जितना बड़ा होता गया, उसका मुँह

उतना ही चौड़ा होता गया। शक्ति से इसे जीतना सम्भव नहीं। अतः बल से नहीं, बुद्धि से इसे जीतना होगा। घुस जाओ उसके मुँह में। वह सोचे - मानो निगल गई। आँख मींच कर गटक जाएगी। देखा तो नाक के रास्ते सूक्ष्म रूप में हनु खिसक कर भाग छूटा। नारी अपना भाग अवश्य लेगी। मगर उन्हें उतना हिस्सा न देकर बल से जीतने की सोचते हो, तो बेटे, वह आशा छोड़ दो! उन्हें संसार चाहिए, दे दो यह शरीर उन्हें दे दो, उसी में धन-वैभव बेटा-बेटी सब मिल जाएगा। पर सूक्ष्म रूप से आत्मा को खिसका लेना पड़ेगा। नहीं तो पूरे को निगल जाएगी। उस जठराग्नि में पड़कर राख हो जाओगे।

अरे गाय तो बीड़ा भर घास चरेगी ही। उसे खेत में ले जाना ही पड़ेगा। वहाँ उसे चरने छोड़ दे और तुम अपने पेड़ के नीचे बैठ कर बंशी बजाओ। पर उसे यदि भूखा रखोगे, वह देखती रहेगी, देखती रहेगी और अन्त में झप् से तुम्हारे मांस में से नोंच लेगी। आत्मा को बचा लोगे, यदि उसे शरीर दे दिया। जाओ सुसरे माटी का शरीर है, तो जाए, उससे क्या!... मगर यह क्या कोई सहज बात पड़ी है?

तम्बाखू मुँह में डाली, दीवार के सहारे आँख मींचे पड़े रहे कुछ समय तक। सिर पर हाथ फेर कर मुस्करा उठे। सोचने लगे –

यार, खाली शास्त्र की बातें बैठकर सोच रहा था, असल काम की ये सब नहीं हैं। कौन नहीं जानता कि नारी माया है मगर कितने हैं जो उसे छोड़ सके हैं?... माया के रूप में वह तो अन्धी है, हमारी तरह। पर उसमें अपार बल है। आत्मा पुरुष बेचारा चल नहीं सकेगा।... देखोगे वह लंगड़ा है। दोनों तो शरीर और आत्मा की तरह मिलकर रहेंगे... नहीं तो फिर सृष्टि चलेगी कैसे! बाकी रही त्रिनाथ कथा के अन्धे-लंगड़े वाली बात। यदि पंगु अन्धे को रास्ता दिखाएगा, तो अन्धा चलेगा, कुछ दूर आगे तक चले जाने की बात। पर अन्धे का प्रभाव इतना अधिक है कि पंगु की आँखों पर परदा पड़ जाएगा। ऐसे में और कुछ दिखेगा ही नहीं। जाकर किसी गड्ढे में गिर पड़ना ही निश्चित है।

"ऐसे क्यों सो रहे हो, नींद आ रही है तो ठीक से सो जाओ!"

"ओहो! क्यों इस तरह चौंकाने की तरह आवाज लगा रही हो! एक लोटा पानी तो पिलाना जरा!"

"उखड़ा लाऊँ? कुछ मुँह में डाल लो ना!"

"अच्छा ले आओ!"

# पाँच-साला भोट

"अरे गले में अटक जाएगा, पानी घूँट-घूँट कर धीरे-धीरे पीना!"

"पहले कटोरी पकड़ो। मैं जा रहा हूँ मोटर गाड़ी देखने। दो गाड़ियाँ आकर गाँव के बीच संकीर्तन छक पर खड़ी हैं" – कहकर बट कटोरे को बरामदे में रख पलक मारते ही कूदते हुए भागा।

टुकू की माँ कटोरा उठाते-उठाते कहने लगी – "लगता है फिर भोट शुरू हो गए हैं। नहीं तो मोटर गाड़ी क्यों आती? यह भी एक नाटक चलेगा, कुछ दिन। उठें।"

"माँ, मैं मोटर गाड़ी देखने जाऊँगा।" पीछे से जयी नाक में गुनगुनाता-सा बोला।

"वो बट गया, तब बोला नहीं, साथ चला जाता।"

"मैं जाऊँगा।"

"जा, कौन मना कर रहा है तुम्हें, चले जाना, मैं घर तो बुहार दूँ। जा चला जा, वहाँ बट होगा, जा!"

चूल्हे पर भात बैठा रखा है। भोग थोड़ा-सा आता है, पर उससे क्या सब को पेट भरता है? बीच-बीच में मिल गया तो उसमें कुछ मिलाकर खाने पर खाया भी जा सकता है। सुबह तो मूड़ी थी। बच्चे खा-पीकर इधर-उधर हो गए हैं। दासजी को मन्दिर से आते-आते और भी देर होगी।

टुकू की माँ हाथ में थोड़ी मूड़ी लेकर फाँकते-फाँकते घर बुहार रही है। वह भिखमंगी लड़की गई तब थोड़ी साँस आई। हम हमारे जैसे-तैसे चलेंगे। कसम को फुसला-बहलाकर अन्त में अलग कर ही दिया। वह भी खूब गुम-सुमी है। वह ऐसे डूब कर पानी पीती है, कोई नहीं जान पाएगा। पर रघुनाथ तो बेटा है। छिः-छिः रात दिन ख़ाली उसके पास ही खुसर-फुसर करता रहा। वह क्या करे?... उसे तो मोहिनी ने मेंढ़ा बना दिया। ठीक है, जा! मैं क्या एकदम हतभागिन हूँ? मुझे लक्ष्मी नारायण ने चार और दिए हैं। मैं क्या उसके चलवे चाटूँगी?

फिर एक मुट्ठी मूड़ी मुँह में ड़ाल हाथ में झाड़ू लिए ऊपर बरामदे में गई। कितनी धूल इनके पैरों से आ जाती है? अभी आदमी बुहार कर जाए और इतनी देर में फिर कूड़ा! इस्, यह बरामदे की डोली पर भी पता नहीं क्या करते हैं? हजार बार माटी देकर लीपती हूँ। भला दो दिन भी कभी रहती। कैसे कैसे तोड़ देते हैं। क्या करें इन बन्दरों के झुण्ड का।... देखो, यहाँ से कैसे तोड़ा है।

मैं देखती तो तुम्हारे हाथों को सही सलामत कर देती।

"भोट होंगे माँ, भोट होंगे। यह देख, कितने रंगीन कागज वहाँ मोटर के पास बाँट रहे हैं।"

दौड़ते-दौड़ते हाँफने के कारण बट के मुँह से बात ही नहीं निकलती।" क्या रे, यह दीवार किसने तोड़ी?

"पता नहीं। माँ, वह मोटर ऐसे बनी है, उसमें ऐसे ऊंचे ऊँचे यहाँ एक, वहाँ एक, ऐसे चार चक्के हैं। ऊपर एक और चक्का है। कितने आदमी वहाँ जमा हो गए थे। एक कल में से गीत गा रहे थे। तुम यह कागज रखो, मैं जा रहा हूँ और लाऊँगा।"

"अरे ओ! अरे, सुनो! तुमने जयी को देखा है? वह तेरे पास गया है।"

"मैंने नहीं देखा।"

बाहर वाले कमरे में से होकर उछलता बट चला गया। टुकू की माँ ने कागजों को उलटा-पुलटा कर देखा। दाहिने हाथ में झाड़ू लिए खड़ी हैं।

"अरे, यह तो वही बैलों की जोड़ी है। उस वर्ष जो बात, इस बार भी वही बात है।"

उन कागजों को मोड़कर चबूतरे के आले में खोंस दिया। कहाँ गया वह जयी का बच्चा – आकर नौ-दस वर्ष का हो गया। जरा-सी भी जबान नहीं खुलती। टुकुआ भी सो गया। नहीं तो यह सब देखकर कितना खुश होता!

नीचे वाले बरामदे में चली गई टुकू की माँ। चूल्हे पर भात की हाण्डी चढ़ी हुई है, उसे जाकर देख आना चाहिए।

टुकुआ उठा और उठते-उठते माँ को आवाज लगाई। "उठ गए रे बेटे! आती हूँ, ठहर जरा! तेरी नई टोपी में मूड़ी दूँगी, बैठकर खा लेना जरा ठहर।"

टुकू की माँ ने बेटे को मुट्ठी-भर मूड़ी दी। फुरसत पाकर घर के सब काम कर डाले। एक लय में काम करे तो उनके जितनी जल्दी काम कोई कर भी नहीं सकता। चाहे तो घड़ी भर में सात रकम के व्यंजन बनाकर रख दें। इतना है कि बिचारी जरा बातूनी है। आठ-आठ बच्चों को जनकर अब पैसा-भर भी दम नहीं है। देखने में आकार कोई पतला नहीं। अच्छा, हृष्ट-पुष्ट आदमी-सा लगता है। लेकिन कहीं बैठने के बाद उठने के लिए घुटनों पर हाथ रखकर उठना पड़ता है। जरा भागा-दौड़ी करे, या भारी काम करने पर कमर डांग की तरह हो जाती है। मगर घर का सारा काम खुद कर लेती हैं। बहू गई तब से सारा काम उन पर आ पड़ा है। घर-द्वार लीपने-पोंछने से लेकर, उठाना, रखना, पीसना, पोना, पानी निकालना, इतना बड़ा आँगन-बरामदा सब बुहारना। यह सब करने के बाद कमर-पीठ दर्द करने लगती है। फिर भी सब करती है।

इनके घर उस दिन सात बैलगाड़ी भरकर चीजें आई थीं। उनके पिता भरे-पूरे घर वाले थे। चार भाइयों के बीच वह अकेली लड़की थी। बड़ी हवेली पत्थर की, आवाज लगाने पर सुनाई ही नहीं पड़ती। बाबा के बटुवे में कितने प्रकार के मसाले होते। अनेक चित्र बने थे बटुवे पर। उनके यहाँ पीतल की मूर्तियाँ थीं, उसे नीचे से उठाया भी नहीं जा सकता था। चारों भाई कचहरी वाले कमरे में बैठकर बातें करते, पान खाते रहते, इधर रसोई से एक के बाद एक खाने की चीजें लाई जातीं।

पोते-पोती, सब पहले भात खा लेते, बूढ़ी दादी को छटपटाहट-सी लगती। महादेव पर सवा लाख चम्पा के पुष्प चढ़ाए तब जाकर चार बेटे पाए हैं। कितने कष्टों के बाद मिले हैं! कितनी देर हो गई, अभी तक इन्होंने खाना नहीं खाया! बुढ़िया हाथ में लकड़ी लिए ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर खाली चक्कर काटती रहती। कचहरी वाले कमरे में जा नहीं सकती। अतः पोती को भेजती। यह

टुकू की माँ तब कुनी थी। "ऐ, बेटी कुनी, जरा बुला तो देना, जा जरा, तेरे बापू, बाबा, काका - किसी ने भात नहीं खाए हैं, सब धोवन-पोंछन हो गया, भात सूखकर पत्थर हो गए। बातें सुनने का और समय नहीं मिलता इन्हें!"

कभी थोड़ी-सी दूध की मलाई, कभी दो-चार कोरा (नारियल की खुरचन की बनी मिठाई), कभी खाण्ड में मिली मुट्ठी भर लाई खाकर वह कचहरी घर में जाती। बाबा कितने लाड़-प्यार से गोद में बैठाते। वहाँ पान, सुगंधित कत्था, चूना मिलाकर खिलाते उन्हें। कितने दिन इन्होंने पान खाए होंगे। बार-बार खाने-पीने की चीजें लाने के कारण कटोरा, तश्तरी, छोटी थाली, तीन-चार लोटे आदि सब इधर-उधर पड़े होते। रतनपुर से लोग आकर फुसलाकर दो पैसे ले जाने की फिराक में रहते, मीठी-मीठी बातें करते। बुढ़िया दादी की वो बात याद ही नहीं रहती। वहीं दादा की गोद में पान से होंठ रचाकर बैठ जाती। काका के शरीर से चन्दन की-सी महक आती। सिर पर इतना बड़ा जूड़ा और कान में चम्पा के फूल खोंसे रहती। इसी तरह थोड़ी-सी देर भी नहीं होती कि किवाड़ के पीछे से आवाज आती ठक्-ठक्-ठक्! कौन? ना बूढ़ी दादी! किवाड़ को जरा खोल कर बुढ़िया सुनाकर कहती उन्हें – "अरे, समय आकर इतना हो गया, उठते हो या नहीं वहाँ से? घर में औरतें भूखे बैठी हैं। तुम सबके मन में जरा भी विचार नहीं?"... चारों भाई हड़बड़ाकर उठते, कहते – "किसी को भेज क्यों नहीं दिया माँ, तू क्यों इतनी दूर आई?" बुढ़िया को साथ ले चारों भाई घर में घुसते। "भेजूँ तो किसको? क्या कोई मेरी बात सुनता है? यह तुम्हारी राजकुमारी गई थी बुलाने, जाकर पान खाकर लाड़ली हो गई!" बाबा, बेटी का माथा सहलाते। "कहा तो था इसने, बातों में उसकी ओर कान नहीं दिए। हमारी तो सोने-सी बेटी है यह।"

यह सुनकर उन्हें लाज आ जाती।

वैसे पिताजी इनका उतना आदर नहीं करते। वैसे ही कभी-कभी थोड़ा बहुत थपथपा देते। चारों भाई, माँ और बेटी को लेकर रसोई के बरामदे में पहुँचते। पत्थर का बरामदा धोया-पोंछा चमचमाता दिखता। कटहल की लकड़ी के चार पीढ़े थे। इतनी बड़ी-बड़ी थालियों में भात परोसा जाता। काका की थाली के पास बड़ा-सा मछली का सिर होता। दूसरे काका की थाली में चाँदी के कटोरे में जीरा, हींग देकर ढेर सारे गाय के घी में छोंकी लाल मिरच रहती। पिताजी भात खाने के बाद एक इडली खाते बड़ी-सी... भाप निकलती होती। बाकी बाबा के पास एक काँसे के बड़े कटोरे में औटाया हुआ दूध होता। पत्ते की तरह मोटी मलाई उस पर आ गई होती। कपड़े की पोटली में सौंठ बाँध उबाली जाती। ऊपर थोड़ी-सी काली मिर्च की बुकनी छिड़की जाती। बाबा पहले बैठकर उसमें अंगुली डुबाते। ज्यादा गर्म भी नहीं होता या ठण्डा बर्फ नहीं। गाढ़ा इतना कि मुश्किल से उसमें अँगुली घूमती। तब जाकर ठीक होता। बाईं ओर बेटी बैठती। और दोनों भाई बैठते लेकर। खाते समय कितनी बातें उठती, कितनी हँसी-मजाक होती।... अब तो कितना बदल गया जमाना। वे ही अब इतने छोटे हो गए हैं कि दूसरों के दरवाजे पर खड़े हैं। चारों भाइयों के गुजरते ही सोने-सा घर मिट्टी हो गया। रघु की पूठ पर वे दोनों कलमुँहे हुए। तब तक बेटी पान खाती है। इसलिए एक आदमी पाँच रुपये लेकर हर महीना आता। यह काचरा सुण्डी चूड़ी पहनाकर पैसा नहीं लिया करता...

रतनपुर जाता वहीं से ले लेता। बाबा गुजरे, उनके पीछे-पीछे बस तीन ही वर्ष में तीनों भाई चल बसे। इतना बड़ा घर बसाया था, सब राख में मिल गया।

आज पता नहीं क्यों, अकेली बैठी है। इसलिए क्या... केवल घूम-फिर कर पुरानी बातें याद आ रही हैं।

सुबह जो नहा धोकर भात बनाए थे, फिर काम-धंधा करके हाथ-पैर भी नहीं धोये। हाथ-पैरों में धूल जमी है।

मन में कैसे भी एक कोह-सा उठा। जितना भी मन में हिम्मत करने की सोचती, छाती टूक-टूक हो जाती। आँखों से आँसू की धार बह चली। साड़ी के पल्लू से पोंछ लेती। इसी बीच आया भाइग।

"माँ, माँ कहाँ है तू?... टुकुआ, माँ कहाँ है रे?"

अपने को खूब सम्भालती बोली – "यहीं बैठी हूँ, क्या कह रहे हो?" भींगी-भींगी आवाज और रुलाई से भरभरा स्वर सुन भाइग, जो कोई गढ़ जीत कर आए हुए की तरह उत्साह में आया था बहुत कुछ कहने के लिए, सब ठण्डा पड़ गया।

धड़धड़ाता नीचे बरामदे में जाकर देखा माँ की पलकें गीली हैं। 'तू रो रही है माँ!"

"नहीं रे बेटे, यही पिछली बातें याद आ गई तो अन्दर तक हिला दिया। तू अब तक कहाँ था?"

बात इतनी सहज न होने पर भी वैसे कोई खास नहीं होगी। अतः भाइग ने शरू किया-

"अब इस बार भोट फिर होंगे, समझी माँ! दो-तीन दल वालों की लड़ाई यहाँ फिर होगी। सुबह ही सुबह तो एक जोड़ी मोटर आ खड़ी हुई थी। और घड़ी भर बाद फिर दो आकर खड़ी हुई। जबाब-सवाल का जो जमघट लगा, तुम्हें क्या बताऊँ! अगली दोनों गाड़ियाँ तो संकीर्तन मैदान में कागज बाँट रही थी, दूसरी दो आकर, यहाँ से पितई नानी क घर जितनी दूर, चालीसेक हाथ जितनी दूरी पर रही। नई गाड़ी के अन्दर, एक आवाज वाली कल लगी थी, वह बोलने लगी। सारा गाँव गूँजने लगा। सब तो दौड़ पड़े उस ओर!... तब अगली गाड़ी भी वैसे ही बोलने लगी।"

"हाँ, हाँ, अभी कोई घूँ... घाँ... कुछ सुनाई दे रहा था, वही होगा।"

"वही, वही! फिर बड़े मजे की बात हुई। अन्त में उनमें से एक-एक ने मुँह पर रंग लगाया और वह नाचा। बाजी लग गई कि किस के पास जाकर लोग जमा होते हैं। इसी बीच क्या हुआ कि पीछे जो गाड़ी आ रही थी उस पर एक आदमी चढ़ गया। उसके दोनों ओर दो बड़ी-बड़ी थैलियाँ रखी थीं। उसमें से मुट्ठी-मुट्ठी भर कर चीनी की कमला मिठाई बाँटी। बस फिर तो बच्चों का झुण्ड जमा हो गया और देखते ही देखते बड़े आदमी भी वहाँ जाकर जमा हो गए। यह देख... मैं भी उनमें से दो जोड़ा लाया हूँ। देख, एक मुँह में डाल, कैसा लगता है! ठीक सन्तरे की-सी खुशबू!"

"तू ही खा ले, टुकुआ को भी दे दे।"

"और है। मैं उसे देता हूँ, तू एक खा ले पहले।" मुँह के पास ले गया तो उनमें से एक लेकर उठी। हाथ-मुँह धो आने के लिए।

सन्तरा मिठाई को दाँतों में दबाते हुए भाइग कह रहा था – "खाने की आशा से मानो सब उस मोटर को घेर गए और बाकी दो पें-पें कर भाग गई। आज शाम को फिर आयेंगी तो तमाशा होगा।"

"ॐ नारायण" कहते हुए दासजी घर के अन्दर आए। चौड़ी पीतल की थाली केले के पत्ते से ढँकी है – मंदिर का प्रसाद है। उसे बरामदे के एक कोने में रखते हुए बोले -

"भाइग एक लोटा पानी तो लाना, पैर धो लें।" पानी का लोटा लाकर भाइग ने बरामदे में रखा। दासजी हाथ, पैर, मुँह धोकर आराम से बैठ गए। टुकुआ एक गोल मिठाई मुँह में चूसते हुए और दो गोंद-सी चिपचिपी मुट्ठी में बन्द किए पिता की ओर देख रहा था।

"हाथ में क्या लिए हो, बेटे!"

चारों मिठाइयों में कौन-सी कैसी लगती है देखने के लिए सबको चख रहा है। मुट्ठी खोलकर दिखा दी। टुकू की माँ उधर से तभी आ पहुँची।

"इसे मुँह में तो डालो। भोट देने की जगह फिर बाँट रहे थे, भाइग दो-चार लाया है।" भाइग को बहुत लाज आती है। माँ के हाथ से भेज कर निचले बरामदे में खम्भे के पीछे छुप-छुप कर देख रहा है, पिताजी उसकी लाई चीज खायेंगे या नहीं?

"नहीं रे, पता नहीं क्या कुछ नहीं डाला होगा इसे तैयार करने के लिए। हम क्यों उसे खाकर मुँह खराब करें?"

"हाँ, आँ, मैंने अभी खाया है। यह सब तो चीनी से बना है और उसमें जरा-सी सुगन्ध डाल दी है, ऐसी महक रही है – जीभ से अरुचि छूट जाएगी। लो एक डालो तो सही।"

"खुद तो भरष्ट हो ही गई, सबको भरष्ट करने को मन है ! मैं नहीं खाऊँगा, उसे रख दो। पहले मैं भात खा लूँ।"

"ले बेटे! इन अड़बंगू आदमी को कौन समझाए? लाड़-प्यार से इस घर में कभी कुछ खाया न पीया। सदा तो वैसे ही खाऊँ-फाड़ूँ करते रहते हैं।"

भाइग आकर अप्रतिभ-सा होकर माँ के हाथ से सब ले गया। उसका मन थोड़ा छोटा जरूर हो गया, पर पिता की ओर अनजाने ही उसकी श्रद्धा बढ़ गई। उसके पिता एक बागी देवता हैं, उनके पास फुसला-फुसली ठगाई-वगाई कुछ नहीं चल सकता।

तनी से धुला हुआ अंगोछा उतार कर दासजी तल घर के बरामदे में जा बैठे।

"जयी, बट गए कहाँ? दिखाई तो नहीं पड़ते। वे कहीं भोट-भाट वालों के पास गए होंगे, वहाँ वह बाजे के गीत सुन रहे होंगे।... ओ... ये भोटों के दिन आए और बस इन सबको तो मानो केंकड़े को गन्दला पानी मिल गया है। मैं, उस रास्ते से ही तो आ रहा हूँ। वृन्दा नायक भी वहीं जाकर जुड़ गया।"

"तुम्हारा क्या गया उसमें? यह बड़ी भाजी के साथ कच्ची मिर्च खायेंगे या सूखी मिर्च भून दूँ?" चूल्हे के पास से टुकू की माँ बोली।

"दो-एक भुनी मिर्च ही दो।... मेरा कुछ आता-जाता नहीं, पर वृन्दा नायक

कैसा हिसाबी आदमी है, यह समझने से होगा। सुन लो, पहले मेरी बात तो। मोटर में जितने लोग आए थे सब अपने-अपने काम में लगे हैं। नायक पसीना-पसीना होकर उसके भीतर से उन जले किवाड़ों के अन्दर से सारे गाँव के लोगों को देखने में लगा है। उनके साथ कैसे भी तो थोड़ा-बहुत हँस बोल कर भोटों की बात करने में लगा है। मुझे देख, वैसे ही अन्दर से वह कहने लगा –

"कहिए दासजी, फिर आपके पास ये सब आए हैं। अमुक बाबू... क्या कोई एक नाम बताया, मुझे तो याद ही नहीं रहा। हाँ तो, यहाँ से खड़े हो रहे हैं। मुझे घर बुलाकर खिला-पिला कर कान में कहा है – देखो, नायकजी! गाँव भर में किसी को कोई असुविधा न रहे। जो कुछ भी कहें लोग सब सुनकर उसका प्रतिकार करना। भोट वे चाहें जिसे दें, इसकी चिन्ता नहीं। अगर मुझे आप लोग सेवा का मौका दें, तो मैं गाँव को गाँव जैसा नहीं रहने दूँगा। आप लोग स्वयं देखेंगे, अधिक कहने से क्या लाभ"?... इसी तरह बहुत कुछ गप्पें हाँकी। भला उस गुमटी में से बाहर आकर तो बात करता नहीं। मोटर के भीतर से ही बात करेंगे वे तो। साला भुक्खड़ है। मुफ्त में मोटर मिली है। बैठने को। उसे लगता है कहीं वह बोम यान में चढ़ गया है। उसे तो इस महीने टिक्कस दे दिया है, और डर क्यों... कह आया... अच्छा नायकजी, मैं जरा आता हूँ, देर हो रही है।

"हाँ, हाँ, आइए! – चूतिया कहीं का! सदा तो तुम छोड़कर जबान से दूसरा शब्द कुछ नहीं निकलता! आज वह आया कहीं का बड़ा पञ्च बनकर। क्या ना 'जी हजूर', 'आप' कहता है, निर्लज्ज कहीं का!"

"भाइग क्या कह रहा था कि दो-तीन दलों की लड़ाई होगी अब की बार!"

"क्यों जी, लड़ेंगे क्या? हो-हल्ला एक होगा। वृन्दा नायक इस गाड़ी से उस मोटर गाड़ी में दौड़-धूप करेंगे। वैसे ही उस साल धूँ-धाँ होकर एक दिन पाला चलेगा। अन्त में नायक जी अपने घर बनाने का जो काम दो साल हुए अधूरा रखे हैं, भोटों का काम पूरा होते न होते उसे पूरा कर डालेंगे। यही तो हुआ सार-मर्म और बाकी बातों को कौन पूछता है?"

'उठो जी, तुम्हारी तो वे ही सींग घोंप, शूल चुभोने वाली बातें कभी नहीं जायेंगी। ऐसे तुम्हारी तो उमर बीत चली, पर-निन्दा करते-करते। उसने घर किया, न किया, कैसे किया - उसमें तुम्हारा क्या?"

"ओहो, तुम तो यह कहने पर वह समझती हो। सच कहने में भी लो, निन्दा हो गई! तुम्हें तो कुछ न कहना ही अच्छा।"

दासजी वहाँ से उठकर बाहर वाले बरामदे में बैठ गए। यहाँ अच्छी हवा आ रही थी। वहीं गमछा बिछाकर लेट गए। बरामदा गोबर और लाल मिट्टी से लिप-पुत कर चमक रहा है।

सच है भई! कोई साला क्या करे, हमारा इससे क्या आता-जाता है। वृन्दा नायक घर खड़ा करे तो क्या, न करे तो क्या? क्यों किसी की बात में दो बातें कहकर पाँच आदमियों के बीच बेमान हों। छोड़ो! मगर कहें न तो क्या हुआ, उस वर्ष वृन्दा नायक ने कम किया? दुम्मी जोंक की तरह चिपट गया दोनों तरफ। भोट जिन के नाम से दिया जाएगा, वे तो आते नहीं, पता नहीं, मनाही-वनाही हो गई होगी। नहीं तो इतना हाथ-पाँव पड़े, जिस-तिस के हाथों कहलवाते, खुद नहीं

जाते! यहाँ जो आते हैं वह उनके सेवक हैं। उन्हें जिस साल जो पैसा देकर लगा देता है, वे उस के लिए लड़ जाएँगे। वे असाध्य को साध्य कर देंगे। बेताल की तरह देश-देशान्तर में फैल जाते हैं। शमी वृक्ष से प्रेत बुलाने की तरह यंत्र से सारी धरती को कँपा देंगे। उन्हें बहुत ही ऊँची-नीची विद्याएँ आती हैं। अभी हँसेंगे तो थोड़ी देर बाद रोयेंगे, नाचेंगे, गायेंगे। भूत लगे की तरह भाँति-भाँति से लोगों को बहलायेंगे। वे सब विद्याओं में पारंगम जो ठहरे। गप्पेड़ी तो इतने हैं कि क्या बतायें। कितने प्रकार की कितनी बातें कहकर लोगों का मुँह बन्द कर देंगे। ये लोग क्या सहज जन्तु हैं? वे यहाँ आकर पहुँचे कि उनके साथ जुटा वृन्दा नायक। सरकारी हाकिम आयेंगे, गाँव में भोट के लिए घर ठीक करेंगे, घास-फूस की छाया करेंगे। सब भार लेगा वृन्दा नायक। हाकिम भी साला उल्लू है, सारे पैसे उसके हाथ में दे देगा। अगली बार उनकी ट्रक फँस गई नदी में। गाँव के छोकरों के हाथों डालियाँ कटा कर नायक ने रेत पर डाली, बड़ी मुश्किल से वह उस पर चढ़कर आई। सुनते हैं उसके लिए नायक पैसा लाकर हजम कर गए। हाकिम आकर कहाँ ठहरेंगे? वृन्दा नायक जुगाड़ कर बैठा देगा। खायेंगे क्या उसकी चिन्ता नहीं – मछली की व्यवस्था कर, सब लाकर खुद रसोई में सब ठीक-ठाक कर देगा। केवटों ने गाँव के पोखर में जाल फेंककर मछली पकड़ी। एक जोड़ी गई नायक के घर। बाकी जोड़ी साहब लोगों ने पाँच रुपये में खरीदी। वहाँ कह दिया – "गरीब आदमी हैं हजूर! यह चीज यहाँ और कौन खाएगा, और ऐसा कौन माई का लाल है? जो इसे हजम करेगा? देख-विचार कर जो सरकार हिसाब कर दे देंगे। वह एक का आठ आना कह रहा है।" एक अफसर इसी बात पर कुछ कहते-कहते रुक गया, नायकजी समझ गए। "क्या हजूर छः आना। ठीक है। मैं उसे कह दूँगा। यह कोई सब दिन की बात है? कितना बड़ा भाग्य है। तब आप लोगों के दर्शन होते हैं।"... एक कहीं से छोकरे का जुगाड़ कर वहाँ चाय बनवाई। उसे थोड़ा बहुत घर पर खाने को देता। साहब काम करते होते तो बीच में ही खुसर-पुसर करते घुस आता वृन्दा नायक। झुककर पूछता – "हजूर क्या चाय लाऊँ?" उस दिन वह अफसर का बच्चा कम से कम चालीस बार उसमें से पीयेगा। धन्य ही कहेंगे उसे! वृन्दा नायक पहुँचायेगा, वह साला गटागट करेगा। अन्त में सब के सामने बाँध-बूँधकर उठने की बात! वृन्दा नायक गाँव के लोगों को वहाँ से पार कर, साहब के सामने, साहब के आगे हाजिर! मगर दलेई के बेटे ने भी छुप कर सब सुना है। वह कुलक्षणी बुढ़िया उसकी नानी होगी ना! वह जिस के घर जाएगी, पहले किवाड़ के सहारे सटा कर कान लगाएगी, तब जाकर घर में घुसेगी। जाते समय कान बाहर बरामदे में ही लगे होंगे। वह भी महा झगड़ालू जो ठहरी, जाएगी कहाँ? अर्जुन जैसे, फर्जन जैसे। यह छोकरा भी उसी बीज का है। घूम कर घर आकर सब सुन रहा था।

"सरकार का पैसा है, हुजूर चाहेंगे तो थैली खुली है। दो मुट्ठी डाल देंगे तो न अंक छूट जाएगा। गरीब का उद्धार हो जाता। मैं अपनी बात नहीं कहता। उसने साहब चाय की दुकान की थी, हुजूर की रसोई के लिए मछली लाया था, वह आकर क्या हुजूर के मुँह लगता? मैं तो उसी के लिए मांग रहा हूँ, बस साठ रुपये दे दो, हो जाएगा। उसका सतावन रुपया कुछ पैसे हो रहा था और मजूरी पाँच रुपये – वह तो खैर छोड़िए, मैं उसे कह दूँगा। हुजूर साठ रुपये देंगे तो वह ले

लेगा। रुपये निकाल कर साहब ने बढ़ा दिए।" नायक ने अन्दर वाली थैली में भर लिए। उस छोकरे ने सब देखा है। बस, दूसरे दिन तो आकर सबको कह दिया। उसे गाँव भर के लोगों ने काँव-काँव कर परेशान कर डाला। जिसके मुँह सुनो, उसी की बात। अन्त में लोक निन्दा के डर से रुपये दस गिनकर लक्ष्मी-नारायण के मन्दिर में चढ़ा कर आया, वह मक्खी चूस वृन्दा नायक ! मौका पड़े तो देवता और ब्राह्मण सब को निगल जाए। इतना होने पर भी वह अपनी आदत छोड़ सका है? फिर इस साल इसी बीच आकर वह घुस गया है। एक बार स्वाद जो पा गया है, अब क्या वह सहज ही छोड़ पाएगा? फिर वही सब होगा। घर-घर आकर कागज बाँटेगा वृन्दा नायक! उनमें होगा, पर सबके पीछे आकर कान में कहेगा - - "समझे दासं, तुम्हारी हमारी दाँत-कटी समझना। हम तो एक ही उमर के हैं। तुम्हारी जितनी गंजी हो रही है मेरी खोपड़ी भी उतनी है। आश्चर्य की बात है। ठीक बीच में दोनों कैसे गंजे हो गए। देखो तो सही। समझे दास, तुमने जो कहा, यार मेरा भी वही मत है। हमारी जोड़ी तो अविकल है। छोड़ो, उस बात को। क्या हमें पहले से मालूम नहीं? पर मैं न कहूँ तब तक किसी को हामी मत भरना। मैं अन्त में आकर कह दूँगा, अमुक में भोट डालो। जाकर डाल आना। मेरा अविश्वास करने की उमर अब तुम्हारी और है?... अरे हाँ, एक बात और, तुम्हें ही कह रहा हूँ। और किसी से कहा भी नहीं, समझे। ऐसे की तैसी। पहले-पहले चाहे कितना ही बड़ा आदमी हो, उसके नीचे पड़ ही जाएगा, तब तो पता चलेगा मानो बहुत गहरे पानी में है। कितने विश्वास से कह गया क्या कुछ। उसी तरह कहा है।" ये सब भी भयानक आदमी हैं। उन्हें अपने स्वार्थ के अलावा संसार में और कुछ नहीं दिखता। उन्हें दूर से ही नमस्कार करना ठीक होगा। वे लोग महामारक जात के हैं। तुम से काम है, तब तक तो लिज-लिजे बने रहेंगे। काम हुआ कि फिर आप कौन – वे कौन? अच्छा, उस बक्सा में भोट का कागज डालने के लिए तो इतने लोग यह नौटंकी खेलते हैं। पर जितने नियम करो, कुछ होता है? आगे से ही लोगों को पक्का कर लिया जाता है। इस छुपी हुई बक्सा में डालो तो क्या, उसमें डालो तो क्या? कौन उसमें वोट पाता है, पा लेते तो क्या होता है – यह बात कौन समझता है? – दो, गाँव वाले जिसमें कहते हैं, उसी में डाल दो। गाँववालों से अलग होकर चल सकेगा? रोज सुबह तो आमना-सामना होगा ही। जाने दो, कोई भोट पा जाए उससे फिर क्या होता है? हमारा तो खाना-कपड़ा सस्ता होने से रहा! दिन पर दिन जमाना जितना महंगा होता जा रहा है, साला! अब जीना भी मुश्किल! बाकी बच गया एक भोट, किसे दें? छोड़ो, जो भी हाथ आ गया उसे ही दे दो, फिर कई वर्षों के लिए इस जंजाल से पार हुए।

"क्या रे, तुम दोनों इस समय वहाँ क्या कर रहे थे?"

हाथ में हाथ डाले बट और जयी आ पहुँचे।

"उस कल में कितने गीत आ रहे थे, सौ सुन रहे थे।"

"अच्छा जाओ, वह भी एक किचर-पिचर पों-पौं कर रही थी। ये रसिक वहाँ खड़े थे दो घण्टे से। जा माँ को कहना सबके लिए भात परोस दे।"

# सर्वे सन्तु निरामया

"ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवस्तान उर्जे दधातन, महेरणाय चक्षसे।"

शाम धुँधला-सी रही है। दासजी बरामदे में बैठ संध्या करने का उपक्रम कर रहे हैं। भाइगा मंदिर की ओर ठाकुर जी के पूजन के लिए गया हुआ है। आज सारा दिन हुआ दासजी को अच्छा नहीं लगता। घर में दो-दो बीमार जब पड़े हों तो मन कैसे चैन से रहे?... यह लुगाई तो कभी रोग में पड़ने की बात ही नहीं थी। लगता है उस जयी के पास रह-रह कर ज्वर उसे भी जकड़ गया है। गाँव भर में बुखार ने किसी घर को छोड़ा नहीं। क्या करें?... इस तरह नाना दुश्चिंताओं में मन को समझाते हुए दासजी संध्या कर रहे हैं।

रास्ते पर मैली चादर ओढ़े हुए कोई लंबी साँस लेते हुए चला गया। दासजी उसे ठीक से पहचान ही नहीं पाए।

"कौन है?... ओः कितना सूना हो गया है सारा गाँव! इतनी जल्दी ही किवाड़-झरोखे बंद हो गए। गाँव में कहीं चिड़ी-काग की चीं-चां तक नहीं!

अचानक कुलक्षणा कुत्ता ऊपर मुँह कर कुछ ही दूरी पर रोते हुए आदमी की तरह भूँक उठा। दासजी का मन विचलित हो गया। फिर स्थिर होकर जाप शुरू किया – "ॐ आसन मंत्राय, मेरुपृष्ठ ऋषिः शीतलि छन्दः, श्री कूर्मो देवता, आसने विनियोगः।" ...

क्या करे कोई, मौसम भी बहुत खराब है! अब थोड़ा-सा बरस जाता तो सब शान्त हो जाता। बरसता नहीं कि मेघ हटता भी नहीं। चार बूँद अभी गिरा दी तो और थोड़ी देर बाद कुछ नहीं। खाली रूँधा-खुंदा-सा लगता है। बाहर टिपिर-टिपिर वर्षा गिर रही है। इसमें आदमी दवा-पानी लाए तो कैसे, क्या कुछ करे? ओ हो! जानकार आदमी साला संसार करेगा ही नहीं कभी! किया तो फिर जमीन पर नाक रगड़ते रहो. जितनी भी हेकड़ीवाला आदमी हो चाहे, घर-बार किया तो बस दो कौड़ी का हो गया। जा ससुरे, मैं उस बैकुण्ठिया के यहाँ नहीं जाता। धत् तेरे की, साला, उसके द्वार पर भीख पाने की तरह जाकर दो दिन खड़ा रहूँ? रोग क्या आया है उस पेटू बैकुण्ठिया का जोग पड़ा है। उसे देखो तो पैसा, उससे बात करने के भी पैसे लगते हैं! पहले अंटी में से निकाल कर रखो, फिर बात करो। क्या दो छोटी-मोटी गोलियाँ देगा कि नहीं, हजार अनुपान बतायेगा। चलो हटो, मैं न... हीं... जा... ऊँ... गा! "ॐ पृथ्वी त्वया धृता लोकान् देवित्वं विष्णुना धृता। त्वंच धारय मां देवि पवित्रमासनं कुरु।"

छोड़ो और अब होगा नहीं। ये सब शत्रु मुझे साथ लेंगे तब छोड़ेंगे। एक, अब एक के बाद फिर दो पड़ गए - सब खायेंगे, आदमी को। उनमें एक सुसरी का बड़ा हुआ था कि कहीं समय-बेसमय में पीछे खड़ा हो जाएगा - आदमी आस किए था - वह भी अपने बेटे-बहू को लेकर वहीं रह गया। ये लोग यहाँ बिलबिला रहे हैं। शरीर ठीक रहे तो आदमी साग-तरकारी से चला लेता था, रोग जो ठहरा महाकाल! पैसा कहाँ जो औषध खरीदें? अंत में वही होगा - जो टुकू की माँ कह

रही थी। वही पित्तल का टोकना लेकर पात्र बुड्ढे के पास रखने पर जो कुछ देगा। और क्या करें?

कुत्ता फिर वैसे ही भौंका! शायद बादल खूब झुक आए हैं। पानी टिपर-टिपर गिर रहा है। ठंडी हवा थोड़ी आई। दासजी आँख मींचे जाप कर रहे हैं। आँख खोल कर देखा – बट और टुकुआ नीचे वाले कमरे में गजर-गजर कर रहे थे। फिर भी लगता है मानो घर उन्हें दबा लेगा। इसी समय मुहल्ले के उस ओर से कोई लालटेन लेकर आता दिखाई दिया। तेज कदमों से चलता हुआ आकर दासजी के दरवाजे पर सीधा हो गया। सीधा नदी की ओर का रास्ता पकड़े था। उसे दासजी अचानक पहचान गए।

"कौन, गंधिया है रे? इतनी रात में कहाँ?"

"कौन? दासजी, आप हैं! महाराज क्या बताऊँ, पण्डित जी की स्त्री की तबियत बहत खराब है। आज खबर मिली कि सुबह से बैकुण्ठ कविराज वहाँ आकर ठहरे हैं। बोखले मिश्र उनके ससुर होते हैं? वे पाटपुर से आए हैं, यहाँ कुछ दिन रह जायेंगे। यह भी इस गाँव के लिए सौभाग्य की ही बात कहिए। उन्हें पहले से ही कहा था। मैं जा रहा हूँ बुलाने के लिए।"

"नीलकण्ठ पण्डित जी घर पर ही हैं तो?... हाँ, घर पर जरूर होंगे ही। अच्छा मैं भी तुम्हारे घर की ओर आ रहा हूँ। कविराज से कहूँगा कि लौटते समय इधर भी निगह कर जाते। पण्डित जी को कहूँगा तो वे जरा उसे कह देंगे। मैं खुद कह देता, पर ..."

"हाँ, महाराज, पण्डितजी कहें तो फिर उस बात के लिए वे ना नहीं करेंगे। यह तो सच है। अच्छा तो महाराज मैं चलता हूँ।"

दासजी चंचल मन से शीघ्र संध्या कर खड़े हो गए।

"ओहो, हरि ... नारायण ... सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्। अरे बट, बेटे डिबरी ऊपर वाले कमरे में लाना तो! तुम्हारी माँ सो रही है क्या?"

"नहीं, बापू, यह टुकुआ जिद कर रहा है कि माँ के पास सोऊँगा, फिर तो जयी जाग उठेगा।"

"ओह! उस छोकरे को तू जरा संभाल ले! अब कहाँ है वह टुकुआ? माँ के पास जाकर सो गया?"

दासजी तलघर में आ गए। दीवाल पर कील में एक छोटा-सा लैंप टंगा है। उसी के टिमटिमाते प्रकाश में जो खाट जुड़ी हुई पड़ी हैं। कितने दिन से खींची नहीं गई हैं। ढीली होकर कोथली की तरह नीचे की ओर झूल रही हैं। उन पर एक-एक मैली गूदड़ी। खाट के नीचे वाला घना अंधेरा लैंप तक चला गया है। घर भर में कैसे भी एक पुराने रोगी की गंध, घी, सूँठ, लहसुन की मिली जुली गंध, साथ में बुखार में पसीने पसीने की गंध। दासजी का मन और भी सिकुड़ गया। घर में घुसते न घुसते धप् से दीवार पर सामने अपनी ही छाया देख वे थम गए। गले में छपाक् से मानो कुछ अटक गया है. इसी समय बिल्ली उनके सामने ही देहरी पर कूदकर भाग गई। गले सानो कोई आग का उलझा हुआ टुकड़ा खिसक कर गिर पड़ा हो। दासजी ने साँस ले कर इतना ही कहा – "कुलक्षणी बिल्ली!"

टुकुआ माँ की गोद में जाकर झूठ-मूठ ही सो गया है। शायद टुकु की माँ को नींद आ गई थी। जयी भी सो गया है, मगर कुणार रहा है। दासजी ने थोड़ा झुककर पत्नी के कपाल पर हाथ धीरे से रखा और उठा लिया।

"ओह! अभी भी कितना तवे-सा जल रहा है, क्या करें, यह ज्वर तो बिलकुल उतरा ही नहीं।"

"इस बच्चे का कैसा है पता नहीं!" – उसके माथे पर हाथ रख कर तुरत उठा लिया। "ताँवे की तरह तप रहा है। चद्दर हटा कर देखो कैसे नंगा ही सोया है!"

चादर खींच कर जयी को उढ़ा दी।

"पैर तो उठाना जयी ... हूँ ... देखें इसे ही ओढ़ लो, पसीना आ जाएगा। ब...अ...स... ले अब सो जा!"

"अरे टुकुआ, आ बेटे अपन तो उस घर में सोयेंगे।... आ बेटे, ऐसे अनमने होते हैं कहीं? देख, रोना नहीं तुम्हारी माँ को ज्वर है ना।"

टुकुआ को समझा-बुझाकर ऊपरवाले कमरे में ले गए। वहाँ चटाई पर एक चादर और एक बिछाई है। टुकुआ को वहीं सुलाकर दासजी एक दोसड़ा शरीर पर डालकर लाठी हाथ में ले निकल पड़े। रोशनी नहीं। रास्ता टटोल-टटोल कर जाना होगा।

जाते-जाते कह गए – "बट, मैं जा रहा हूँ। भाइग भैया आए तो कह देना, पिताजी कविराज को बुलाने गए हैं। पण्डित के घर जाकर उसे बुला लाता हूँ।"

पण्डित के घर तो गया पैसा पाएगा इसलिए, हम उसकी आँखों में कहीं आएँगे? उतने ही पैसे देने पर भी हमें क्या वह भली-सी औषध देगा? आह! नहीं तो एक नारायण कविराज था! उसका का नाम लेते ही शरीर से रोग छोड़कर भाग जाएगा। कितनी कोमल बातें उसकी! सुनते ही रोगी का पेट भर जाएगा। आहा, पिता के समान आदमी मर गया। साक्षात् अश्विनीकुमार था - छूकर अपने हाथ से दूब के दो पत्ते भी दे देता तो रोग चला जाता। यह तो स्साला यमराज का सहोदर है – जिसे छू देगा उसकी बरस भर की परमायु एक दिन में घट जाएगी।... औंधे मुँह वाला - बात कहेगा तो ऐसे दबा-दबा कर। बात-बात में ततैया की तरह डंक मारता रहेगा। घड़ी भर में दस पान चाब जाएगा। दिन भर बकरी की तरह खाली पान चरता रहता है। पर जरा गुणी आदमी है, इसलिए सब के मन में उसके लिए कुछ सम्मान है।...

अच्छा पण्डित के घर में फिर बीमारी क्यों हुई? वे शरीर की पूरी साज संभाल रखते हैं!... अरे चलो जी, साज-संभाल क्या रखोगे इसकी? यह शरीर ही रोगों की खान है! उसकी कितनी भी चौकसी करोगे? पण्डिताइन वैसे बड़ी भली आदमिन है। हजार व्रत-उपवास करती होगी।... वह बेचारी भी पड़ गई खाट में? तब फिर हम अपनी और क्या करें?

अनायास दासजी थोड़े हँस पड़े।

' देखो, और भी कोई कष्ट पा रहा है यह जान कर मन में अजीब-सा एक आश्वासन-सा लगता है। पराया दुःख देख कर तो दुःखी होना चाहिए था, पर यह

तो और भी खुशी लगती है। क्योंकि गाँव में हमीं तो एक नहीं हैं, किसी को छूट नहीं मिली है। पैसे वालों के घर में भी बीमार हैं। इसमें तो ऐसा लगता है मानो अकेला कष्ट न पाकर सबके साथ मिलकर कष्ट पाए तो कैसे न कैसे वह कम हो जाता है। धन्य है रे मनुष्य की प्रकृति!!

लो, पण्डित के घर में तो रोशनी जल रही है। अंधेरे में नया घर कितना बड़ा दिख रहा है रे? इस घर के पीछे तो आदमी ने बहुत खर्च कर दिया लगता है।...

"गंधिया! ओ गंधिया!!"

– "कौन है?" कहते हुए पण्डित नीलकंठ त्रिपाठी बाहरवाले बरामदे में लालटेन लेकर निकल आए। उसे ऊँचे उठा कर पहले दासजी का चेहरा देखा।

– "क्यों दास, रात में इस मुहल्ले की तरफ किधर आ निकले?"

– "कहता हूँ, भई! ठहर जाओ! पहले ये बताओ कि कविराज ... वो बैकुण्ठ कविराज आए या नहीं यहाँ?"

"क्यों? वे अब तक आए नहीं हैं। आदमी गया है उन्हें ले आने के लिए। कहाँ, क्या हो गया? किस का शरीर पीड़ा में हैं?"

"कोई एक है? दो जनों को ज्वर है भई! इसकी माँ और उस बच्चे जयी को आज बारह दिन से ज्वर है। उन्हें घर ले जाकर दिखाने की सोचता हूँ ... पर कविराजजी के साथ मेरी वैसी जान-पहचान है नहीं। तुम जरा कह देते तो ठीक रहता!"

"कह देने में तो कोई बात नहीं, पर वे बहुत व्यस्त आदमी ठहरे। उन्हें सब के घर से बुलावा। अच्छा तो अब क्या हो गया? वे तो अपनी फीस पा जायें तो हुआ। मैं उन्हें कह दूँगा।"

"अच्छा, तुम्हारे घर पर भी वही ज्वर ही तो है?"

"हाँ, भई, क्या पूछते हो? मैं ने उन्हें हजार बार कहा होगा कि देखो यों इतने व्रत-उपवास करने से कोई स्वर्ग नहीं मिल जाएगा। शरीर के पीछे ही तो धर्म करोगे। जितना हो सके, करने में कोई आपत्ति नहीं। पर अति सर्वत्र वर्जयेत्। सूख-सूख कर अन्त में बीमार पड़ी है कि जरा-सी बुखार भी नहीं छूटती।... लो, कविराज ही आ गए, शायद!"

दासजी ने देखा आगे गंधिया लालटेन लेकर आ रहा है, और उसके पीछे एक मजबूत मुड़ी हुई छड़ी लिए बैकुण्ठ कविराज हैं।

नीलकंठ पण्डितजी संभ्रम से कविराजजी को ले गए अन्दर।

बैकुण्ठ कविराज ने लालटेन के प्रकाश में दासजी को पहचाना।

"क्यों दासजी, सब ठीक तो हैं!"

कुछ उत्तर पाने से पहले कविराजजी मगरमच्छ की आकृतिवाले कुण्डलों को हिलाते-हिलाते उस घर में घुस गए।

दासजी ने सोचा उनका भला-बुरा होने पर कविराज का क्या आता-जाता है? उनका ध्यान अनायास ही झूलते कुण्डल की ओर चला गया। अनेक असुविधाओं

के होते हुए भी कभी इस जोड़ी को कान से नहीं उतारा। पर उनके कुंडल पहनने से क्या होना-जाना है। समय जैसा आ गया है, इसे भी बेच-खा कर चलना पड़ेगा। अच्छा, देखा जाएगा, वह समय आया नहीं तो!

बाहर बरामदे में दासजी बैठे हैं। यह देख कर गंधिया ने अपनी लालटेन वहीं रख दी और अंदर चला गया। उसी प्रकाश में बूंद-बूंद कर वर्षा होती दिख रही थी। पण्डितजी के घर के सामने की बात छोड़ दें, तो बाकी चारों ओर घना अंधकार ही अंधकार। हवा का तो नाम भी नहीं। एक टक दासजी शून्य की ओर देख रहे हैं। मन घबराया-घबराया-सा अस्थिर हो रहा था। देर बाद पण्डित जी के नीचे वाले कमरे से आदमी की आवाज़ आई।... थोड़ा-सा चैन आ गया।

"अभी तो मैंने एक खुराक दी है। आधी रात उठकर एक खुराक और देनी होगी। और सूर्योदय से पहले एक और खुराक। सुबह आकर मैं देख जाऊँगा, फिर जो होगा करेंगे। मेरे साथ आपके इस आदमी को भेज दें। मैं उसके साथ थोड़ा घर का निकाला शहद भेज देता हूँ। उसमें मिलाकर दो गोली चटा दें।"

पण्डितजी, कविराजजी और गंधिया बाहर बरामदे में आए। दासजी जी उठ खड़े हुए। तब पण्डित जी ने कहा –

"महाराज, दासजी के घर भी दो रोगी हैं। जाते समय जरा कृपा कर दें, यही सोच दासजी जी बुलाने आए थे।" कविराजजी ने जूते पहनते-पहनते दासजी की ओर एक बार देखा। पण्डित जी ने फिर कहा – "आपकी ... जो फीस ... वे देंगे।"

"क्यों दासजी किसकी तबियत बिगड़ गई" थैले से पान मुँह में डाल लिया।

"छोटे लड़के जयी और उसकी माँ को आज दस-बारह दिन से बुखार है।"

"अच्छा, जाते समय घर रास्ते में ही पड़ेगा तो?"

"हाँ, महाराज!"

"अच्छा तो हम चलते हैं पण्डित जी! किसी बात की चिंता न करें। यह पित्त के आधिक्य से ज्वर सब को हो रहा है। भय की कोई बात नहीं।"

"महाराज! आपके हाथ में तो यश है।"

"चल, रे, क्या नाम है तेरा?"

"महाराज, गंधिया कहते हैं।" कह कर बेचारा दो कदम कूदकर लालटेन लिए आगे-आगे चला। रास्ते में एक शब्द भी बातचीत नहीं।

घर के दरवाजे पर पहुँच दासजी बोले –

"महाराज, यहीं।"

"अच्छा, अरे इस रास्ते तो लगता है हम गए थे।"

"हाँ, महाराज, इधर से ही तो हमलोग गए थे। और एक रास्ता है, उस बावरी बस्ती होकर, पर वह थोड़ा घुमावदार है।"

दासजी घर में जाकर देखते हैं तो अंदर धुँआं भरी है। कुछ भी नहीं सूझता।

"क्यों रे बट, भैया आए ?... ऐसी धुँआ क्यों की है रे?" भाइग आँख मलते-मलते आकर बरामदे में खड़ा हुआ।

"माँ को प्यास हुई तो सुबह का वह जो बालों पानी था, उसे गरम करने चूल्हा जला रहा था। घड़ी भर हो गई जितना फूँकता हूँ, खाली धुँआ हो रही है। जलता ही नहीं।"

इसी बीच दप् कर आग जल गई। उस धुँधलके में आग अस्पष्ट रोगी-सी लग रही थी। पीछे से सुन पड़ा ...

"क्यों दासजी, इस धुँवा में तो कुछ दिख ही नहीं रहा है, वे सब किस घर में हैं?"

दासजी चौंक से गए।

"महाराज, यही तलघर में हैं। पधारिए।"

और कुछ सोचने से पहले ही बीमार के कमरे में घुस गए। बहुत कुंठित मन से कविराज जी भी जा पहुँचे। बैठने के लिए स्टूल - रघु नया-नया काम पर लग गया था जब, तभी लाया था - उसे ही लाकर डाल दिया। कविराज जी ने बैठकर टुकू की माँ की नाड़ी कुछ समय तक देख कर धीरे से हाथ को रख दिया। लंबी साँस खींच कर बोले ... 'हूँ।'

"बेटे को देखें।" कहकर उठ गए।

जयी का हाथ तो इन कुछ दिनों में क्या से क्या हो गया। इस्स, खाली जैसे लकड़ी का जरा-सा टुकड़ा हो।

देख कर कविराज जी उठे। हाथ धोने का संकेत किया तो भाइग ने लेकर लोटे से पानी दिया।

राम कि कृष्ण कुछ कहे बिना ही कविराज जी सीधे बाहर जाकर बरामदे में खड़े हो गए।

दासजी को तब तक पोखर-पानी की हाजत हो आई। "क्या देखा महाराज!"

"दोनों को एक ही प्रकार का ज्वर है।... और यह ज्वर ठीक होना जरा कठिन है। जल्दी अच्छा नहीं होगा। सोचें नहीं कहता, मगर समय लगेगा।"

"तो, मैं अब क्या करूँ महाराज!" – दासजी का स्वर टूट रहा है, मन कमजोर हो आया।

"आज की रात तो किसी तरह जाने दो। कल सुबह मेरे पास आना, मैं दवा दे दूँगा। और ... अच्छा, तुम कल सुबह आना, तब देखेंगे।"

कविराज जी बाहर निकल आए। गंधिया रास्ता दिखाता चल रहा था।

दासजी एक शब्द भी नहीं कह पाए। कितनी देर बाद भाइग और बट में खुसर-पुसर हुई तब लंबी साँस खींच कर धीरे धीरे घर में घुसे। लगता था जैसे उनके पैर ढीले हो गए हैं।

"अजी, ओ, सुनते हैं" ... क्षीण स्वर में तलघर से आवाज आई।

तुरत दासजी के शरीर में हिम्मत आ गई। दो ही छलांग में टुकू की माँ के पास पहुँच गए। दोनों बच्चे भी उनके पास कट कर खड़े हो गए।

"क्यों, क्या कह रही हो? कैसा लगता है?"

"तुम क्यों इस तरह बैद-कविराज बुलाकर लाते हो? इन डाकुओं को क्यों पैसा देना? पैसा भी है कहाँ जो देंगे?... ऊहूँ, बेटे बट, पैर की अंगुली में मेरे बांइटा आ रहा है, जरा सीधी कर दे तो।"

तुरत भाइग और बट ने पैर पर हाथ लगा कर अंगुली सीधी कर दी। भाइग थोड़ा पैर दबा दे रहा था। बट खड़ा था।

"बूढ़ा डोकरा हो मेरे लाल, सौ साल की परमायु हो तुम्हारी !"

"क्यों, बारली पीने को बना रही थी, बच्चों ने चूल्हा जलाकर गरम कर दिया है, ला देता हूँ।"

दासजी ने लाकर एक कटोरे में बारली पानी लेकर जयी को दिया ...

"उठ तो बेटे, बैठ इसे पी ले, फिर सो जाना।"

जयी बुखार में बुरी तरह फाँय-फाँय कर रहा था। उठकर एक ही साँस में सारा पीकर थक कर खाट पर पड़ रहा। दो बार साँस लेकर बोला – "मैं माँ के पास सोऊँगा।"

"माँ तुम्हारे पास ही तो है दूसरी खाट पर! एक खाट पर जगह नहीं होगी, बेटे, वहीं सो रहो।"

टुकू की माँ ने बड़ी मुश्किल से करवट बदल कर उसकी ओर मुँहकर उसके शरीर पर हाथ रखा।

"मैं यहीं हूँ बेटे, तू सो जा।"

जयी खाट की ईस को ही माँ समझ कर हाथ डाल कर सो गया।

"यह लड़का तो! बिल्कुल बच्चेपन से ही माँ की गोद छोड़ी और इसके मन में अशान्ति पैदा हुई। इतना बड़ा हो गया, गोद मे सो गया तो कितना आनन्द है! पर वह टुकुआ क्या उसे पास फटकने देगा?"

"हाँ वह भी सच है। तू इस में से जरा ले, पी ले।"

"मुझे अभी प्यास नहीं है। यहाँ खाट पर रख दो। मन हुआ तो मैं ले कर पी लूँगी। इस बेला क्या पकाने को कह रहे थे। कुछ बनाया क्या?"

"हाँ, पका लेंगे। क्यों जल्दी क्या है? रात तो हुई भी नहीं। जा तो भाइग भात की हांडी चढ़ा। भात हो जायें तो उसी भूभल में तीन बैंगन भी भरतू के लिए डाल देना।"

"नहीं, आज चूल्हे में नहीं सेंका जाएगा। आज गुरुवार है। भात बनने पर उन्हीं में चीर-चीर कर डाल दो, सीझ जायेंगे।"

बाप-बेटे तीनों उस घर से चले आए। भाइग और बट बनाने में लग गए। दासजी ऊपरवाले बरामदे में स्थिर होकर बैठ गए।

उन्हें सब कुछ सपने की तरह लग रहा है। कल सुबह पैसे का मुँह देखे बिना कविराज औषध नहीं देगा। पात्र बुड्ढा उठकर दुकान खोलेगा, तब तक दिन के दोपहर हो जायेंगे। उसके पास टोकना रखने पर वह पता नहीं क्या देगा।

"साले ने क्या कहा – कि ज्वर ठीक होना मुश्किल है ... क्यों ठीक नहीं होगा? क्यों हम क्या गो-हत्यारे हैं? खाली बस पैसे खिसकाने से मतलब।"

"पानी कितना चढ़ा दूँ, पिताजी!"

"दे दो उस बड़े सिलवर के टोपिया में से दो टोपिया पानी चढ़ा दो।"

"अरे नहीं, उसमें एक टोपिया बहुत है। दो टोपिया पानी में तो आठ आदमियों का भात हो जाएगा।... ओहो! बाप और बेटा!... ये लोग तो कुछ भी नहीं, आदमी ऐसे रोग में पड़ा तब न इतनी बात!" टुकू की माँ उस घर से घबड़ा कर सुनाते हुए बोली।

"अच्छा, तुम्हारी माँ जो कह रही है उतना ही दे दो।... तुन्हें बारली दे दूँ थोड़ी-सी, पिओगी?"

"पहले तुम खाना-पीना तो कर लो। मैं पिर पी नहीं लूँगी क्या!"

"अच्छा! अरे बट, एक लोटा पानी तो लाना, पीने के लिए।"

पानी पीकर जरा चैन-सा लगा।

"जो होगा, होगा। इसमें चिंता करने से और अधिक फिर क्या हो जाएगा?

पर यह बच्चा बहुत मायूस हो गया है। प्राण आकर गले में अटक गए हैं।

तब भी इस अलखने में दया नहीं, उन हाड़-चाम को सिझा रहा है!"

दो मुट्ठी भात होते-होते रात दो घड़ी से ऊपर! उन में से मांड और निकल न सका। उसे कम करने को फिर हांडी बैठाई। जो भात बना था एक ही बार में बस खीर हो गया। उसमें से किसी प्रकार थोड़ा-बहुत निगल कर भाइग, बट वगैरह टुकुआ को लेकर ऊपर वाले कमरे में सो रहे। दासजी उसी नीचे वाले बरामदे में एक चटाई डालकर सोने के पहले कमरे के अंदर गए।

"अरे हो ... क्यों, सो गई क्या? यह बारली का पानी तो पी लो।"

टुकू की माँ खाली कुणार रही थी।

ताप की सीमा नहीं रही। हाथ रखा तक नहीं जाता।

"तुम वैसी ही सोयी रहो, मैं मुँह में सीप भर-भर कर देता हूँ। देखें, आँ-आँ करे तो ... हाँ, और दो घूँट रह गया। ब...अ...स... अब लेट जाओ। उढ़ा दूँ?... नहीं?... अच्छा, वैसे ही सोई रहो।" आँख मींचे ही टुकू की माँ ने कहा – "तुम भी जाओ, घड़ी-दो-घड़ी बिसराम कर लो ... ऊँह ... तुम्हारा शरीर भी शरीर सरीखा नहीं है।... इस तरफ न सोओ ... ऊँ...ह... गए?"

"अच्छा, मैं जाता हूँ, तू सो जाएगी तो! इस तरह घबराना नहीं, सिर दर्द करेगा। चुपचाप सो जाना। अच्छा!"

दासजी आकर आँगन में खड़े हो गए। मेघ वैसे ही घिर रहे हैं। पर बरसते एक बूँद भी नहीं। इस घर में दो रोगी! उस घर में बच्चे। बड़ा अस्थिर लग रहा है। मन में नाना चिंताएँ घिर रही हैं। थोड़ा असहाय-सा भी लग रहा है। दबोच लिए जाने जैसा छिप-छिपा भय भी लग रहा है।

"अच्छा प्रभु, सब आप की इच्छा!... राखे हरि मारे कौन, मारे हरि राखे कौन! भाग्य में जो होगा, उस पर आदमी का क्या बस?"

बरामदे में चटाई पड़ी थी। वहीं दीवार के सहारे टिक कर कुछ देर बैठे, अंत में पलकें भारी हो आईं। दासजी जी वहीं सो गए।

तब रात पता नहीं कितनी हुई होगी, दासजी अचानक बड़बड़ाने लगे। नींद टूट गई। हड़बड़ाकर उठ बैठे। सारा शरीर पसीने से तर बतर। दौड़ कर घर में घुसे। छाती जोरों से धड़क रही थी। पाप मन को छू रहा था। पहले जाकर टटोलने की तरह माँ-बेटे दोनों को हाथ फेर कर देखा। स्थिर होकर खड़े हो गए, लंबी साँस ली। "ओहो! जान में जान आई। क्या लीला लग रही है, हरि, क्या माया फैलाई है! लक्ष्मी-नरसिंह, लक्ष्मी नरसिंह" – कहते-कहते आकर धप् से चटाई पर ढेर होकर गिर पड़े।

"ओः कितना बुरा सपना था! भैंस की कटमटाती दो आँखें कैसी दिख रही थी! और वह आदमी ... काला कलूटा टिमटिमाते हुए दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया। पिंडलियों तक बाल टकरा रहे थे। सारा शरीर पसीने से भरा था ... सिर पर कितना बड़ा लट्ठ था, खंभे जैसा लट्ठ लिए। हे प्रभु! विपद भंजन हरि ... इस बार रक्षा तुम्हीं करना। प्रभु, हे जनार्दन! सिर की लाज रखना! उठकर एक साँस में लोटा भर पानी पी गए। अब और नींद कहाँ आँखों में! रह-रहकर वही, भयावना सपना साकार हो जाता। रह-रह कर दासजी कहते ... "लक्ष्मी-नरसिंह, लक्ष्मी-नरसिंह!"

# सुबरण सीता बोले कैसे?

"पिताजी, आप ऐसे करेंगे तो कैसे काम चलेगा" ... कह रोते-रोते दासजी के पास घुटनों के बल बैठ गया रघुनाथ।

दासजी मानो मूक बधिर हों ... उसी तरह बैठे हैं दीवार का सहारा लेकर। आँखों पर पलक नहीं पड़ी। दो हफ्ते हो गए रातों का जागरण करते-करते आँखे अंदर धँस गई।... इतनी हो, हा, रोना-पीटना हो रहा है, उनके कान में मानो यह कुछ नहीं पड़ता।

भोर का तड़का। दो दिन हुए कुटुंब लेकर रघुनाथ आया है। बैकुण्ठ कविराज भी रात भर जगे थे। अंत में जब नाड़ी और नहीं मिली, रघु को आहिस्ते से कह कर चले गए। बकरियों के बाड़े में आग लगने की तरह बड़े-बूढ़े-बच्चे एक साथ हू-हू कर रो उठे। पर दासजी जहाँ थक कर खड़े हो गए थे, दीवार का सहारा लेकर वहीं आस्ते-आस्ते टूट कर गिर से पड़े। आँख में बूँद भर भी आँसू नहीं!

रघु सब को लेकर समझाएगा क्या, खुद ढेर-सा रोकर आया, देखा तो पिताजी इस तरह मूक हो बैठे हैं! जाकर हिलाया, बुलाया ... पर वे उसी तरह बैठे हैं। कितने देर बाद आँखों में दृष्टि आई। देखा, खाट के चारों ओर घेर कर सब सिर पीट-पीट कर रो रहे हैं। उन्हें कैसे-कैसे लग रहा है।... देखा तो सिर्फ टुकुआ नींद से उठ आ खाट के किनारे चुप चाप खड़ा हो गया है। चादर के नीचे से उसकी माँ का एक हाथ दिख रहा है। उसकी अंगुली पकड़ कर मसल रहा है, खड़ा है, आँखों से चार बूँद आँसू बहकर गालों पर सूख गए हैं।

बाँध टूट गया। पेट के नीचे से उमड़-घुमड़कर एक कोह उठ रहा है. हड़बड़ाकर उठे, टुकुआ को झाँप कर फिर बैठ गए। निःशब्द, हाड़ चीरती हुई आँसू की धार बहती जा रही है। सावन की धार की तरह आँसू। होंठ काँप रहे हैं। नासा फूल-फूल जाती है। दोनों आँखें बंद किए बैठे हैं। बाकी उनका सारा अस्तित्व ही जैसे खौल कर तरल हो रहा है। बहा जा रहा है।

रुलाई के प्रथम ज्वार में जो असहाय जंतु की तरह बिलखना चल रहा था, वह तनिक कम हुआ तो आ गई एक सजगता।

रघुनाथ और उसकी स्त्री बच्चों को वहाँ से ऊपर वाले कमरे में ले गए। भाइग भी थोड़ा बहुत समझ गया। हथेली के पीछे की ओर आँसू पोंछ कर वह टुकुआ को गोद में उठा दूसरे कमरे में ले गया। दासजी पहले की तरह घुटनों में सिर दिए बैठे हैं। पीठ का पंजर रह-रह कर फूल उठता है। रघू में इतना साहस नहीं हुआ कि कुछ पुकारे। पुकारने पर भी वह क्या समझा सकेगा?

जो कुछ हो गया, सुननेवाला आदमी असंभव ही कहेगा। एक बार में ही माँ-बेटे एक साथ चलने की तरह मर गए! किसी के मुँह से 'आह' निकले बिना न रही।... वह बच्चा जयी तो शायद मरने के लिए ही मुँह ढँक रहा था! एक ही रट लगा दी, "मैं माँ के पास जाऊँगा ... मैं माँ के पास सोऊँगा, माँ के पास सोऊँगा।" उसकी अंतरात्मा से यही आवाज आ रही थी। सबने मना किया, उसे माँ के पास ले जाकर सुलाने के लिए। अंतिम आशा पूरी हो जाएगी, डोर टूट जाएगी।... अंत में

वहीं हुआ, उसे जैसे ही लाकर माँ के पास सुलाया गया, एक हाथ एक पैर माँ पर डाल दिया ... मानो निश्चिंत होकर सोने का उपक्रम कर रहा हो। तब तक उसकी माँ का शरीर भी ठंडा होता जा रहा था। इसी समय, पता नहीं कहाँ थी वह काल निद्रा, सब को जरा ऊँघ आ गई। चौंक कर उठ कर देखते हैं तो सब समाप्त! अचंभा लगेगा आदमी को, कैसे दोनों एक-दूसरे को बुलाकर चल दिए।

रात अभी और भी बाकी है। रघुनाथ के दो बच्चे सो गए। भाभी की गोद में छुपकर टुकुआ ऊँघ रहा है। थक गया है, शायद थोडी देर में सो जाएगा। बट ऊपर वाले बरामदे में चुपचाप बैठा है, घबराया हुआ-सा एक ओर टकटकी लगाए देख रहा है. भाइग बाहरवाले बरामदे से आकर बोला – "भैया, पाटपुर वाले काका के घर से आए हैं।"

पाँच-छः जने आए हैं। आँगन में सीधे अंदर आ गए। रघु घर में आकर देखता है तो वे धीरे-धीरे खुसुर-पुसुर हो रहे हैं। उन्हें देखते ही वह सब कुछ समझ गया। और संभाल न सका, भो-भो कर रो पड़ा। उन्होंने चारों ओर से थप-थपाकर समझाया। उनमें से जो बुजुर्ग थे उन्होंने कहा, "अरे रघु, यह समय धीरज खोने का नहीं, बिलंब करने से नहीं चलेगा। चल, लग जाओ काम में, नहीं तो लाश बासी हो जाएगी।"

दासजी को किसी ने आग के लक्कड़ से झकझोर दिया हो!! वे भुस् से खड़े हो गए। सिर में झन् झन् करता चक्कर आ गया। वे दीवार को पकड़कर संभल गए, नहीं तो कटे पेड़ की तरह गिर जाते।

"पकड़, पकड़, रघु दूसरी बाँह पकड़!" कह कर उनमें से एक दासजी को पकड़ बाहर आँगन में ले आया। घर से गोल स्टूल लाकर उस पर उन्हें बैठाया। मुँह और सिर पर पानी छींट कर थोड़ा पानी पिला दिया। दासजी आँख मींचे जरा बैठ गए। इसके बाद टूटे हुए, बुझे-से स्वर में बोले ...

"मैं जानता हूँ ... वह मुझे ठगेगी।... ठग ही तो गई अंत में ... अच्छा!"

दीर्घ साँस खींच कुछ देर चुप रहने के बाद बोले – "लो बेटे रघु, अब सारा काम करो। उसके लिए तो इतने में ही सब पूरा हो गया।" आँखों से अश्रुधार निरंतर बहती जा रही थी।

इसके बाद चली दौड़-धूप। हलदी पीसी जाएगी, नया वस्त्र आएगा, नई हांडी, घड़ा, अलता, सिंदूर। एक जाएगा बाजे वाले को बुलाने, एक खील लाएगा और एक बाँधेगा अर्थी।

उन्हीं के बीच इसी दौड़-धूप में बात पड़ी, एक अर्थी या दो? अंत में स्थिर हुआ कि चौड़ी-सी एक ही में काम चल जाएगा।

इस धू-धा में दासजी प्रायः निष्क्रिय से बैठे रहे। पिछली कितनी बातें चित्रपट-सी एक-एक कर आ रही थी, जा रही थी। एक-एक कर गिनती करने की तरह सुख-दुःख के दिन आँखों के आगे तैरते जा रहे थे। धारा निरंतर हिचकियों के बीच बहती चली जा रही थी। उस दिन संकल्प के पैसों से एक मट्ठे की साड़ी टुकू की माँ के लिए लाए हैं दासजी। "नहीं जी, हम इतनी महँगी कैसे खरीदेंगे। पंद्रह रुपये होने पर मेरे बच्चों का पेट ना भरेगा। अरे, पहनो तो सही, देखें कैसे लगती हैं।" टुकू की माँ हँस देती है। हँसी दिख जाती है।

तो क्या यह सब झूठा है? टिमटिमाती आँखो से दासजी फिर देखते है। टुकू की माँ की हँसी और दिखाई नहीं पड़ती। दिखते, शाम के धुँधलके में इधर-उधर तेजी से आते-जाते नंगे पाँव।

नाः, नाः, टुकू की माँ की सारी बातें अब समाप्त हो गई हैं। वे जो कुछ देख रहे थे, सब कुछ सपने की तरह समाप्त हो गया है। पर यही तो सत्य है, जीवन से मृत्यु अधिक सत्य है!!

दासजी बैठे न रह सके। तब तक पौ फटने को हो आई थी। एक हलदी पीस रहा है। वे उठ काठड़ा लेकर घर के अंदर गए।

कपड़ा हटाकर टुकू की माँ के सारे शरीर में हाथ भर भर कर हलदी लेप दी। नाक पर होते हुए मोटी-मोटी आँसू की बूँद टप-टप गिर रही थी।

पता नहीं क्या सोच कर जयी को भी हलदी लेप दी। कोई कुछ नहीं कह रहा है। समझ रहे हैं, कोई कहेगा भी और क्या!

काठड़ा में और हल्दी नहीं है। बार-बार सिर से पोंछ कर जयी की शीतल छाती पर लेप देते हैं।

अंत में किसी ने कहा – "अच्छा अब अलता लगा दें।"

कुछ बोले बिना ही दासजी ने अलते की कटोरी उसके हाथ से लेकर टुकू की माँ के पैरों को धो डाला। जो बचा उसे पैरों के पास सींच दिया।

ढेर-सा सिंदूर कपाल पर लगा दिया। सिंदूर का चूरा भौंहों तक बिखर आया।

उत्तर-दक्षिण कर अर्थी आँगन में रखी गई।

"लो, उठाओ, पकड़ो अब।" कह हलदी, अलता और सिंदूर में जूबे हाथ लगाकर दासजी खड़े रहे। बस टिमटिमाते से देखते रहे।

कांधिया आकर बच्चों को उठा ले गए।

सब कुछ जैसे यंत्रचालित की तरह हो रहा है. घट-बाँधा गया। खील लाई गई। बाजे वाले आ गए। अब उठाने की बात। दासजी को व्याकुलता-सी लगने लगी। अर्थी के उठते समय उन्होंने छटपटाते से आकर बाँस को पकड़ लिया। पर अर्थी के जाने में कोई असुविधा नहीं। खाली उनका काँपता हुआ हाथ कुछ टटोलता-सा हिल रहा है. पेट में उसी तरह उमड़-घुमड़-सी मची है।

"जा, लक्ष्मी साआन्तानी!... घर सूना कर चली जा रही है?... जा ... जा!"

"अंचल छाड़ महाबाहू, ए जन्मे भेट नाहिं आउ!" बहुत धीरे-धीरे सिसकते-से दासजी मन ही मन कह रहे हैं। किसी ने उनकी बात सुनी नहीं कि कोई समझा नहीं।

रघू का बड़ा बेटा उठा है। एक लंबी-सी मशाल जला कर सावधानी से पकड़ा दी गई है। वह शहर में रह कर सयाना हो गया है। बड़ी सरधा से आगे-आगे चल रहा है। रघू खील और कौड़ी मिलाकर बिखेरता चल रहा है। भाइग टुकुआ का हाथ पकड़ धीरे-धीरे चल रहा है। थोड़ा आगे बट है।

माल भाई नीरव चल रहे हैं। सबके आगे बाजे वाले और सबके पीछे दासजी हैं।

सुबह की ठंडी हवा में रघु का लड़का चौंक कर देख रहा है। उसे लगता है यह सब जैसे एक जुलूस है। पता नहीं क्यों वह हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाता है। वह मशाल चर-चर कर जलती है तो उसे हँसी आ जाती है।

अड़ोस-पड़ोस की औरतें किवाड़ों की फॉक से देख रही हैं। इसे वह, उसे यह, आपस में पूछा-ताछी कर रही हैं – आहा, च...च..., कह रही हैं। बीच-बीच में दासजी के कानों तक आवाज पहुँचती है ...

"लक्ष्मी, घर की लिछमी, देखो जी, कैसे हँसती-खेलती बाजे-गाजे के साथ जा रही है!"

आँखों से आँसू सूख आए हैं। दासजी यंत्र की तरह चल रहे हैं। वह जयी भी मान कर चला गया! कितना कहा, "बापू, मुझे एक, जैसा ये लड़के ले रहे हैं, कपड़े का थैला बनवा दो ... मैं उसमें किताब ले जाऊँगा।" मैं, चाण्डाल, तो आज करुँगा, कल करा दूँगा कह-कह कर उसे ठगता रहा। अंत में वह चला गया।... कितना गुणवन्त था वह लड़का। कुल में भगीरथ जन्मा था। इतना ऊँचा कपाल किसी का न था। चला ही गया!! वह क्या इस गरीब के घर में हीन हो कर रहता?

तेरी माँ ने कितनी तरफ से खर्च में काट-छाँट कर गुड़-चावल खरीदा था। इस साल बैसाख में जैसे-तैसे उपवीत संस्कार करा देती।... हाय रे! बेटे, रहते तो पानी तो देते ... मैं फिर यह सब देखने को रहा!!

चादर के नीचे टुकू की माँ के पैरों के पास खरगोश के कानों की तरह दो छोटे-छोटे पैर हिल-डुल रहे थे।

हड्डियों को काटती हुई अश्रुधार फिर बह निकली। सामने और अर्थी नहीं दिख रही। खाली धुन में आगे चले जा रहे हैं दासजी।...

पीछे मुड़कर रघु ने भाइग से कहा – "तू बच्चों को लेकर यहीं से लौट जा।" भाइग ने टुकुआ का हाथ पकड़ा। बट ने रघु के लड़के का हाथ पकड़ा। धुँधले-धुँधले से कुछ अबूझ चेहरे दासजी के पास से पीछे छूटते गए।

टुकुआ पता नहीं क्या समझ रहा था, मुड़-मुड़कर देख रहा था। उसकी छलछलाई आँखों से जैसे उसकी आत्मा रो रही है। चार पाँच कदम भी आगे गया नहीं होगा कि "माँ... माँ... कह कर बिफर-बिफर कर रोने लगा। निरीह, असहाय, मातृहीन उस पिछौड़े की पैनी तीखी रुलाई!!!

"माँ... माँ... आँ... आँ!!!... ऊँ... ऊँ...!!!

आकाश भी क्षणभर के लिए फाँक-फाँक हो गया, दरार पड़ गई। पैरों तले से धरती भाप बनकर पता नहीं कहाँ तक धँस गई।

इतना बड़ा पत्थर का ढेला पेट से फूल दासजी के गले में आकर अटक गया। और हिम्मत नहीं संभालने की, फट पड़ेंगे ... धँस जाएँगे अब की बार!!! पर पत्थर की तरह खड़े हैं दासजी।

कँपकँपाते शीत में पिल्ले की तरह टुकुआ भाइग के कंधे पर सिर रखे थर-थर काँप रहा है, और उसी तरह दहाड़ें मार रहा है। भाइग दूर हो जाता है। झर-झर कर पत्थर पिघला कर आँसू बह रहे हैं।

प्राणवायु कंठ तक आकर नीचे चली गई।

क्या कुछ थोड़े-बहुत पुट-पुट शब्द दासजी के नमकीन होठों पर ही आकर विलीन हो गए। अगर सुनाई पड़ता तो "और अब खोजने पर कहाँ पाओगे, तेरे लिए आज से ही माँ पुकारना बस हो गया।" मुँह मोड़ देखा - अर्थी आगे चल रही है।

अधजली खाट, टूटी-फूटी दो-चार मिट्टी की हांडिया, फटा-चिरा छाज, चार-छः अधजले लकड़े।

मिट्टी के तटबंध पर बूढ़ा पुराना आम का पेड़, आधा मर सूख गया है।

प्रधान के ईंटों के भट्टे में और ईंट नहीं हैं। खाली टूटी, फूटी ईंट, बांबी, राख और नागफनी का दूर तक फैला काँटेदार वन है।

इधर अन्त्येष्टि क्रिया एक के बाद एक चल रही है, दासजी स्वप्न देखने की तरह मानो तैरते-तैरते सब कुछ कर रहे हैं। जले काठ-सी स्याह हो गई है। इस्स, आदमी ऐसा अलखना दिखता है! शरीर में कांति जरा भी नहीं। मुँह पर लंबे खूँटे सी दाढ़ी। दोनों आँख अंदर धँस गई हैं। दोहरा आदमी है इसलिए जरा दिखते हैं, नहीं तो दूह लिया गया हो, उस तरह चेहरा-मोहरा उतर गया है।

'हरे राम, कृष्ण' कुछ शब्द भी नहीं कह रहे हैं। वे कोई कुछ पूछता तो उसकी ओर आँखों से खाली-खाली देखते भर रह जाते हैं, कुछ नहीं समझ पाते। बीच-बीच में उनका ध्यान टूट जाता है।

"ठहरो, ठहरो, इस बच्चे को भी माँ के पास ही लगा कर सुला दें।"

पल भर के लिए दासजी की नींद टूट गई। इतने में ही वे बात का अर्थ समझ गए हैं। फिर उन्हें लगता - सपने में तैर रहे हैं ..."

"अरे, हाथ से सुदशा व्रत का वह डोरा खोल दो, जल जाएगा।" अपलक आँखों से दासजी फिर देख रहे हैं। क्षण भर के बाद फिर वैसे ही वे दृष्टिहीन, काँच के गोल टुकड़े जैसी निर्जीव आँखों से शून्य की ओर ताकने लग जाते हैं।

चिता हू-हू कर जल रही है। दिन में आग भी कितनी श्रीहीन, कैसी कुलक्षणी लग रही है।

सबके शरीर से पसीना चू रहा है। रघू दहल गया है। वह भी तो यही कल का बच्चा है। यह सब काम कहाँ, वह कहाँ?

माल भाई जो काका सरीखे होंगे, आकर रघू से बोले, "अरे रघू, भैया को ले कर अब घर की ओर निकल जा। हम हैं ही। सब काम निबटा कर नहा-धो कर आ रहे हैं। उनके मन में कोह भरा है। देख न, कैसे मूक होकर बैठे हैं! उन्हें घर ले जाकर कुछ कड़ुआ खिला देना, थोड़ा समझा देना, जा!"

"पिताजी, चलिए, घर चलें!" - उसने आशा की थी दासजी पहले की तरह उसकी ओर देखेंगे।

पर आग की ओर से आँखें हटा कर उसे देख दासजी ने स्पष्ट आवाज में उत्तर दिया, "तू जा, मैं यहीं जरा बैठा हूँ। सब काम हो जाने दो, मैं आता ही हूँ!... मेरी तंबाकू की डिबिया कहाँ है बेटे?" अंटी में खोजी तो नहीं मिली।

पुरिया दासजी का रिश्ते में भाई होगा। वह आश्चर्यचकित होकर सुन रहा है। आकर अपना तंबाकू का डब्बा दासजी की ओर बढ़ा दिया।

दासजी हथेली पर तंबाखू रगड़ रहे हैं, पुरिया ने कहा, "भाग्य में जो रेख लिखी है विधाता ने, उसे तो भोगना ही पड़ेगा! क्या हम क्या और कोई!। उसने दिया था, अब वह ले गया ... इस पर मन में दुःख करने से क्या होगा? कितनी भागवान थी, बेटे, बहू, स्वामी के हाथों में गई है। और उस बच्चे के भाग्य में न था जीना, संसार भोग की उसकी पूर्णता यहीं तक थी, वह चला गया।"

दासजी कुछ नहीं बोले। पर चेहरा किंचित हँसता-सा लगा। तंबाखू मुँह में डाल सिर हिलाते हुए सम्मति दे दी कि वे भी कुछ इसी तरह समझते हैं।

आँधी-तूफान के बाद टूटी-फूटी डालों के ढेर के नीचे धरती जैसे रोती-बिलखती-सी पड़ी रहे, पत्तों पर तेज धूप झरती हो, लेकिन भीतर ही भीतर टूटी-गीली डालों से दूध झरता है, टप्-टप् पानी गिरता है, बीच-बीच में गिलहरी दौड़ जाती है, चिड़िया फुर-फुर उड़कर फिर आ बैठती है – उसी तरह दासजी का चेहरा, खाली-खाली सुनसान, टूटा-फूटा उजाड़, थका-हारा!!

"तो पिताजी मैं घर चल रहा हूँ!"

"जाओगे? अच्छा, चल, अरे, तू अब तक गया नहीं, जा जा। मैं यहीं जरा बैठता हूँ।"

चिता बुझती जा रही है। उसी एक लय से दासजी देखते जा रहे हैं। दो छोटे-बड़े ढाँचे धीरे-धीरे जल कर राख होते जा रहे हैं। पर दासजी कैसे खोते जा रहे की तरह उन्हें देख रहे हैं।

"भैया, समय बीत गया। चलो, उठो, पीछे फिर आकर हाड़ शीतला देंगे। चलो, इस पर इतना और विचार न करो। तुम तो जानकार आदमी ठहरे। उठो-उठो, चलो।"

गहरी साँस लेकर दासजी उठ खड़े हुए।

सारे रास्ते उनके चारों ओर पता नहीं क्या कुछ गजर-मजर हो रहे थे। पर दासजी ने मुँह नहीं खोला। उसी तरह आकर घर पहुँचे।

बाहर दरवाजे के सामने घड़ा बाँधा गया था। बरामदे में रघू खड़ा है, श्रीहीन कुलक्षणा, अनाथ बच्चा। उसके मुँह की ओर देखा भी नहीं जाता।

पर दासजी को इन सबका अर्थ आधा ही समझ में आता है। जीवन की सब चीजों पर जैसे चिता की छाया पड़कर वे सब धुँधली, मैली दिख रही हैं। अब कुछ भी होने पर दासजी का क्या आता-जाता है! टुकू की माँ और जयी के साथ संसार का बहुत बड़ा हिस्सा भी जलकर राख हो गया है। जो चले गए उनके प्रति कोह नहीं उठता, जो रह गए उनके लिए मोह भी ढीला हो गया है।

संस्कार से लौटे हुए माल भाई को रघू नई जनेऊ, तेल आदि दे रहा है, वे नहाने जायेंगे। कुछ बातचीत चल रही होगी उनमें, बीच में दासजी के कान में भनक पड़ गई। रघू कहता है, नहीं, अब यहाँ क्यों रहेंगे? भाइग के लिए भी वहीं एक काम जुगा दिया है, सब मदनपुर चले जायेंगे। और ... इस घर को संभालने की बात, कुछ व्यवस्था कर देंगे।"

दासजी ने सुना।... बहुत दूर से जैसे सब देख रहे हैं, सुन रहे हैं। कुछ नहीं बोले। बरामदे में दीवार के सहारे टिककर बैठ गए ...

"अरे, बट, मेरा तंबाखू का डिब्बा तो ला देना रे!"

"बट तो सोया है, बापू!" कहकर भाइग उस घर से एक डिब्बा ले आया।

"भैया ने बहुत खोजा, मिला नहीं। माँ का यह गुण्डी का डिब्बा है, लेंगे?"

ढेर-सा कोह गले तक भर आया। बहुत मुश्किल से दासजी ने संभाला। आँखें छलछला आईं। सिर नीचा कर लिया।

चुपचाप भाइग के मुँह की ओर देखे बिना ही हाथ आगे बढ़ा दिया।

# तेरी माया

गाँव छोड़ कर मदनपुर आए महीना भर हो गया। पहली बार दासजी को घर से बाहर निकलने का उपक्रम करते देख रघू ने खुश हो कर पूछा –

"क्यों बापू, मंदिर की ओर जा रहे हैं?"

रघू जहाँ रहता है, वह घर छोटा होने पर भी पिछवाड़े में उसके एक कुँवा है। रोज सुबह दासजी वहीं दो बाल्टी निकाल कर नहा लेते हैं और कमरे में बैठकर प्रायः पूजा में ही लगे रहते हैं। बातें करने की तो उनकी वैसे भी आदत नहीं, अब तो वह और भी कम हो गई। हानि हो या लाभ जुबान नहीं खोलते।

उनका मन बदलने के लिए रघू ने एकाध बार उन्हें बाजार भी भेजा, पर उससे पता नहीं क्यों दासजी को और अधिक कष्ट ही हुआ। लेकिन मन के कष्ट से दासजी कभी भी सुबक कर रोए नहीं सिर्फ उदासीन ही लगते। एक बात को दो बार कहे बिना उनका ध्यान उधर जाता ही नहीं। बात कहते हैं तो उस में कोई रुचि नहीं। जरा भी ममता नहीं। पता नहीं किस लोक में हैं कि घड़ी भर बाद उत्तर देते हैं, खाना दिया तो ठीक है, न दिया तो ठीक। धुली धोती मिली जैसी, मैली मिली वह भी वैसी। किसी बात में उनका मन जाता ही नहीं। बीच-बीच में टुकुआ खेलता रहता तो उसे बहुत देर तक देखते रहते। वह बच्चा रहता गली के बच्चों के साथ। घर में भी भैया-भाभी का स्नेह पाकर उन्हीं में रम गया है। खेल-कूद के बहाने कभी वहाँ से भाग जाता। जाते-जाते कैसे भी तो सहमी-सहमी आँखों से दासजी की ओर देखता। पर दासजी एक लय से वह जहाँ खेल रहा था, वहीं देखते काठ बने खड़े रहते। कितनी देर बाद, चौंकते-से चारों ओर खोए-खोए देखते हुए चुपके से दीर्घ साँस लेकर चले जाते।

उस दिन सुबह नहा-धोकर धोया हुआ लाल गमछा बाँध थाली में पिछवाड़े से लाए दो-चार धतूरे एवं कनेर के फूल रखकर धवलेश्वर के पास जाने की सोच रहे थे, रघू ने आकर पूछा-

"क्यों बापू, मंदिर की ओर जाना है!"

दासजी जी ने बेटे के मुँह की ओर देखा। किंचित हँस कर बोले – 'हाँ!'

वह हँसी कितनी भी सूखी हो, पर रघू को बहुत अच्छी लगी। "बापू, आते-आते धूप हो जाएगी, मेरा छाता लेते जाना।"

रघू तब तक नहाया न था। छाता लाकर दीवार के सहारे टिका दिया।

दासजी ने चुपचाप उसे काँख में रखा, बाँये हाथ में पूजा की थाली, दाहिने में लाठी लेकर बाहर निकल पड़े। उनके पीछे-पीछे रघू, उसके पीछे उसकी पत्नी, भाइग और सारे बच्चे चुपचाप बाहरवाले दरवाजे पर आकर खड़े-खड़े देख रहे थे।

थोड़ा सिर झुकाए-से दासजी चले जा रहे थे। भोर की धूप पीतल की थाली पर सोने की तरह चमक रही थी। दासजी दूर हटते जा रहे हैं।

रघू ने मुड़कर देखा, उसके पीछे सब खड़े हैं। वह सब कुछ समझ गया। पर थोड़ा मुरब्बीपना दिखाता-सा कहने लगा, "क्या कर रहे हो, सब लोग वहाँ? जाओ,

घर में अंदर जाओ।"

पर स्वयं दातुन चबाता हुआ बाहर क्यों चला आया?

दासजी कदम पर कदम डालते चले जा रहे हैं। शायद ठीक रास्ते पर जा रहे हैं। शायद यही सोच रहे हैं ...

"भेंट हो तो शतपथी बाबू को पूछूँगा, यह सब क्या है? तो फिर क्या संसार यही है?... वह तो चली गई। उस के लिए जो कष्ट था, वह भी गया ना नहीं! तब जीवन से सार निचुड़ गया-सा क्यों लगता है!... कितने ही लोगों का तो फिर ऐसे होता है! बाकी जो रह जाते हैं उन्हें ले कर फिर कैसे संभालते हैं? फिर दुबारा उसमें घुसने को उनका मन होता है? मन हो या न हो, काम तो करना ही पड़ेगा! भाइग को ना नौकरी मिल गई, और दो तो फिर आदमी होंगे! और कुछ न हो इन बिना माँ के बच्चों को गोद की निवाई देकर बचा सका तो कुछ पुण्य होगा। इन्हें भी तो फिर मैंने आत्मा से पैदा किया है। पर क्यों, मन ब्रिलकुल होता ही नहीं? बीच-बीच में उस टुकुआ को देखने पर मन मथ नहीं जाता सो बात नहीं। पर सड़ जाने की तरह बच्चे को पास लेने को मन होता ही नहीं, क्यों? देखता हूँ, उसका भी मन नहीं है मेरे पास आने के लिए। वह बहू की ओर खिंच गया है। अपना हो कर कोई रहा ही नहीं। सिर्फ हाँय-फाँय-सी लग रही है। लक्ष्य नाम की चीज कुछ रही ही नहीं। और शायद ज्यादा दिन नहीं हैं। जीवन जब सार शून्य-थोथा होकर रह जाता है, और क्या जीया जा सकता है या जीने पर भी उस का क्या मूल्य? इस तरह अचानक विपद घिर आएगी, मैंने कभी जाना था। कसने पर दया नहीं, हरि! जो एक वक्त खाकर दूसरे वक्त भूखा रहता है, जो जीवन के बोझ तले झुक गया है, हार गया है, उस पर कोड़े बरसाने में तुम्हें जरा भी दया नहीं? तुम्हारे पेट में इतनी माया, इतना कपट है? यह तो मैं नहीं जानता ...

मंदिर पास आ गया। सुबह-सुबह दो-चार आदमी उधर से आ-जा रहे थे। दासजी ने देखा पाटमाली लंगड़ाता-लंगड़ाता पोखर की ओर आ रहा है। पुरानी बातें सब याद आ गईं। बिलकुल परिचित जगह, परिचित आदमी भी। स्मृति ने भोर के ठंडे पवन की तरह मन को जरा चंगा कर दिया।

क्या पाटमाली को अब दिखता नहीं? वह तो क्या दासजी को बिलकुल पहचान ही नहीं रहा !... या अनजान बन रहा है?

गाल पर हाथ रख पाटमाली ने कहा – "जी, दासजी, महाराज, आप! क्या हो गए हैं आप? पहले वाली देह की छाया भी नहीं रही! आहा! कैसे आदमी हैं, देखने पर पहचान में ही नहीं आते!"

दासजी थोड़ा हँस कर खड़े रह गए। अगर कहते तो निकलता – "छोड़ो पाटमाली, झर जाने पर क्या ऐसा हो गया! और कौन-सी उम्र भी ढेर है, जो शरीर की देखभाल की जाए! यही पानी का बुदबुदा तो, अभी है और अभी नहीं रहेगा।"

"मैं ने सब सुना है, महाराज! आप के प्राणों को छू गया। ऐसे लोगों को भी दुर्योग आता है! मैं महाराज, परसों-तरसों बजार से सुनकर आया तो यहाँ दोपहर में किसी से कह रहा था कि तभी मंदिर से शतपथी महाशय आ पहुँचे। उनके कानों में क्या पड़ा, पता नहीं, मुझे मुड़कर देखने लगे।... मैं समझ गया और उन्हें सारी बातें कही। आप का नाम सुनकर थोड़े विचारों में खो गए-से लगे। इसके बाद बिना

कुछ कहे वहाँ से चले गए। आप मंदिर की ओर जा रहे हैं? जाइये। वे धवलेश्वर क्या आप का कष्ट नहीं सुनते होंगे? जाइए, वहीं मन खोल कर सब कह देंगे तो मन थोड़ा हल्का लगेगा।"

दासजी मुँह फिराकर मंदिर की ओर बढ़ गए।

मंदिर में इतना सुनसान हो गया है कि कुछ कहा न जाए। सिर्फ महादेव जी पर अभिषेक पात्र (जलहरी) से चांदी के तार की तरह जल की धारा सिक-सिक हो कर झर रही है।

दासजी भी संभ्रम से अंदर गए।

दासजी ने देखा उनकी उस पुरानी जगह पर शतपथी महाशय पद्मासन लगाए ध्यान में बैठे हैं। वैसी ही पहले की तरह ताम्रवर्णी देह। दासजी के मन में भय, भक्ति, भरोसा एकत्र हो, जाग उठे। धीरे-से छाता, लकड़ी और थाली रख कर वृषभ के पीछे, लंबे होकर पसर गए। मंदिर जैसा है, साँस लेने पर भी शब्द सुनाई पड़ेगा। दासजी को भय है कहीं शतपथी जी के ध्यान में बाधा न पड़ जाय। उठकर धीरे से शतपथी को धीरे-से धोक देते हैं, उनके सिर पर शतपथी जी का हाथ आ गया। सिर उठाकर उनके सामने चुपचाप बैठ गए।

शतपथी महाशय मंद मंद मुस्का रहे थे। उस मुस्कान में सिर्फ स्नेही नहीं, कैसी एक दया, करुणा भी घुली हई थी दासजी के लिए। दासजी के पास कहने के लिए कुछ नहीं, उनके लिए भी कुछ अनजाना नहीं। नीरव एक-दूसरे के मन की बात जान गए। कुछ समय बाद उठकर जलहरी के पास हाथ के संकेत से दासजी को बुलाया।

दासजी ने धतूरे के फूल शिवलिंग पर चढ़ाए और शतपथीजी के संकेत पर उनके छोटे अभिषेक पात्र को निकाल उसमें जल भर उसे भी उठाकर पकड़ा ...

"अ...उ...म्... नमः... शि...वा...आ...य..."

मंदिर की पथरीली दीवार में गूँज-गूँजकर यह मंत्र दासजी के प्राणों तक छू रहा था। दासजी ने कब तन्मय हो कर अत्यंत विह्वल अवस्था में शतपथी के साथ स्वर मिला दिया है, वे स्वयं भी नहीं जानते।

इसी प्रकार देर तक दासजी के प्राणों से शीतल मंत्र का यह अभिषेक झरता ही रहा।

नान्दी के ऊपर घंटी किसी ने खींच कर बजा दी। हल्ला-गुल्ला, हो-हो होने लगा। बड़ी-बड़ी पीतल की थालियाँ पत्थर पर झनझन के साथ रखी गई। देखा तो मारवाड़ी के यहाँ से आ पहुँचे हैं, उनके पीछे पाटमाली खड़ा है। ढेर सारे केले, दो बाल्टी दूध लेकर तीन मोटी-सी मारवाड़ी औरतें आ पहुँची हैं। उनके पीछे मोटा-सा पेट निकाले मूँछदार मारवाड़ी खड़ा है। एकदम खीझ उठने की बात।

पर शतपथी जी के मुँह से लग रहा था जैसे वे कह रहे हैं, "अरे वाः ! इतनी सुबह ये भगवान के मंदिर को निकले हैं! खूब, बहुत खूब!"

कच्ची नींद में उठने पर बच्चा जरा चिड़चिड़ा लगता है, दासजी कुछ उसी तरह की विरक्ति का अनुभव कर रहे हैं।

दोनों वहाँ से उठकर चले आए। पण्डित जी अपने आगे से बिछे आसन पर बैठ गए। दासजी भी घड़ी भर स्थिर होकर बैठे रहे। उधर बस उनका हो-हल्ला चल रहा था, बार-बार घंटी बज उठती। पीतल की थाली पत्थर पर सर-सर होती घिसी जा रही थी। दूध की बाल्टी धूम-धड़ाके से पटकी जा रही थी।

कुछ समय के बाद दासजी की इच्छा हुई कि कोई उनके मन को छूती ऐसी दो-चार बातें कहता। कोई जरा आहा! कह कर सांत्वना ही देता! आश्चर्य! इतने दिन हुए एक बार भी उन्हें ऐसा नहीं लगा।

"काफी कष्ट हो गया?" शतपथीजी के हास में मानों यह प्रश्न था। दासजी उनके मुँह की ओर देख रहे थे, पर बिना कुछ कहे दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

शतपथी जी का हाथ उनकी पीठ पर मानो कह रहा है – "अच्छा! ऐसा तो जीवन में होगा ही। नहीं तो जीवन की दर कम नहीं हो जाएगी? अर्थ नहीं बदल जाएगा?"

दासजी ने उनकी ओर फिर कर देखा। उनकी आँखों में निरीह प्रश्न था – "अच्छा, मेरे ही भाग्य में यह सब घटना लिखी थी?"

समझते हुए से पण्डितजी ने आकाश की ओर अंगुली उठाकर दिखा दी।

"ईश्वर पर काफी रोष आता होगा, अविश्वास भी थोड़ा-बहुत हो रहा होगा, क्यों?"

दासजी सिर्फ असहाय-से देख रहे थे।

"हाँ, वही! रोष क्यों न करूँगा? मैं जिस पर भरोसा करता आया हूँ, वही अंत में ऐसा दगा दे गया! मैंने तो किसी की कोई क्षति नहीं की!"

यहाँ पण्डित जी ने मुँह खोल कर कहा –

"हम अपने दोषों से खुद कष्ट पाते हैं। अज्ञान में पड़कर हमें मूल्यबोध तो कुछ रहता नहीं। अतः जड़-चेतन को अपना कर कई बंधन बना कर बैठते हैं. वह टूटने पर पीड़ा होती है। ममता हमारी लता है हम उसे घेरे रहते हैं। उस पर कहीं चोट पड़ी तो मन में रक्तस्राव होता है। जिसका संपर्क जितना शिथिल है, वह उतना ही निर्लिप्त, अतः उतना ही तापमुक्त है।"

दासजी ने इसमें आधा-अधूरा कुछ समझा – पर ठीक समझा। कहा – "हम तो निर्माया योगी पुरुष नहीं, जो हमें बंधन नहीं लगेंगे। सो बात नहीं महाराज! इसे मानें तो देव, न मानें तो पत्थर। मेरा मन फट गया। अब किसी विषय में श्रद्धा नहीं होती। मर गई। विश्वास भी टूट गया।"

"विश्वास बिलकुल नहीं टूटा। नहीं तो यहाँ क्यों आते? श्रद्धा के मरने की बात भी ठीक नहीं। वह शायद मोह ढीला हो रहा है। यह तो शुभ लक्षण है! और हमें न बाँधे तो साधना आएगी कहाँ से? साधना का संघर्ष न होने पर आत्मा का बल आएगा नहीं! नदी जरूर समुद्र में जाकर मिलेगी, पर उसके लिए इतनी बाधा विघ्न क्यों? उसकी शक्ति परीक्षा के लिए एक अवसर देना चाहिए तो! विपद तो आदमी की योग्यता की परीक्षा करती है! क्यों मन को ये बातें लगती नहीं?"

"समझता हूँ, पर यह महाज्ञान - गहन बातें हैं। एक बात सोचता हूँ आप को पूछने के लिए। आप ज्ञानी आदमी हैं। आप पर भरोसा है इसलिए कहता हूँ। वह

तो अपने रास्ते गई, बाकी जो रह गए उनके साथ मेरा क्या संपर्क? मैं अपने उस छोटे से बच्चे को पास लेकर पुचकारने की चेष्टा करता हूँ, पर वह मेरी पकड़ाई में आता ही नहीं। लगता है, मेरे साथ उसका कुछ संपर्क नहीं। उसके भले-बुरे की भी चिंता नहीं। यह मेरे मन की बात आपको कह देता हूँ ... बहुत विपरीत लगता है, आप गुरु तुल्य आदमी हैं, मुझे बुद्धि बताइये!"

"समझा, अंदर का घाव अभी भी हरा है। कितनों का घाव वही कच्ची अवस्था में जिसे पास पाता है, उसे पकड़ लेता है और किसी का अधिक समय लेता है। पर दूर रह कर यदि किसी का मन अपने आप खोल बंध गया और वह झर पड़ा – झड़ेगा जरूर – इसके बाद जो कोमल-कोमल नरम-सा मन होगा, आहा उसकी तुलना नहीं!! उसके पास कितना ही घिसो, उसे फिर कुछ भी बाँध नहीं सकता। पर पवन छूते ही वह जान जाएगा, सहज करुणा से भर जाएगा।"

किंचित हँस शतपथी महाशय ने दासजी का हाथ पकड़ लिया। दासजी ने बात पूरी नहीं समझी पर उसका आवेश, उसका चमत्कार मोटा-मोटी रूप में पकड़ सके हैं।

थोड़े चिंतन के बाद श्रद्धा सहित पण्डित जी ने कहा – "जी, एक बार चार-धाम कर आते तो कैसा होता?"

"ओः यह है, तो आप इस ओर कह रहे हैं, समझा।" थोड़ा हँस कर कहा -- "हमारे वैसे भाग कहाँ! महाराज, हम तो आप के समान हो नहीं सकते! हमारे तो इस बेला चूल्हा लगता है तो दूसरी बेला नहीं।"

"अरे! ऐसे टेढ़े रास्ते से बात क्यों पकड़ते हो भाई, मैंने क्या कुछ गलत कहा!"

"सो बात बिलकुल नहीं। मैं कहता था कि आश्विन पूनम के दो दिन पहले, सोचा है, साल भर के लिए मैं तीर्थवास करूँगा। इच्छा थी अकेला जाता। पर चलो, हम दोनों चलें। एक के खर्च से दो क्या नहीं जा सकते? चला लेने की बात! देखो, आज से ठीक आठ दिन रहे। विचार कर लो, मन मजबूत कर लो। चलो, पकड़ो यह महाजनों का रास्ता। मुझे स्पष्ट दिख रहा है कि इस में उसकी सदिच्छा है।"

दासजी विह्वल हो कर देख रहे थे। यह सब क्या घट रहा है? यह कल-सा लगता है – गोविन्द द्वादशी को यहाँ से पुरी भी वे नहीं जा सके थे। क्या ना, छू कर, उन्हें उठा कर, चारों तीर्थ घुमा लाएगा!!

जलहरी के किवाड़ खुलने पर बाढ़ की तरह प्रकाश घुस जाता है, उनके अंदर उसी तरह भर गया। वे डबडबाई आँखों से सिर्फ शून्य की ओर देख रहे हैं।

इसी बीच पण्डितजी वहाँ से उठ कर अंदर चले गए। "अच्छा, मुझे पास खींचने के लिए इतना खेल खेला? पर ऐसे निर्दय बन जड़-मूल तोड़ कर क्या दया दिखाई जाती है? अच्छा, वह तो तुम्हारी पुरानी आदत है। जिसे स्वीकार करेगा उसकी पहले सारी रस्सियाँ तोड़ डालेगा। पर क्या टुकू की माँ तुझे काँटा लग रही थी? आह! बेचारी देखने के लिए कितनी उतावली होती! नन्हा मन उसका कितना खुश होता ... छोड़ो! वह तो रास्ता छोड़ चली गई अनायत्त में! क्या करें? जितने

दिन साथ रहने का योग था – रास्ते की इस लीक पर वह और उस पर मैं चला। दो-राहे पर वह चली गई खिंच कर! और मैं पड़ गया छटपटाता इस जंजाल में। ओ! यह डोर तोड़ना कितना दुःखदायी! प्रभु, खींचते हो यदि वह रेशमी डोर लगाकर तो एक ही बार में खींच लो न। मेरी सब ओर से [illegible] ढीली हो चुकी। अब छोड़ सारी आशा, किया हरि का भरोसा।"

दासजी दीवार के सहारे टिककर बैठे थे। आँसू बहकर उनके गले से चंदन पुंछ गया। जल्दबाजी में उन्होंने अंगोछे से मुँह पोंछा और आँख खोल कर देखा, पण्डित जी नहीं हैं। मंदिर के अंदर सुनसान! मारवाड़ी कब के जा चुके थे। उठकर देखा, पण्डितजी जलहरी के पास एक लय से ध्यान में बैठे हैं।

दासजी चलकर मंदिर के बाहर आए। अच्छी, मन उत्फुल्ल करनेवाली हल्की-हल्की हवा बह रही थी। पोखर में ढेरों कमल के फूल खिले थे। दासजी को खूब हल्का-हल्का लग रहा था। जान पड़ता था जैसे उनके भीतर बहुत-कुछ उल्टा-पुल्टा होता जा रहा है, बहुत कुछ बदल रहा है। अनजाना कोह एक [illegible] टी में उठते धुँवे की छोटी-सी कुण्डली-सा उठता आ रहा था। पर मन में ढेर सारा प्रकाश, वातास में पतंग की तरह छन-छन हो रहा था। जरा-सा खिंचाव पाते ही धरती छोड़ उड़ जाएगा।

दासजी की पलकें गीली थी, चेहरा रुलाई-रुलाई-सा।

पहाड़ के काले पैने पत्थर को सिर्फ अन्यमनस्क होकर बीच-बीच में सहला देते।

# पंगु लंघयते गिरिम्

रेलगाड़ी चली जा रही है।

एक डब्बे में डेढ़-सौ आदमियों की भीड़, और उसमें उनकी तीन-सौ तरह की बातें। यहाँ हर आदमी दूसरे को जबाब देता है, "अबे, हम भी टिकट कटा कर बैठे हैं। हमें सरका कर बैठे हैं, यह क्या तुम्हारे बाप की गाड़ी है! काफी भीड़ ... बहुत धक्कम-पेल। बीड़ी का धुँवा, पसीना, पैखाना, गंदे कपड़ों की गंध मिलकर डब्बे को दबाये थी। ऐसे कई डब्बे लिए, कान मूंदे रेल चली जा रही है।

पर दासजी का ध्यान किसी तरह टूटता ही नहीं। वे स्टेशन पर शतपथी जी के साथ गाड़ी में चढ़कर जहाँ बैठ गए हैं, ठीक वहीं, उसी अवस्था में, तीन घंटे होने को आए, बैठे हैं। उनके सामने शतपथी महाशय बैठे हैं, पर दासजी उन्हें बिलकुल देख ही नहीं पाते। चेहरा खोया-खोया-सा लगता है। शतपथी उन्हें देखते हैं पर कुछ न कह कर संजय की तरह बैठे हैं। दासजी के अंदर कुरुक्षेत्र युद्ध लगा हुआ है, भयंकर रक्तपात चल रहा है।

अपार रण नदी पाण्डवों को पार करा रहे हैं उनके कर्णधार हरि! यह उनकी पुरानी आदत है ... शतपथी ठीक समझ रहे हैं क्या हो रहा है, और क्या होगा। अतः सिर्फ नीरव दृष्टा के रूप में कौतूहली होकर प्रतीक्षा कर रहे हैं।

रात के करीब दो बज रहे होंगे।

इस बीच कितने स्टेशन गए होंगे। कितने लोग चढ़े, कितने उतरे होंगे। डब्बे में सब ऊँघ रहे हैं। इस पर वह और उस पर वह लदे ऊँघ रहे हैं। बड़े शान्त और निरीह असहाय बच्चे हैं ये सब। सब एक ही राज्य के - सब एक दिशा के यात्री। बक्सा, पेटी, पिटारा, इन सबके साथ फिर बाल-ब्रच्चे, माँ भी ... सब ऊँघ रहे हैं।

दासजी को धीरे-धीरे चेत हो आया।

पर कुछ कह नहीं पाते। मानो बहुत थक गए हैं। शतपथी जी को लगा दासजी खूब चेष्टा कर रहे हैं घटना को समझने की। हक्के-बक्के होकर इधर-उधर देखने के बाद उनकी आँखें पड़ गई शतपथीजी पर। जरा गला खंखार कर बाहर के अंधकार की ओर देखा और कुछ पूछने-पूछने जैसे हो गए। शतपथीजी ने कहा -

"काफी भीड़ है डब्बे में। प्रायः ऐसा ही होता है। कलकत्ते में गाड़ी बदलने पर भीड़ और अधिक होगी।" पर देखा वे बात पकड़ नहीं रहे हैं। अतः चुप हो गए।

दासजी ने जरा सकुचाते हुए पूछा – "मैं कह रहा था कि स्टेशन पर रघू तो आया था। उसकी बहू भी आई थी क्या? मुझे कैसे लगता है कि बहू भी जरूर आई थी।"

"नहीं तो, मुझे तो याद नहीं आता उसे कहीं देखा हो। अच्छा, चित्तरंजन की पत्नी की बात तो नहीं कह रहे?... वह मेरे बड़े बेटे की बहू है।... काफी तकरार कर रही थी ज्यादा पैसों वाले डब्बे में बिठाने के लिए।... वह ठीक समझेगी,... पर समझने के लिए उसे थोड़ा समय चाहिए। इसके अलावा तो कहाँ ... कोई ...

आया न था।... ओ, समझा, बात यह हुई कि रघू ने एक कागज के ठूंगे में लगाए हुए पान भर कर बढ़ा दिए और तभी मेरे कानों में आवाज पड़ी थी।... वे आपके बेटे की बहू ने लगा कर भेजे थे, क्यों है ना?"

"आपने ठीक कहा। मुझे लगा जैसे बहू आई थी।" थैले में से एक पान निकाल कर चबा लिया। शतपथीजी तो पान खाते नहीं, तंबाखू के डब्बे के पास फटकते नहीं।... ओः बड़ी मुश्किल बात है। इसमें से जरा-सा खा लिया तो क्या सब कुछ नष्ट हो जाएगा! पर आदमी के लिए सब द्वार रुँध गए। जितना कहो छूएगा नहीं। सुनेगा ही नहीं, क्या करोगे तुम?

भोर का तड़का हो आया। "सुबह ही सुबह कलकत्ता पहुँच जायेंगे। दूसरी गाड़ी के लिए काफी समय मिलेगा। जरा दक्षिणेश्वर जाकर दर्शन कर आयेंगे। वहाँ पहुँचने पर देखेंगे। विचार तब करेंगे।"

दासजी उन्हें शुरू से देखते आ रहे हैं एक लय से। अंत में कहने लगे – "क्या बताऊँ पण्डितजी, वह टुकुआ मुझे बहुत हैरान कर रहा है ... अंत में वह बच्चा मुझसे क्यों इस तरह डरा?"

शतपथीजी समझ गए ... तो दासजी कुछ सुन नहीं रहे थे। वे मन ही मन जरा मुस्काए। फिर दासजी कह रहे हैं – "कल दिनभर वह कैसे भी तो टिमटिमा कर देखता रहा। अपनी भावज का पल्ला बिलकुल छोड़ता ही न था।... मेरा मन सबसे निकल आया है, पर मुझे लगता है, मैं और उनमें से किसी को देख नहीं पाऊँगा।"

"अरे! फिर यह कैसी बात! चलेंगे, नाना पुण्यक्षेत्रों में एक वर्ष बिता कर चले आयेंगे। इसके बाद आकर आप उसी घर में रहना। पर जानोगे मोह न होगा, संसार कितना निर्मल! देखो, प्रभु की कैसी इच्छा! वे आपको धो-धा कर ठीक लाकर छोड़ देंगे।"

"अच्छा, किसी बात में तो मैं कुछ कहता नहीं। छोड़ कर सारी आसा, लो किया हरि का भरोसा।... अब उसकी जो इच्छा। वह सोचेगा, खूब चारों दिशाओं में घुमा कर समुद्र में ले डुबोऊँगा। डुबोयेगा। इस पर मेरा क्या वश है!... नहीं तो महाराज, मैं कौन और ये चारों तीर्थ कौन! आप फिर क्यों मुझ पर इतनी दया दिखाते?"

"दासजी, बात असल में यही है। उसकी इच्छा न हो तो पेड़ का पत्ता भी नहीं हिल सकता।"

एक स्टेशन पर आकर ट्रेन रुकी। बाहर दौड़-धूप, हल्ला-गुल्ला। अंत में दस-पंद्रह चढ़े एक साथ उसी डब्बे में। भीतर तिल धरने को भी जगह नहीं। काफी हल्ले-गुल्ले के बीच भी किसी की सुने बिना ही सब अंदर घुस आए। कोई किसी को धकिया रहा है, कोई बक्सा रख उस पर बैठ गया। उन में से एक अगले स्टोशन पर उतरने वाला था शायद, उसे सबसे ज्यादा हड़बड़ी – वह ऊपर की बर्थ पर चढ़ उस पर लेट गया।

"अद्‌भुत्!" उन्हें दासजी देखते और सोच रहे थे। कितने राज्यों के कितने लोग इसमें एकत्र बैठ गए हैं। धक्कमपेल कर जाना ही होगा, बिना गए तो चलेगा ही नहीं। कौन किस काम से जा रहा होगा। सब सोच कर जा रहे होंगे कि कौन कितने दिन बाद अपने-अपने घर लौटेगा।"

चित्र देखने की तरह देख रहे है -

उस आदमी का बीड़ी खींचता मुँह, सोने की मूंदरी वाला हाथ। उसके पास खुली देह वाला वह बच्चा।... इः, वह बूढ़ा कितना भयंकर दिख रहा है!... सो जाने पर सभी बूढ़े इस तरह अशकुने दिखते होंगे। मुँह खुल गया है, अंदर एक भी दाँत नहीं।...

ओः कितने आदमी हैं इस डब्बे में!

उधर से मुँह फेर कर बाहर की ओर देखने लगे। तारे साफ-सुथरे दिख रहे थे। सप्तर्षि मंडल के तीन ओर चमकते हुए दिख रहे थे।

शतपथीजी भी उन्हीं लोगों को देख रहे थे। उन लोगों की असंख्य इच्छाओं का विचार कर विस्मय से सिहर जाते। ये लोग मोह-जाल में पड़कर किस आवेग से, पर किस असहाय भाव से अपना-अपना रास्ता पकड़े चल रहे हैं। किस की कितनी गठरियाँ हैं, कितने दायित्व हैं। जरा अंदर झाँकें तो क्या समझ नहीं जाते? पर उसके लिए इन्हें समय कहाँ? उन्हें तो पीछे से धक्का मारता है, आगे से खींचता है। वह अपने उद्देश्य के लिए इन सबको निमित्त के रूप में व्यवहार करता है। अद्भुत कर्मा इन कोटि-कोटि मूर्त्ति परिग्रहों को बनाकर इस जड़-चेतन की महायात्रा में वह क्या करता है, सिर्फ उसे ही मालूम है!!... "हे सहस्रशीर्षा पुरुष, सहस्राक्ष, सहस्रपात् तुम्हें नमस्कार!!!"

हाथ जोड़ आँख मूँद कर शतपथी महाशय बैठ गए। इसी तरह काफी समय कट गया।

अकस्मात् डब्बे में कोई ऊँचे स्वर में गा उठा -

"मणिमा सुणिमा हेउ गरिब डाक,
निरक्ष जनकु रख पंकजमुख हे!"

"अरे, चुप कर! कोई नींद की बेहोशी में कह उठा - आधी रात में ही आकर बड़बड़ाने लगा!"

"सुबह हो गई, बाबू! मुँह पर भगवान का नाम लें। अन्धे पर दया करें। पुण्य होगा। वे बलियार भुज आपके सकल कार्य सिद्ध करेंगे।

दयासागर काहिंकि, मो वेळकु गल शुखि
जाणिलि मो कर्म बांक नुहे सळख हे!
मणिमा शुणिमा हेउ गरिब डाक!"

दासजी ने हड़बड़ी में अंटी में जो कुछ पैसे थे, निकाल कर अंधे की हथेली पर रख दिए।

"प्रभु आपका मंगल करेंगे, बाबू!"

देखादेखी और कुछ लोगों ने भी उसके हाथ में कुछ पैसे दिए। वह सबकी मंगल कामना करता आगे बढ़ता गया। शतपथीजी ने भी अंत में अठन्नी उसके हाथ में थमा दी। वह शब्द से पहचान गया। जरा टटोलकर कृतकृत्य हो उसने बहुत कुछ कहा।

डब्बे के बाकी लोगों में कुछ समझे, कुछ आश्चर्य में भरकर शतपथीजी की ओर देखने लगे। पर वे निस्पृह बैठे थे। दासजी तो सहज ही कुछ समझने की स्थिति में न थे, वे भी चुप हो बैठे रहे।

रेल चल रही थी।

दासजी ने कुछ समय बाद बाहर सिर निकालकर देखा। उनकी देह में एक और तरह की भोर थी। इस्, कितना सूना है यह नया राज्य! और ये तारे कितने पुराने हैं!!

हलके-पतले अंधकार में काली-काली धुँधली छाया सॉय-सॉय करती पिछड़ती जा रही थी। थोड़ी दूर पर भदई फसल पर खेतों में धुँध मिला अंधेरा सोया था। हठात् दासजी को लगा जैसे रेल का धू-धू शब्द एक तरह से दूर होता जा रहा है। कितनी दूर पर ये तारे बिलकुल नहीं हिलते। यह आकाश भी खूब स्थिर है। कहाँ, और तो बिलकुल गर्जन सुनाई नहीं पड़ता कि रेल भी चलती नहीं!... अरे मैं इस तरह रुंधा-रुंधा क्यों हो रहा हूँ?

वास्तव में रेल कहीं बीच में अटक गई थी। स्टेशन न था जहाँ लोग चढ़ते या उतरते। भीतर-बाहर निस्तब्ध हो रहा था।

दासजी झरोखे से बाहर देख रहे थे। किसी गहरे आवेग में उनकी समूची देह काँप रही थी। शतपथीजी ने देखा, पर चुपचाप आँखें मूँदे बैठे रहे।

कुछ समय बीता है कि नहीं, एक प्रकार की अद्‌भुत चीत्कार के साथ देखने लगे।

दासजी आहिस्ते बाहर से मुँह फिर लेते हैं। उनकी दोनों आँखें फटी-फटी-सी रह गई हैं। कपाल पर पसीने की भाप।

उन्होंने आश्रय पाने की तरह शतपथीजी का हाथ थाम लिया। दोनों हाथ थर-थरा रहे थे। पंडितजी ने अनुमान किया कि मन पर गहरा आघात करनेवाली-सी कोई भावना आई है। इसी बीच फक्-फक् कर धुँवा छोड़ती रेल आगे बढ़ गई। अध-पकी नींद में बातचीत चली। थोड़ा छूते-से कह उठे – "बहुत अस्वस्थ हो गया पण्डितजी, पता नहीं क्यों सिर झन् से चकरा गया।... मुझे लगा अचानक मैं डब्बे से शून्य में फिसल गया हूँ।... रीढ़ काँप गई। भय से चीख मार दी।...

ओहो, मुझे क्यों ऐसा लगता है मानो ऐसी ही सुबह के पहर में किसी दिन झरूँगा!!"

शतपथीजी दासजी की अवस्था समझ रहे थे। यह सूनी भोर की घड़ी है। डब्बे में सब ऊँघ रहे हैं। सिर्फ रेल छक्-छक् करती बढ़ती जा रही है।... यह सब किसी भी समझदार आदमी के मन में भावान्तर लाएगा। दासजी का चोट खाया मन है, जरा-सी हवा छूते ही टप्-टप् रक्त झर जाता है!

उन्होंने एकदम प्रसंग बदलते हुए कहा – "अच्छा, हमलोग चलकर सीधे दक्षिणेश्वर में रुकें। शौच स्नानादि सब वहीं करेंगे।"

"अच्छा, आप जो कहेंगे। पर मेरा तो संसार से मन टूट गया है इसीलिए मैं इस तीर्थाटन को निकल पड़ा, फिर मुझे क्यों ऐसा लगता है? मुझे लगता है, जैसे रघुनाथ अपने बाल-बच्चों, टुकआ, भाइग, बट सब मुझे बुला रहे हैं, और मैं उन की ओर बिना देखे एक मुँहा किसी ओर चला जा रहा हूँ।... खिंच कर इस खींचा-तानी में मेरा मन निचुड़ गया-सा लगता था। पर अब मुझे थोड़ी साँसत आ गई-सी लगती है। मैं समझ रहा हूँ मेरा लौटना और संभव नहीं है।... ठोकर खा रक्त में सन कर नाखून लटक जाए तो उसे और जोड़ा नहीं जा सकता! जितना कष्ट हो,

उसे तोड़ डालना ही पड़ेगा। रघुनाथ का बड़ा लड़का कुछ अस्वस्थ था। यह बड़ा पोता उसे बहुत भाता था।"

"छोड़िए, उस में और क्या है?"

सिर पर हाथ फेर रहे थे दासजी। जरा अन्यमनस्क हो मन ही मन बात करते से कहने लगे – "दूर जाने पर पराए हो जाते हैं, ना!!"

दासजी के मन में जो धर्मयुद्ध चल रहा है उसे पण्डितजी ठीक से देख रहे हैं, पर उसमें चुप रहना ही विधेय है, वे समझ गए हैं। उन्हें जो लग रहा है, युद्ध समाप्त होने पर आ गया है। अब युधिष्ठिर को उनका धर्मबल राजगद्दी पर बैठाएगा, कुरुकुल निपात होगा।

पर यहीं शतपथीजी का भावान्तर हो गया।... "आहा! बेचारा धृतराष्ट्र! सौ पुत्र किसी काम नहीं आए। अंत में पाँच पाण्डवों ने उन्हें निपात कर दिया।... यह तो युगयुगों से होता आया है।... उसमें तो स्वयं नियन्ता रह जाता है, निरायुध होकर रथ की डोर पकड़ता है, इधर सबको ब्रह्म से कीट तक निमित्त बना उपयोग करता है। इसमें अर्जुन जीतेगा नहीं तो और कौन जीतेगा?... महासमर यज्ञ में निमित्त होना क्या कम योग्यता की बात!"

आँख खोल कर देखा प्रकाश बहुत हो चुका था। अरुणोदय होने को था। पण्डितजी ने मन ही मन मंत्र पढ़ा –

"यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवैति,
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।"

दासजी जी की आँखें कुछ समय के लिए मिंच गई थी। उन्होंने आँखें टिमटिमा कर खोली और सोचने लगे कि यह नीलकंठ पण्डित कहाँ से आकर वेद पाठ कर रहा है। वह इसी तरह स्वर खींच कर गाता है, उस पर दासजी मन ही मन कई बार हँस देते।

देखा पण्डितजी मन लगाकर गा रहे हैं।... डब्बे में चारों ओर आँखें घुमाई। लोग-बाग जाग उठे थे। साफ उजाला हो चुका था। बहुत दिन पहले बोलते थे, धीमे-धीमे उसी तरह प्रभाती गाने लगे –

"ब्रह्मा मुरारी स्त्रिपुरान्तकारी, भानु शशि, भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च, शुक्रः शनि राहु केतव, कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।

पण्डितजी एक लय से बाहर देख रहे हैं। दोनों आँखें अधमुंदी हैं। लगता है जैसे वे और ही राज्य में पहुँच गए हैं। उनके भीतर से जैसे सुनाई पड़ रहा है – तस्य प्रशासने गार्गी...।

दासजी के मन में भक्ति आ गई है। वे मन ही मन शतपथीजी को नमस्कार कर प्रतीक्षा में बैठे हैं। उनके अंदर से अंधकार चला गया है। बाहर प्रकाश खुल गया है उसी तरह उनके अंदर भी पर्त का पर्त्त प्रकाश छनकर आ रहा है।

रात के गंदे-चीकट वाले यात्री आधे से ज्यादा जा चुके थे। बाकी आधे अपना सामान-असबाब संभाल रहे थे, बच्चों की सबेर की जरूरतें देख रहे थे। सफेद साफ-सुथरे कुछ लोग आकर चढ़ गए। वे कोई किसी की देह से न छूकर बच कर खड़े हैं। सब जाकर कलकत्ते में उतरेंगे।

दासजी ने उठ कर हाथ-पाँव सीधे किए। पोरें जुड़ गई थी। शतपथीजी वैसे ही बैठे थे। दासजी को आश्चर्य हो रहा था कि इन महात्मा के साथ गुंथ कैसे गया?

इनका तो किसी विषय में और कुछ रह गया-सा तो लगता नहीं। अच्छा, प्रभु की इच्छा!

पढ़नेवाले दो लड़के फाटक पर खड़े हैं। शतपथीजी को देख मन ही मन हँस रहे हैं। यह बूढ़ा क्या देख रहा है! क्या इस तरह ये श्लोक बोल रहा है!!

कब पण्डितजी की आँख के कोये हिल गए। चारों ओर सहज भाव से देख डाला, मानो आशीर्वाद दे रहे हैं।

बाहर सिर्फ रेखाओं की तरह साँप-सी रेल की पटरियाँ दूर तक पड़ी हैं! उस ओर भी वैसा ही है। ओह! कितनी रेलें यहाँ आती-जाती होंगी! दासजी बच्चों की तरह देख रहे हैं, यह जानकर पण्डितजी को और भी आमोद लगा। गाड़ी धड़-धड़ कर रुकती-रुकती-सी चल रही है। अब तक यात्री डब्बे में सामान ठीक कर कुछ देख रहे हैं। दासजी सोचते हैं – यह रुकी, वह रुकी, पर कहाँ? चली जा रही है!

कितनी देर बाद जाकर गाड़ी रुकी।

लड़के दोनों पहले उतर गए। तुरत किसी को देख कर सिर झुका रास्ता छोड़ हटकर खड़े हो गए। उनकी उम्र पैंतालिस के आसपास होगी। खूब मोटा-तगड़ा आदमी। डब्बे में घुस सीधा शतपथीजी के पास आ कर उनके चरणों पर बार-बार सिर झुका कर खड़ा हो गया।

शतपथीजी ने सिर पर हाथ रख आशीर्वाद दिया।

"अरे विमल! तुम किधर आए?"

"आमाके रामु जानियेछिल जे बाबा जाछेन कल्‌काता। एबार उनि थार्डक्लासे जाछेन् बल लिखेछिल। रास्ताए किछु असुविधा इएनि तो सार?"

बाहर से दोनों लड़के अवाक् होकर देख रहे थे। बात समझने में उन्हें समय लग रहा था।

दासजी को देखकर वे सज्जन जरा हिचकिचाहट के साथ पूछने लगे, "इनि कि, आपना र ... माने –"

"हाँ, वे मेरे साथ ही आए हैं। हम साथ-साथ तीर्थाटन करेंगे!"

यह सुनते ही दासजी के चरणों से धूल ले कर सिर से लगायी, बहुत उत्साह के साथ लोगों को बुला कर पण्डितजी की बक्स उतरवाने लगे। दासजी का झोला स्वयं लेकर उतरने लगे।

शतपथीजी ने दासजी को समझाया कि वे उनके पुराने छात्र हैं, अब प्रोफेसर हो गए हैं – बड़े सज्जन हैं।

रेल से उतर कर दासजी ने देखा हजार-हजार लोगों की भीड़। ऊपर चंद्रमा का-सा प्रकाश। एक पर एक लाद कर सात बक्स सिर पर, इस हाथ में बिस्तर और उस हाथ में पानी की सुराही पकड़े हाथी की तरह कुली चला गया।... ओः कितना ढो रहा है, और यदि गिर पड़ा तो क्या होगा!!

कुली के पीछे पूरा परिवार होगा! ओः कैसे गोरे हैं सबके सब! आदमी की उम्र चालीस के उस पार ही होगी, पर खूब चिकना चेहरा है! उसके पीछे सट कर मोटी औरत है। चेहरा दर्पण-सा चमक रहा है.... खाली जिसे कहते हैं चमकता गोरा वर्ण। उनके पीछे लंबी लड़की। सिर पर काले चमकीले बाल। घास की रस्सी

की तरह एक वेणी एड़ी तक लटक रही है। वह साहब लड़के की तरह बारह-चौदह वर्ष के लड़के को – शायद उसका भाई ही होगा – कुछ पकड़े था, थम कर दासजी वगैरह की ओर चला आया। विमल बाबू को सिर झुका नमस्कार कर खड़ा हो गया उस लड़की को एक बार देख कर पूछा – "कोथाए गिएछिले रे!'

लड़की के माँ-बाप ने भी आकर नमस्कार किया। पर वे शतपथीजी की बक्सा भी कुली के सिर पर दे रहे थे। अंत में पैर बढ़ाते हुए कहा – "आपनि किछु मने करिबेन ना! आमि एखन एकटु बेस्त आछि।"

वे शतपथीजी को आश्चर्य से देखने लगे। दासजी को भी सिर से पैर तक देखा। मन ही मन फुस्फुसाहट-सी कर चले गए।

स्टेशन के बाहर आते ही लोगों, घोड़ा-गाड़ी, मोटर की भीड़। दासजी को आकाशी-आकाशी-सा लग रहा था। कितना बड़ा शहर है कलकत्ता! इस् कितने लोग-बाग हैं, आदमी यहाँ मक्खी जैसे हैं। हाँ, इधर देखो तो कितना विराट हबड़ा पुल है! इसे देखने ही अनेकों लोग आते हैं।... नये राज्य में दासजी किसी को नहीं पहचानते। यहाँ आधे तो उन्हें लगते हैं उस कुली की तरह और आधे उस लंबी लड़की, उसके माँ-बाप जैसे। और कई बेतरतीब लगते हैं – जरा गंदे, काले, मैले से। इनमें से किसी को वे पहचानते नहीं कि इन अकूत लोगों में से एक भी उन्हें चीन्हता नहीं। यह भी खूब रही!

विमल बाबू की चमचमाती कार। पहले शतपथीजी, उसके बाद दासजी और अंत में खुद बैठे। बहुत मुलायम गद्दी, खूब चिकना कपड़ा। दासजी डरते-डरते से पहले जरा उठ कर बैठे, इसके बाद ठीक से बैठे।

गाड़ी चल रही है। दोनों ओर कितने बड़े-बड़े घर हैं! सड़क भरी है आदमियों से। गाड़ी, मोटर असंख्य हैं. दासजी विस्मय से देख रहे हैं। ओः यह मायापुरी जैसी नगरी और इन घरों में फिर आदमी रहता है!

शतपथीजी ने कहा – "क्यों ... विमल कहता है आज का दिन उसके घर अतिथि होने के लिए। उसकी स्त्री भी मेरी छात्र है। जोर देकर कहा है। वह खुद आती। असुविधा के कारण नहीं आ सकी। क्यों ... चलें?"

दासजी जरा हँसे। कुछ कहा नहीं। पण्डितजी के समझने के लिए हँसी का अर्थ था कि मुझे पूछने का क्या अर्थ है?

इसके बाद शतपथीजी कहने लगे, "विमल! हमारी कलकत्ता रहने की इच्छा नहीं है। खाली दक्षिणेश्वर जायेंगे। वहीं दिन भर कट जाएगा। रात तुम्हारे घर रह कर सुबह काशी चले जायेंगे।"

शतपथीजी बात में किसी की द्विरुक्ति करने की इच्छा नहीं होती। लगता जैसे जो कहते हैं, वही सिर्फ ठीक है।

और रास्ते भर कोई बात नहीं।

विमल बाबू का घर खूब बड़ा है। सामने कई फूलों के झाड़ हैं। चित्रलिखित-सी उनकी घरवाली है। जलछवि-से दो बच्चे। अच्छा भरा-पूरा संसार है। उन्होंने आकर पहले शतपथीजी को और फिर दासजी के चरण स्पर्श किए। दास जी ने मन ही मन आशीर्वाद दिया। "सुलक्षणी हो बेटी! बेटे तुम्हारे दीर्घायु हों।" अरे यह छोटा बच्चा तो बिलकुल टुकुआ सरीखा दिखता है! टुकुआ अच्छा खाना पाए, कपड़े-लत्ते पहने तो ऐसा ही दिखता ना!!

पण्डितजी का कड़ा तगादा है कि जल्दी तैयार होना चाहिए। मन की बात मन में ही मार कर झटपट नित्यकर्म समाप्त करने निकल पड़े। बच्चे को बार-बार देख रहे थे। आकर उन्होंने नहानघर दिखा दिया। उनके थैले से लोटा लाकर दे दिया।...

उसके सिर पर हाथ रख कर दासजी ने पूछा – "बेटे, तेरा नाम क्या है?"

उसने कहा – "नाम्? आमार नाम सन्तोष।"

इस्, कितना सुंदर बच्चा है!... दासजी का मन पिघल गया, हाथ बढ़ाया, पर फिर क्या सोच कर उसके कंधे थपथपा दिए और हाथ खींच लिया। बच्चे ने अच्छी तरह उनका मुँह देखकर कहा – "मा बोललेन आमि आपनार काज करबो। जखन ऐसे आपनार काजटि करि दिबो। – आर आपना के नमो नमो करबो, आपनि गुरुजन कि ना?"

उसकी वे गुदगुदी बातें, पुचु-पुचु गाल, दासजी को बहुत अच्छे लगे। उन्होंने मन ही मन कहा – "प्रभु जगन्नाथ इन्हें दीर्घजीवी करना!" ... पर मुँह खोल कर "हऊ, हऊ" कहा और स्नानघर की ओर चले गए।

"हऊ? – हऊ टा कि?" – इसके बाद लाज से कान पकड़कर सिर झुका कर कहा – "आज्ञा, आमार भुल हयेगेछे। आपना के विरक्त करबो ना, मा बोलेछेन। आमि जाइ ताके जिग्येस करबो।"

दौड़ता हुआ चला गया।

बाहर किवाड़ देकर जिस तरह वह गया, दासजी उधर ही देखते रह गए। इसके बाद साँस छोड़ते हुए कहा, 'बातूनी!'

सब काम समाप्त कर विमल बाबू की गाड़ी में दक्षिणेश्वर के लिए निकलते-निकलते दिन दो घड़ी चढ़ आया था।... आगे विमल बाबू गाड़ी चला रहे थे, पीछ शतपथीजी और दासजी!...

देखते-देखते कलकत्ते के कोठे-बाड़ी पीछे रह गए। सड़क से खूब नीचे नाले – नाबदान के जाल में खपरैल के घर, छप्पर की झोंपड़ी, नंग-धड़ंग अनेक बच्चे। मरियल, रोमहीन कुत्ते भी अनेक थे।... यह भी कलकत्ता है!! दक्षिणेश्वर के रास्ते में हजार आदमी यह सब देखते होंगे। कोई एक भी गाड़ी रोक कर कभी इन्हें ठीक से देखता है?... यहाँ तक कि विमल बाबू जैसा आदमी भी सिर्फ सामने देखता हुआ साँय से गाड़ी चला ले जाता है। अंदर देखा, शतपथीजी स्थिर दृष्टि से सामने देख रहे हैं।...

बाँये मोड़ पर जाकर गाड़ी खड़ी हुई। तीनों उतर गए। दासजी ने जिधर देखा उधर ही खुले बालों वाली छोटी-बड़ी अनेक स्त्रियाँ हैं।... कोई फूलों का गुच्छा खरीद रही है तो कोई प्रसाद लगाने के लिए मिठाई। हठात् दासजी को लगा क्या यह देश स्त्री-बहुल है? तब तक शतपथीजी गंभीर हो चुके थे। और बातचीत नहीं की।

मंदिर पास आ गया तो एक-दो बातें संकेत में विमल बाबू से कही। दासजी को देख किंचित मुस्काए और मंदिर में पीछे देखे बिना अकेले ही घुस गए।

विमल बाबू ने थोड़ा हँस कर विनयपूर्वक दासजी से कहा, "आपनार दायित्व तिनि आमाके दिएगेलेन, आपनि आमार संगे आसुन्!"

परिक्रमा में और अनेक लोग थे। गेरुआ वस्त्र पहन मुण्डित मस्तक कई संन्यासी वहाँ घूमते दिखे। अंत में उन में से एक ने आकर विमल बाबू को बाँहों में

भर लिया। उनकी बातचीत से दासजी ने अनुमान किया कि वे घनिष्ठ बंधु है और बारबार शतपथीजी का नाम लेकर उनके प्रति नमस्कार करते हैं। समझ गए कि शतपथीजी बहुत उच्च स्तर के आदमी हैं। परिक्रमा के बाहर एक फूल के पेड़ के नीचे उसी संन्यासी के साथ दासजी की बातचीत हुई। उन्होंने रामकृष्ण-विवेकानन्द के दर्शन के संबंध में कई बातें विनयपूर्वक सुनाई। दासजी को लगा जैसे पुराणों के अपूर्व चरित्रों की तरह ये दो भी बहुत पवित्र पुरुष हैं।

बंग भाषा सरल कर कहे तो समझना सहज है। दासजी उस में डूब गए।... आकर काफी समय हो गया। विमल बाबू बुला कर ले गए। तीनों जाकर देवी मंदिर में पहुँचे। उन्हें अंदर उफनता-सा लगा। साष्टांग प्रणिपात कर कुछ समय तक पसरे रहे। उठकर देखा एक कोने में शतपथीजी पद्मासन में बैठे हैं। वे उसी तरह देख रहे हैं, मन करता ही नहीं कि उन्हें पुकारें या उनके ध्यान में बाधा दें, पर विमल बाबू ने उन्हें संकेत से बाहर आने का अनुरोध किया हो ऐसा लगा। बहुत संभ्रम से उन्होंने संकेत किया था। दासजी बिना कुछ कहे निकल आए, उनके साथ वे संन्यासी बंधु थे!

वहीं दिव्य भोग मिलता है। वही प्रसाद पाकर दासजी ढलती दोपहर में ठंडे बरामदे में बैठ विश्राम करने लगे। नाना प्रकार के विचार करते-करते संध्या हो गई। एक धर्म सभा का आयोजन हुआ। अनेक तरुण और परिणत वयस्क संन्यासी आकर चुपचाप बैठ गए। हलके अंधेरे के बीच विमल बाबू शतपथीजी को साथ ले आकर वहाँ बैठे। अत्यंत संभ्रम से एक ने उठ कर पण्डितजी से कुछ कहने का अनुरोध किया। शतपथीजी काफी प्रसन्न दिख रहे थे। उनका चेहरा देदीप्यमान हो रहा था। वे एक ऊँचे आसन पर पल्थी मार कर बैठे, इसके बाद जो कहा दासजी इधर-उधर से थोड़ा-बहुत समझते रहे। पण्डितजी शुद्ध संस्कृत में अनेक गहन बातें कह रहे थे, खूब धीरे-धीरे कह रहे थे। सब सिर झुकाए सुन रहे थे। दासजी अधिक से अधिक विस्मय में डूब रहे थे।

"बाबारे! ये कहाँ, मैं कहाँ! इनके साथ खड़े होने की योग्यता भी मेरी है? वह जगन्नाथ ही बीच में रहकर यह सारी बातें कर रहा है। नहीं तो असमर्थ, अनपढ़, मुझ-सा मूर्ख आकर इस गोष्ठी में बैठता!"

दासजी की आँखें भाव-विह्वल हो छलछला रही थी। वे विह्वल होकर सिर्फ भगवत लीला का चिंतन कर रहे थे। उसका कूल-किनारा कहीं मिल ही नहीं रहा था।

सभा टूटी। सब प्रायः उसी तरह चुपचाप विमल बाबू की गाड़ी तक आए। शतपथीजी के साथ बैठने में दासजी को बहुत संकोच हो रहा था। शतपथीजी ने हाथ पकड़ कर बैठा लिया।... विदायी के समय पण्डितजी ने सबका प्रणाम स्वीकारा। किंतु उन्हें नमस्कार करने पर दासजी हाथ उठाकर आशीर्वाद देने का साहस भी न कर सके।

कुसुम स्पर्श से पट खुल गए-से लगे दासजी को। गले तक कोह उठ आया-सा लग रहा था उन्हें। बड़ा निरीह है यह सर्वसमर्पण भाव – पहाड़ पर उठा ले गए तो भी हाँ – समुद्र में फेंक दो तो भी हाँ!!

गाड़ी छोड़ दी।

कहीं दूर पर ऊँची आवाज में शंख बज रहा था।

# मणिकर्णिका

त्रिवेणी में डुबकी लगा आने के बाद से दासजी खोए-खोए-से लगते हैं। बैठे हैं तो बैठे हैं, एक ओर देख रहे हैं तो और आँखों पर पलक झपकेगी ही नहीं। बातचीत प्रायः नहीं करते। लगता है जैसे उनकी चेतना निचुड़कर पवन में विलीन हो गई है और बीच-बीच में वे उसे फिर समेट कर चारों ओर देख रहे हैं। अनचीन्हे से होकर घड़ी-दो घड़ी वैसे ही ठाले रह जाते हैं और फिर कुछ उदासीन-सी हँसी हँस सब कुछ ग्रहण कर लेते हैं। इधर तीर्थ पर मुंडन करा आए हैं, पहचानने वाला भी देखकर कह नहीं सकेगा कि ये ही सनातन दास हैं।

पण्डितजी सब कुछ देख रहे हैं, पर जो होना है सो तो स्वतः होता जा रहा है, उसमें उनके कहने या करने को क्या है!... संगम घाट से लगकर कुंभ मेले के लिए मैदान का आँखों को ओर-छोर ही नहीं दिखता। वहाँ पहुँच दासजी पहले बच्चे की तरह विह्वल हो खाली आँख फाड़-फाड़ कर देखने लगे। पण्डितजी ने वहीं उनको पूछा – "कैसा लगता है?" दासजी निर्वाक् सिर्फ उन्हें देखते रह गए। उसी समय से अकस्मात् उनके प्राणों में एक प्रकार की विराटता प्रवेश कर गई।

इस बात को करीब दस दिन हो गए। दासजी को इस तरह उदासीन देखकर पण्डितजी स्वयं सब काम खुद ब खुद कर लेते हैं। दासजी का हठात् नींद से उठने की तरह कर्त्तव्य ज्ञान लौट आता है। वे अप्रतिभ-से हो कर पण्डित जी के हाथ से काम छीन कर डालते, किंतु भूल जाते-से कुछ समय बाद फिर अन्यमनस्क हो जाते हैं। मन उनका सेमल रुई की तरह कहीं का कहीं उड़ जाता। काँच की दोनों आँखों से दृष्टि खिंच आती।

पण्डितजी समझते – दासजी के प्राणों में धर्मयुद्ध, जिसे वे संजय की तरह सिर्फ देख रहे थे उसका अवसान हो गया है। किंतु युद्ध के कोलाहल के बाद सब कुछ निस्तब्ध हो गया है। इतना बड़ा धर्मक्षेत्र सुनसान हो गया है! बहुत दूर से – कहाँ, पता नहीं किस दिग्वलय के छोर से पांचजन्य गूँज रहा है – कुरुक्षेत्र सारा कंपायमान हो रहा है। पर दासजी को पता ही नहीं चलता यह कैसा शब्द है, किधर से आ रहा है, किसका है यह शब्द! इसीलिए शायद यह विस्मय है!... पर पण्डितजी कुछ कहते नहीं।

*** ***

उस दिन प्रयाग से आकर काशी पहुँचे थे। सुबह मणिकर्णिका में स्नान कर विश्वनाथ के दर्शन के लिए जाने की बात। उस पहले पहर में दासजी दृष्टिहीन आँखों से शून्य की ओर देख रहे थे। हठात् आँखों पर पलक पड़ी। उन्होंने टिमटिमा कर देखा। देखा पण्डितजी की कम्बल समेट कर रखी जा चुकी है।... पण्डितजी कब से उठकर शौचादि के लिए निकल गए।... उन्हें

बहुत लज्जा आई। क्या रे! मैं यहाँ भूत की तरह बैठा हूँ! मेरी आँखों के सामने वे सारे काम कर चले गए। मैंने देखा नहीं ... छि:!!

धड़धड़ाते उठ गए। कम्बल लपेट कर रख दी और बाहर आ गए। यहाँ कार्तिक लगते ही जाड़ा पड़ने लग गया था। लगता था धर्मशाला में कोई आदमी न था। तीन तल्ले की धर्मशाला सचमुच एक गहरे-चौड़े कूँवे-सी लग रही थी। नीचे सचमुच एक बड़ा कूँवा भी है। दासजी को याद आया – "अरे, आज तो मणिकर्णिका में स्नान कर विश्वनाथ के दर्शन करेंगे!" जल्दबाजी में जाकर कूँवे से बाल्टी निकाल कर रखी कि देखा पास में पण्डितजी खड़े हैं। वे संभ्रम से बाल्टी उनके सामने रख सरक कर खड़े हो गए। उस धुँधले अंधकार में उन्हें देख किसी कारण से कुछ हँसे और हाथ-मुँह धोकर चले गए। दासजी उन्हें देखते रहते तो वैसे ही रह जाते, पर चौंक पड़ने की तरह फिर बाल्टी निकाल कर नित्यकर्म में मन लगाया।

कुछ समय बाद दोनों सुनसान गली पकड़कर गंगा तट की ओर चल पड़े।...

रास्ते पर ईंटें बिछी थी। दोनों ओर ढेर की तरह पड़े पाँच-पाँच सात-सात तल्ले के मकान। कील ठुके दबे-दबे-से किवाड़ मानो पाताल का रास्ता रोके खड़े हैं। मोड़ों पर ढेर सारा अंधकार। अच्छी ठंड भी है। ढलान के कारण दासजी के कदम तेजी से पड़ रहे थे। दोनों आगे-पीछे होकर चल रहे थे।

इसी समय दूर से वेदध्वनि-सी झर-झर कर आवाज आती लगी। दोनों एक साथ धीमे पड़ गए। इसमें संदेह नहीं। यह निश्चय वेदपाठ हो रहा है।... और स्पष्ट सुनाई दिया। समवेत कंठ में वेद का महिम्न स्तोत्र बोला जा रहा था। दासजी को रोमांच हो आया। पण्डितजी ने सिर झुका कर गर्दन के बीच हाथ रखा, एक कदम रुके, फिर बढ़ गए। आगे-आगे और भी घनघन ध्वनि उठ रही थी। दासजी सिर्फ मन ही मन निस्तार हुआ, निस्तार हुआ अनुभव कर रहे थे। हठात् दोनों खुले रास्ते पर आकर खड़े हुए। दाहिने मोड़ पर घाट है। यहाँ गंगा पवन सूँ-सूँ कर रहा है। जलकण मिली सिहराती हवा।... आः इसे पहले जी भर पी लिया जाए।... इधर कानों में सामवेद गूंज रहा है। ढलान में दासजी के कदम कोई कोस का एक तो कोई गज का एक पड़ रहा था। वे दौड़ने की तरह पण्डितजी के बहुत आगे चले जा रहे थे।

आगे और घर-द्वार नहीं हैं।... यह जो खुला-खुला-सा प्रकाश दिख रहा है, शायद यही पतितपावनी गंगा है!

दासजी का मन गहगहा उठा। वे प्रायः कूदते-से जा रहे थे। रास्ते में उसी धुँधले अन्धकार में से हठात् कोई भीगा-भीगा-सा सर-सरा कर एक ओर हट कर चला गया।... हे ... कौन है यह?... गंगा स्नान कर लौटता होगा!!...

अपने अनजाने ही वहाँ दासजी स्तम्भीभूत होकर खड़े रह गए। उनके सामने अपार भीड़!!...

ओः कितने, हजारों लोग नहा धोकर लौट रहे हैं? दासजी सिर्फ आँख फाड़े देख रहे हैं, रास्ता मिले तो जाएँ! एक एक कमण्डल में गंगोदक लिए हजार-हजार साधु-संन्यासी लौट रहे हैं। दासजी को अनदेखा-सा करते हुए सब चले

जा रहे हैं!... घुसते जा रहे हैं, धक्कमधक्का-से होते चले जा रहे हैं। कितनी जटा एक-एक के सिर पर हैं!... उनकी खुली-खुली देह से कैसी महक आ रही है!... हू-हू कर आते पवन के झोंकों में असंख्य लोग उसी प्रकाश में से नहा कर उठते आ रहे हैं!!!

दासजी को लगा उन्हें कोई बुला रहा है – बहुत दूर से! आहिस्ते से नजदीक आ उनका हाथ पकड़ हिला रहा है!!

वे चौंक उठे! देखा उनके पास पण्डितजी खड़े हैं।

"इस तरह बीच रास्ते में खड़े रह गए, दासजी? चलो, चलें!"

"जी... जी... हाँ!... मैं ... कह ... रहा... था... कि जा नहीं पा रहा था!... इः, कितने लोग नहा कर चले गए! – आपने देखा?"

"कहाँ... नहीं तो!"

"क्या हुआ?... हैं! सच – वे सब गए कहाँ?"

"कौन सब?"

"जी, क्या कहूँ – हजार-हजार संन्यासी, उनके सिर पर इतनी बड़ी-बड़ी जटा – सब इसी रास्ते गए हैं! – मेरे लिए बिलकुल रास्ता ही नहीं रहा!!... ओः कितने लोग थे!"

"आप का मन अभी खूब संवेदनशील है। अतः इस पुण्य क्षेत्र में भ्रमती आत्मायें आपने देखी।... यह बहुत शुभ लक्षण है।... अच्छा, आइए, स्नान का समय बीता जा रहा है।"

"भ्रमती आत्माएँ!!!"

"हाँ... यह तो महाश्मशान है, यहाँ विचित्र क्या है!!" दासजी को लगा जैसे जमीन उनके पैर से खिसक गई। वे पण्डितजी के पीछे-पीछे कठिनाई से संभाल-संभाल कर कदम उठा रहे थे।

कहना होगा रात अभी और बाकी है। मणिकर्णिका घाट पर भीड़ नहीं है, पर लोगों का आना-जाना शुरू हो गया। एक-एक सीढ़ी उतरते गए पण्डितजी, पीछे नहीं देख रहे हैं। पर दासजी विभोर होकर केवल श्वेतवाहिनी गंगा का अपूर्व रूप देख रहे हैं। सीढ़ी के किनारे पर से पैर फिसलने लगा तो थक गए और वहीं बैठ गए।

कौन कितने प्रकार के स्तोत्र वहाँ बोल रहा था। एक के पीछे दूसरा इस तरह, कितने ही लोग घुसे पानी में।... अंधकार में दासजी दूर तक नहीं देख पा रहे थे, पर गंगा पवन का स्पर्श होते ही उनका हृदय खुल-खुल जा रहा है। आँखों के सामने लोग तैरते-से दिख रहे हैं।

दासजी को फिर वही अद्‌भुत दृश्य दिखा!!... धक्का-धक्की... भीड़ की सीमा नहीं! असंख्य लोग कहीं से आकर स्नान करने जा रहे हैं।... असंख्य घाट पर से ऊपर आ रहे हैं।... और लोग... और अधिक... और असंख्य...!! आकाश में मेघमाला की तरह हजार-हजार लोग!...

दासजी की सांस रुंधने-सी लगी। सिर चकरा गया। और न संभाल कर आँखें मूँद ली। फिर भी जनसमुद्र से उबर न सके।...

भीतर-बाहर लहरें फेंक रहा है वह महोदधि। स्थिर होने के लिए उन्होंने सिर को कस कर पकड़ लिया। कान में भाँ-भाँ हो रही है, गला सूख कर खरखरा हो गया। देह पर एक के बाद एक पसीने की तरंग आती है!!... विह्वल, विकल हो कर जिधर देखते हैं उधर ही कोटि-कोटि मुँह!!...

साँय-साँय कर उनकी रीढ़ कुनमुना उठी। उन्हें लगा जैसे वे चौड़े हो गए हैं।... मणिकर्णिका घाट पर पूरे पर फैल गए हैं एक छाया की तरह। सिर जाकर कहाँ कितने ऊपर लगता है।... वर्षा का पानी चले जाने पर दीवार से दीमक निकलने की तरह करोड़ों-करोड़ लोग उनके भीतर होकर साँय-साँय करते निकल रहे हैं – उन्हीं के अंदर होकर पुनः लौटे जा रहे हैं!!!... वे मानो हल्के मुक्त होकर पवन में मिले जा रहे हैं!!!

इसके बाद उन्हें कुछ मालूम नहीं। लुढ़कर पता नहीं वहीं सीढ़ी पर कब गिर पड़े हैं।

पण्डितजी निविष्ट मन से गंगा स्नान कर एक लोटा पानी भरकर ऊपर आते हैं। उनकी दृष्टि प्रायः स्थिर है। कतरा भर मन इस जगत में है, उसे ले जाकर विश्वनाथ मंदिर में पहुँचा देना होगा। नहीं तो सब ओर से खिंच कर अंदर बाकी सिमट चुका है। वे दासजी को देखकर अनजान-अनजान से हुए।... इसके बाद चुल्लू भर उनके मुँह पर डालकर सीधे चल पड़े।

दासजी की पलकें थरथराती खुली। फिर भी उन्हें धुँधला-धुँधला लग रहा था। हाथ टेककर खड़े हुए। तब तक अच्छा खासा प्रकाश हो चुका था। गंगा की प्रभाती उजास उन्हें खूब ताजा कर देती है।

घाट के दोनों ओर आसन पर छत्र लगाए तिलक करने के लिए लोग बैठ चुके हैं।...

यात्रियों के कपड़ों की रखवाली के लिए आदमी आ गए हैं।

मंत्र पढ़ गंगास्नान करा देने के लिए धुले हुए कपड़े पहने और उत्तरीय डाले रुद्राक्ष गले में पहनकर छोटे-बड़े सब तरह के ब्राह्मण घूमने लगे हैं।

दासजी ने मन ही मन किसी अभाव का धीरे-धीरे अनुभव किया, मानो वे किसी को खोज रहे हैं।...

ओहो, पण्डितजी कहाँ?... शायद चले गए हैं! अच्छा मंदिर ही तो गए होंगे, वहीं भेंट होगी!... पर मेरी यह बीच-बीच में चेतना खो जाती है! बड़ा अद्‌भुत...

इसी बीच बारह-तेरह वर्ष का लड़का – चंदन तिलक लगाए, रुद्राक्ष पहने है – उनके पास आकर खड़ा हो गया। दासजी ने उसके चेहरे की ओर देखा। उसने हँसते-हँसते बहुत आदर से कहा – "चलिए आपको स्नान करवा के ले आयें! त्रितापनाशिनी गंगा में आपका सब जन्म का पाप धुल जाएंगे - फिर आपको दर्शन भी करवा देंगे। अन्नपूर्णा मंदिर वगैरह भी उधर है, दिखवा लायेंगे।... आप यहाँ किधर ठहरते हैं? आप हमारे मेहमान जैसे हैं। कहेंगे तो हम आपकी सब कुछ सेवा कर सकते हैं।"

इन सारी बातों का साधारण अर्थ दासजी ने अनुमान कर लिया। कुछ-कुछ समझ भी गए। पर कुछ कह नहीं सके, उसके मुँह को सिर्फ टिमटिमाती

आँखों से देखते रहे। खूब गोरा, कच्चौ उम्र का चेहरा। सुडौल हाथ-पैर। दासजी के मन ने कहा... राजी हो जा! कितना सुंदर बच्चा है! कैसी मीठी बातें कहना सीखा है!... इसे अब क्या मना कर दें!...

पर उनके मन में तो घोर अराजकता है। मन के साथ जीभ या जीभ के साथ हाथ, किसी को किसी के साथ जोड़ नहीं पाते।

बच्चा उन्हें अप्रतिभ-सा कुछ समय तक देखता रहा और दासजी के कुछ कहने से पहले ही दूसरे यात्री की फिराक में चला गया।...

काफी देर बाद कुछ स्नेह और कुछ करुणा मिश्रित हल्की-सी मुस्कान दासजी के चेहरे पर दिखाई दी...। उसे देखने उनके पास कोई न था। दासजी भी अनुभव नहीं कर पाए कि वे हँस रहे हैं, क्योंकि उसके साथ उनके मन का योग न था।

कुछ घटता-सा लगा।

दासजी चौंक पड़े। हठात् उनकी सारी चेतना लौट आई। वे आँख फाड़ते दूसरी ओर देखते रह गए।... अरे, टुकू माँ यहाँ कहाँ से आ गई!... बच्चा जयी भी तो उसके साथ है!!... अद्‌भुत!... वही तो है!!... वैसी ही पीछे से ठीक वही चाल! वही ओढ़ना!!... ऐं... ऐं... यह मैं क्या देख रहा हूँ?... ठीक देख रहा हूँ तो?...

जरा उत्तेजित होने पर वे गर्दन खुजलाते। हाथ जैसे ही वहाँ पहुँचा मुण्डित सिर छुआ गया।... तो उन्हें अच्छी तरह होश है!

उनकी छाती धक्-धक् कर रही थी। एक लय से माँ-बेटे को देख रहे थे। उन्होंने तभी मुड़कर देखा। भुस् से दासजी का चेहरा चमक गया!... अभी दिख जायेंगे!... स्त्री उनकी ओर देखकर हँसती-सी लगी। वे और भी चौंक उठे। अविकल वही मुस्कान!... सब बिलकुल वैसे ही... पर यह... यह तो वह नहीं!!... बच्चा भी पीछे से जयी की तरह दिख रहा था पर आगे से कितना भिन्न लग रहा है!! ना... ये सब तो और ही कोई हैं!...

परंतु इस चमक को दासजी सहज ही हजम नहीं कर सके। अंत में वह स्त्री अपने पति के साथ बातचीत करती हुई आगे निकल गई। दासजी उन्हें वैसे ही देखते रहे।

उसने देखा होगा तो क्या सोचा होगा?... परंतु इस में दासजी के पास और चारा भी क्या था?...

अब वहाँ से उठे गंगा स्नान के लिए। सीधे पानी की धार के पास जाकर बैठे और घड़ी भर तक सिर पर पानी छींटते रहे। इसके बाद धीरे-से पानी में घुसे।... उनके चारों ओर सब लोग नाक-कान भींच कर डुबकी लगा रहे थे। एक वृद्ध कमर तक पानी में खड़ा सूर्य को अर्घ्य दे रहा था। उनकी ठोड़ी पर कदम्ब-केसर की तरह पकी रुढ़ दाढ़ी खड़ी थी।... दासजी गर्दन तक पानी में डूबे सब देख रहे थे।...

धार के बीच में एक तरह की नाव बहती चली गई। उस पर चंदोवा खिंचा था। उसके नीचे चौकी डाल एक साहब अपनी मेम को लिए बैठा था। दोनों अपनी आँखों पर यंत्र लगा कर गंगा तट देख रहे थे।

नाव के चले जाने के बाद दो पतली लकीर पानी में मिल गई। अकूत स्रोत, आँखें पहुँच ही नहीं पाती। मकरवाहिनी के इस स्रोत में पड़ ऐरावत बह गया हो तो कोई विचित्र बात नहीं।

दासजी गर्दन तक पानी में बैठे देख रहे थे, कहाँ के कहाँ सोच रहे थे। पानी तो पवन की अपेक्षा ऊष्म लग रहा था। कुछ समय बाद वे भूल गए कि वे पानी में बैठे हैं। उनके ढेर पीछे वाले लोग नहा कर निकल गए। पर वे वैसे ही बैठे हैं।... उनका मन बिलकुल उनके आयत्त में न था। अतः भावनाएँ भी कैसे आकर उदय होती और फिर उड़ जातीं। दासजी अनायत्त में पड़ गए हैं। नदी की धारा को अनबूझे की तरह देख रहे हैं। इसके बाद सिर उठाकर घाट पर नहानेवालों को भी उसी तरह अनजान-से देख रहे हैं। दिमाग में कुछ भी नहीं जा रहा है। आदमी छाया की तरह दिख रहे हैं, नदी, घाट सब चित्र से लग रहे हैं।... पर वह स्रोत?... वह उन्हें एक गंभीर आश्वस्ति का बोध करा रहा है। किधर-किधर से यह इतना पानी वातुल की तरह जा रहा है?... इसकी उत्पत्ति कहाँ? कहाँ इस यात्रा का शेष?... बारंबार वे स्वयं को पूछ रहे थे, पर कोई विशेष उत्तर नहीं मिल रहा था।

घटना क्या है? समय आकर दो घड़ी हो गया! धूप चिलचिला रही है। दासजी कुछ भी करने का ठीक निश्चय ही नहीं कर पा रहे हैं। जैसे नशे में आदमी झूमता है, वाचाल का-सा व्यवहार करता है, – बाहर से लक्ष्य करने पर दासजी अविकल उसी तरह लग रहे हैं।

धार पर लोगों की भीड़ पतली हो आई। दो-तीन घाटवाले ब्राह्मण दासजी को देखकर कुछ बातें कर रहे हैं। इंगित से लगता है जैसे वे दासजी को पागल समझ रहे हैं। अवश्य उसमें विशेष भूल भी कहाँ है उनकी?

इसी बीच कें...चें... हल्ला-गुल्ला करते औरत-मर्द-बच्चों का एक छत्तीसगढ़ी झुण्ड पहुँच गया।... ये लोग सब तीर्थों में जाते हैं, पुरी भी जाते हैं। सब जगह लोग इन्हें देख हँसते हैं, बुद्धू समझ ठग लेते हैं।

दासजी ने क्या सोचा पता नहीं, दो-तीन डुबकी लेकर किनारे आ खड़े हुए। वही धोती-गमछा निचोड़, लोटा-भर जल ले कर निकल पड़े। आँखों में वैसे ही खाली-खाली भाव भरा था। पर यह कहना होगा कि उनका बाह्यज्ञान लौट आया। सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते दो-तीन आगे-पीछे से आ गए तिलक करने। दासजी उन्हें सिर्फ देखने लगे। समझते तो कुछ कहते! जो देखते उसे ग्रहण कर पुनः तदनुसार कुछ कहने या करने की सोचते तब तक वह कहनेवाला मुड़कर चला जाता। शायद जरा हँस भी देता।

दासजी सबसे ऊपर की सीढ़ी पर बैठे हैं। पीछे से किसी ने कुछ कहा। दासजी को सुनाई दिया होगा। पर मन तक पहुँचने में कुछ समय लगा होगा। कुछ दूर जाकर सोचने लगे – अच्छा उसने क्यों वैसा कहा, "पागल नहीं है, साला उल्लू है" ... तो क्या मुझे कुछ लोग पागल समझते हैं? सोचते होंगे... बातचीत के रंग-ढंग से क्या सचमुच पागल जैसा ही दिखता हूँ न?... मन ही मन कुछ हँसने लगे ... पागल कहने का मतलब ... यही ... बाया? क्यों, अरे मैंने क्या किया जो मैं बाया हूँगा?... उन्हें कुछ हँसी-सी आ गई। फिर सोचने

लग, अच्छा यह 'उल्लू' क्या होता है? अच्छी भाषा है, ससुरी! क्या कुछ वैसा ही होता होगा। शायद कोई गाली-वाली होगी।

रास्ते में खड़े होकर दासजी हँसने लगे। दोनों ओर दीन-दुःखी, लूले-लंगड़े कतार बाँधे बैठ गए हैं। दासजी कुछ न होनेवाले की तरह दिख रहे थे, पर वे लोग क्या हाथ फैला कर आवाज नहीं लगायेंगे?... मागने लगें। दासजी बिना कुछ बोले आगे बढ़ गए। उन्हें और कोई हाड़-मांस का आदमी जैसा लग ही नहीं रहा। सब कुछ जैसे वे स्वप्न में देख रहे हैं। सब जैसे खाली छाया। स्वयं उन्हें भी अनुभव हो रहा है। जैसे वे हवा में बहते चले जा रहे हैं।

उनके आगे और भी दो जने गंगा स्नान कर लौट रहे हैं। गीले कपड़े सब थैले में पकड़े हैं। सूखी धोती पहन गरम चद्दर ओढ़े वे शीत में बढ़ते जा रहे हैं। पर दासजी की देह खुली है। पहनी हुई धोती गीली है। कंधे पर गीला गमछा। दासजी अपने अनजान मं उनके पीछे चलने लगे।

बड़े रास्ते से कटकर एक पतली गली चली जाती है। उसमें सूर्य का प्रकाश नहीं कि गरमी नहीं। इस गली से हाथ बढ़ाने पर उस गली में पहुँचेगा। बीच में छोटा-सा रास्ता। संकीर्ण गली के दोनों ओर दुकानें लगी थी, दासजी ने एक बार उधर देखा। इसके बाद बच कर चलने लगे।

कुछ ही दूर पर देखा रास्ता रोके इतना बड़ा साँढ़ खड़ा है। इस दीबार से उस दीवार तक उस की कोल सटी है। भूत की तरह इतना बड़ा सिर, उन्हीं के अनुपात में दो चिकने, पर पैने सींग।

उसे देखते ही दासजी को भय हो आया। देह और दिमाग में झन्-झन् करता बाह्यज्ञान लौट आया।

पार होंगे कैसे?

किटमिटाकर पहले कुछ समय तक उसे देखा। पहाड़ की तरह खड़ा है। आँख घुमाता-सा धीरे-धीरे पागुर कर रहा है। यार भयंकर जंतु है, एक धक्के में पेड़-वेड़ धराशायी कर देगा!... उसका गंभीर रूप देख दासजी पेशोपेश में पड़ गए। याद आया – मेरे पहले जो दो आदमी जा रहे थे, वे कैसे गए? इस किनारे से रगड़ खाते-से निकल गए होंगे!

दासजी साहस कर आगे बढ़े!

साँढ़ सूत भर भी नहीं हिला। उसे पार करते समय पीछे से पूंछ पर थाप देते हुए दासजी कहने लगे...

"अरे सरक! रास्ता दे बाबा, ऐसे क्या खड़े हो गए?"

"ओः, कैसा जंतु है ससुरा! टस से मस नहीं होता।"

फूल बेलपत्रों की दुकानों की कतार लगी है। भोग भी सजाकर रखा गया है। दासजी गीली धोती पहने हैं, गीला गमछा बाँधे हैं। खुला वदन है। दोनों ओर के दुकानदारों ने उन्हें देखकर आवाज नहीं लगाई। जान गए कि ऐसे आदमी के पास पैसा नहीं होता और वह कुछ खरीदता नहीं है।

दासजी भी सिर नीचा किए चले जा रहे हैं। "दो पैसे के फूल नहीं मिलेंगे?... अच्छा छोड़ो!... न मिले तो क्या हो गया उससे। भक्ति से जलधारा छोड़ने पर क्या उन्हें नहीं मिलेगी!"

इसी समय, सिंदूर का तिलक लगाए हैं, एक बूढ़े दुकानदार ने पता नहीं क्या सोचकर आवाज लगाई। एक बार, दो बार, तीन बार उधर पुकारा तो दासजी ने उधर सिर उठाकर देखा। उन्हें आवाज देगा, ऐसा कोई आदमी तो यहाँ नहीं। बूढ़े ने बहुत अमायिक भाव से दासजी को हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। दासजी संदेह में पड़कर आशीर्वाद भूल गए। उसने अत्यन्त संभ्रम हो कर एक ठूंगे में कुछ फूल, बेलपत्र, भोगादि भर कर बढ़ा दिया।

दासजी बहुत असुविधा में पड़े। खाली उसके मुँह की ओर देख हँसने लगे। वह क्या समझा, पता नहीं, पर कहा – "महाशय, यह सब विश्वनाथ जी पर चढ़ा दीजिएगा।... आप पैसों के बारे में कुछ न सोचिए। आप जैसे सज्जन के हाथ से विश्वनाथ जी को संतोष आ जाए तो इससे बढ़कर हमारा क्या सौभाग्य हो सकता है?"

दासजी ने सोचा इस पर कुछ कहना निष्प्रयोजन है और आगे बढ़ गए। दस कदम गए ही होंगे कि और एक दुकानदार ने ठूंगे में फूल-पत्तर नैवेद्य भर कर क्या कुछ कहते हुए बढ़ा दिया।

एक हाथ में जल का लोटा। दूसरे हाथ में इतनी सारी चीजें पकड़ी नहीं जा सकती। दासजी ने गमछा खोल एक किनारे यह सब बाँधा और चल पड़े।

और जाना भी तो सहज नहीं। ज्यादा से ज्यादा दुकानदारों ने भोग लेकर रास्ता रोक कर उनके पल्लू में बाँध दिया। अंत में स्वतः एक दुकान के सामने पल्लू फैला कर खड़े हो गए। "क्या हुआ? अंत में भीख माँगी!"

इसके बाद क्या सोच कर पल्लू बंद नहीं किया और वैसे ही फैलाये रास्ते के बीच में खड़े हैं। "खुद तो यार सब कुछ दान कर पुराना भिखारी बना हुआ है। घर-घर घूमता होगा। उसके पास और भला आदमी बनकर कोई जाएगा? सब को वैसे ही थाल लेकर जाना होगा।

बड़ा आमोद लग रहा है। दासजी वैसे ही खड़े हैं। आगे-पीछे दुकानदार आकर डालने में लगे हैं। अंत में किसी ने लाकर नई-सी टोकरी रख दी। लोगों ने उनकी झोली से छुआकर उस टोकरी में रखना शुरू किया। और और अधिक लोग घेरने लगे। दासजी वैसे ही अवाक्-से खड़े हैं। स्त्री-पुरुषों की कतार लगी है। उनके चारों ओर भीड़। आधे उन्हें सुरक्षित रखने के लिए भीड़ को धकेल रहे हैं। हल्ला-गुल्ला, हो-हा के बीच आने-जाने के बीच उन्हें लगा जैसे सब उन्हें सिर झुकाकर फूल चढ़ा रहे हैं। बड़ी अजीब बात है! अरे रे! ये सब क्या बाया हो गए? दासजी ने आगे बढ़ने का उपक्रम किया। पैरों पर हाथ भर ऊँचा ढेर लगा है। जायें कैसे? उस भीड़ में से मजबूत-कद्दावर लोगों ने मिल रास्ता बना दिया। दासजी शून्य की ओर देखते हुए कदम बढ़ाते गए।

विश्वनाथ का कैसा अपूर्व रूप वे देख रहे हैं! प्रत्येक भक्त उन्हें नया-नया दिख रहा है। धुँधलके में सौ-सौ आदमी एकाकार होते-से। किसी में छाया आने पर लोग घेर कर झूम उठते हैं, अंत में मालूम नहीं पड़ता, वास्तव में किस में छाया आई है? दासजी के चारों ओर वैसा ही लोकारण्य। पर वे बिना बोले एक नजर से देखते हुए चले जा रहे हैं। और समय होता तो दासजी चिहुँक उठते, भय से भाग खड़े होते। किंतु अब वे अपने आयत्त में नहीं। क्या कुछ उन्हें विभोर किए दे रहा है। स्वप्न देखने की तरह चल रहे हैं।

विश्वनाथ मंदिर में उन्हें खोजना नहीं पड़ा। भीड़ का बहाव उन्हें वहाँ ले गया। बाईं ओर चांदी के तोरण होकर वे अंदर घुसे। छोटे-से मंदिर पर सोना मढ़ा है। लोगों की भीड़ की सीमा नहीं।

तो यही विश्वनाथ का मंदिर है!

दासजी सोचते-सोचते जाकर नन्दी के पीछे खड़े हैं, दासजी चेतना पाने की तरह चौंक कर देखते हैं कि उनके सामने काले भँवर की तरह शिवलिंग! अभिषेक पात्र से गंगाधार की तरह क्षीरधार अनवरत झर रही है।

गठड़ी दासजी की बगल से कब कोई ले गया वे जान भी न सके। एक लय से देख रहे हैं। उनका सारा शरीर सिहर उठा, आँखें मुंद-मुंद आईं, वे वृषभ पर गिर पड़े।

काफी समय बाद मंदिर में भीड़ कुछ हलकी पड़ी। विश्वनाथ के सामने पंचमुख महादेव के मंदिर से पण्डितजी निकले। ध्यानमंग्न आँखें अभी तक पूरी खुली नहीं। चारों ओर नजर घुमाई, मानो स्वप्न से उठा आदमी खोया-खोया सा देखता हो। देखा दासजी चेतनाहीन हो गए हैं!! घटना समझने में उन्हें थोड़ा समय लगा। पूछताछ करने पर जब पता चला कि उन लोगों ने मिलकर दासजी को संत मान लेने का विचार कर लिया है, उन्हें बड़ी विषमता का बोध हुआ। किसी ने दासजी को पाटम्बर पहना दिया है। वे अत्यन्त असहाय भाव से सो गए हैं। पण्डितजी हाथ लगाकर कुछ देर बैठे रहे। कितनी ही देर बाद दासजी की आँखें खुलीं। बहुत थके-से दिख रहे थे। पण्डितजी को पास बैठा देख किंचित मुस्करा दिए। "बड़ी दुर्दशा हो गई पण्डितजी! आप तो आगे निकल आए। रास्ते में मेरी अवस्था के बारह बज गए। इस ओर सिर के अंदर गोलमाल लगी हुई है, कुछ भी अच्छी तरह देख नहीं पाता। उसके बाद रास्ते में जो सबकिया और आपको क्या कहूँ? बहुत आश्चर्य होता है पण्डितजी, यहाँ के लोग बाया हो गए?"

दासजी के लिए काशी नई है!

पर पण्डितजी जानते हैं कि कितना अद्‌भुत् है यह शिव क्षेत्र और यहाँ लोग जीना-मरना सहज भाव से ग्रहण करते हैं। जीवन की पोथी यहाँ खुली पड़ी है, आमूल-चूल पन्ने-पन्ने अध्याय खुले हैं। पर एक पतली-सी डोर सबके बीच बाँकी-टेढ़ी होकर सोई हुई है। काशी में सब कुछ संभव है।

वहाँ नित्य प्रति एक संत का आविर्भाव हो सकता है। नहीं तो एक आदमी को संत बना देने में कितनी घड़ी लगती है। यह सब यहाँ के लोगों के अद्‌भुत स्वभाव का गुण है। काशी वासी मात्र भोले हैं। सब उस भूतनाथ के टोले के लोग हैं। दासजी का सीधा-सादा चलन और रूप-सज्जा देखकर उन्हें शायद वैसे ही समझ गए हैं। इसमें विचित्र और क्या है? पर गंगा धार में सूखे पत्ते की तरह साँय-साँय करती घटनाएँ भी घट जाती है। सबेरे का एक भी भक्त दासजी के पास न होगा। मन ही मन सारी बातों पर विचार कर पण्डितजी ने पादुक के लिए दासजी का हाथ खुला किया।

दासजी की चुल्लू में पंडे ने बेलपत्र के साथ किंचित पादोदक दे दिया। पुराने अभ्यासवश दासजी के मुख से निकल पड़ा – "अकाल मृत्यु हरणं, सर्व व्याधि निवारणं...।"

मंदिर के पिछवाड़े पुराने मंदिर होकर पतला-सा रास्ता, उसके बाद खुली सड़क पड़ी है।

दोनों कुछ दूर जाकर इधर-उधर देखते हैं कि कहीं से आकर एक घोड़ा-गाड़ी जुट गई।

धर्मशाला में जा हाथ-मुँह धोकर स्वस्थ न होने तक पण्डितजी बहुत गंभीर बने रहे। दासजी मन ही मन तब तक डर गए। यह दुरवस्था की, इस तरह के आदमी की! प्रयाग से आते समय थैले में कुछ केले और अमरूद थे उन्हें खोल कर दासजी ने रखा। धर्मशाला के बाहर एक मिठाई की दुकान – वहीं से कह कर कुछ जलेबियाँ और मिट्टी के दो बर्तनों में आध-आध सेर मीठा दूध लाकर रखा।

इसके बाद स्वयं हाथ-पैर धो आए। मुँह पोंछने की सोची तब तक सर-सराहट के साथ पाटंबर खिसका। दासजी के चेहरे का रंग बदल गया। उसे कंधे से उतार कर अपने कंबल के ढेर पर रख दिया।

पण्डितजी यहाँ आकर हँस पड़े।

"दासजी क्यों, अच्छा पाटम्बर का जोड़ तो पा गए और क्या? आपका अपना जोड़ कहीं गया नहीं है, मैं ले आया हूँ। अच्छा, यह सब क्या घट गया कहो तो? नहीं तो, बैठो, बहुत देर हो गई, पहले थोड़ा-बहुत खा पी लें। मुझे तो भूख लग आई है। अरे वाह! देखता हूँ विश्वनाथ की कृपा से आज का दिन तो बहुत अपूर्व है! यह ताजा जलेबी कहाँ से जुगाई संत महाराज!"

"उसे अभी तक पैसे नहीं दिए हैं। उसे संकेत से बताया कि हम भीतर हैं। पैसा दे देंगे। उसे सुसरा समझा या नहीं, मूँछें टेककर हँस पड़ा। सिर भी हिलाया – मैं ले आया।"

"अच्छा, पैसे के लिए इतनी भावना, पहले यह बताओ कि संत कैसे बने, जरा सुनें!"

"मेरी याददाश्त में कुछ हुआ है क्या? मुझे तो भोर से कैसा भ्रम घेरे हुए है कि सपना देखता-सा अचानक चीजें देख-देख कर मैं एकदम झनझना गया। और रास्ते में जो किया भले आदमी को जादू-सा लगेगा। अपनी बात क्या कहूँ? पर महाराज, जो भी कहिए, इस क्षेत्र के लोगों में भक्ति का अंश है। नहीं तो क्या ऐसे बाया हो जाते?" पर सपने की बात कहने पर पण्डितजी का मन उधर जाता ही नहीं। एक लय से स्थिर हो एक ओर देखते रहे। दासजी कुछ कहे बिना चुपचाप खाते रहे।

कितनी देर बाद पण्डितजी ने निःश्वास लेकर कहा, "समझे दासजी प्रभु की आप पर असीम कृपा है। देखा जाय अब वे किस ओर धार मोड़ते हैं। अच्छा, अभी कैसा लग रहा है?"

"नींद टूटने पर भोर की हवा में जैसे ताजगी लगती है, वैसा ही स्पष्ट लग रहा है। अकारण ही खुशी लग रही है।"

"मुफ्त में पाटम्बर मिल गया, खुशी नहीं लगती?" कुछ मजाकिया स्वर में पण्डितजी ने परिहास किया।

दासजी हँस पड़े।

कई दिनों के बाद खुले मन की हँसी थी यह।

मन में जंग खाये लौह कपाट मानो अपने आप कें-कें करते हँसी में खुल गए हों। फिर एक बार बंद हो जाने का उपाय नहीं। रिम-झिम वर्षाती रात में आग की लपटों की तरह आँखें कर पसीने-पसीने होकर कई भूत-प्रेत उन्हें धक्का न दें तो क्या ये सहज ही बंद होंगे? पण्डितजी जान गए कि दासजी के मन में भोर उतर आई है, और उन सब का भय नहीं है।

हँसने के बाद दासजी ने कहा – "अच्छा पण्डितजी, मुझे यह किसने पहनाया? देखा, कैसे बाँयी लांग टांगी है? सच, इतनी देर तक पता ही न चला। अच्छा उलटा-पुलटा आदमी बना!

झटपट थोड़ा-बहुत खा-पीकर वे उठे, लांग बदलने के लिए। दोनों हँसते-हँसते लोटपोट।

अंत में दासजी बरामदे में चले गए, वहीं गमछा पहन कर बदलेंगे। पण्डितजी कुछ समय तक उधर ही देखते रहे। समझ गए कि धर्मयुद्ध के विराम के बाद कालरात्रि भी बीत गई है। युद्ध भूमि पीछे छोड़ते हुए कृष्ण अकेले लौट रहे हैं। होम-धूम से मुँह जरा थका-सा दिख रहा है। श्रम बिन्दू गिर रहे हैं। सोच रहे हैं अब द्वारका लौट जाना ठीक होगा। किंचित अलसाई-सी हँसी मुँह पर आती है, नहीं भी आती, इसी तरह!...

पण्डितजी ने सुना कर कहा, "दासजी अब वृन्दावन चलें!"

कहकर उन्हें जरा आमोद लगा। मन ही मन हँस रहे थे, दूध पी रहे थे।

# चलो रे मन वृन्दावन

"क्यों दासजी, बहुत खुशी लग रही है?"

"ओः, कैसी जगहें हैं ये भी, पण्डितजी! रेल चलते समय इस क्षेत्र को सिर्फ देख रहा हूँ... कैसे समुद्र की तरह समतल हो गए हैं ये सब। कहीं जरा-सा भी गड्ढा या ढेर नहीं दिखता। यहाँ का पानी, पवन, माटी कितने कितने निर्मल लग रहे हैं! देखिए न... नहीं तो क्या यों ही सारे तीर्थ उत्तर में इकट्ठे होते। आहा, बड़ा पुण्यवान होगा, तभी तो आदमी को इस क्षेत्र में जन्म मिलता होगा!

दासजी के मन में ज्वार उठ रहा है। वे जो देख रहे हैं उसे अपना लेते हैं, उसमें रम जाते हैं। उनकी आँखों को सब कुछ सुंदर ही सुंदर लग रहा है। डूबते सूर्य का बिखरता आलोक कस्तूरी के कणों की तरह उनके अंदर झर रहा है। माटी की सजीव ऊष्मा उनकी देह भर में व्याप जाती है, उन्हें रंग देती है। हू-हू कर बहता पवन सहज भाव से उनकी पंचवायु के साथ मिल जाता है। चारों ओर अपनत्व का स्पर्श पाकर उल्हास-सा भर जाता है। उल्हास का ज्वार हृदय में हिलोरें ले रहा है, फेनिल हो रहा है, आकर दासजी के मुँह पर, आँखों पर धार के रूप में टूट पड़ता है।

पण्डितजी को भी काफी खुशी लग रही है। विभोर होकर वे एक लय से संध्या की अपूर्व शोभा देख रहे हैं।

रेल के डब्बे में वैसी भीड़ नहीं है। वहाँ जो कुछ लोग बैठे थे दासजी ने एक-एक कर उन्हें देख डाला। बच्चों को खिलाते समय मुँह जैसे रुआँसा-रुआँसा हो जाता है, वैसा ही लगता है। उनकी आँखों पर स्नेह का रंग चढ़ा है। कितने सरल और निर्माया हैं ये लोग! वह जो आदमी है उम्र में ४५-५० का होगा। इतने बड़े गोरे चेहरे पर फरफराती मूँछें। कितना धीर-शान्त आदमी है! कुर्ता पहने बैठा है जिसमें गले तक बोताम लगे हैं। कितना सुंदर लग रहा है! और उस बच्चे की टोपी के नीचे से चूहे की पूँछ की तरह चोटी लटक रही है। मैली-सी धोती को कैसे उलट-पलट कर बाँधा है, पर वह भी कम, फब रही है उस पर। वाह! साल के खूंटे की तरह कद्दावर है। दासजी श्रद्धा सहित सबको देखते जाते हैं। और पण्डितजी भी बाहर से आँखें खींचकर दासजी को उतनी ही श्रद्धा से देख रहे हैं। सोच रहे हैं।

दासजी की रुचि-अरुचि सब मर गई-सी लगती हैं। स्वतः– स्फूर्त श्रद्धा के प्लावन में भेद-भाव को स्थान नहीं। उन्हें सब कुछ सुंदर-मनोमय दिख रहा है। किस अद्‌भुत भाव से विभु कृपा इन्हें खींचती ले जा रही है! देह भाव छोड़कर अतीन्द्रिय तूर्यभाव पाने के लिए कितना तप करना पड़ता है! पर दासजी को तो बस एक और सीढ़ी चढ़नी है। इसके बाद अखंड सृष्टि में चिन्मय पुरुष से साक्षात्कार हो जाएगा।

दासजी को पण्डितजी बारंबार देखते हैं। बार-बार विस्मय से

पुलकायमान हो जाते हैं, रोमांच हो आता है। सोचते हैं, "आत्मा के शुद्ध संस्कार पर यह केवल अवारित कृपा झर रही है।"

इसी चिंता में प्राण डूब कर पुनः पुलक हो रही है। उन की आँखों में ऐसी एक प्रसारित दृष्टि। मुँह पर अभी खिल जाएगी, झर पड़ेगी, वैसी हँसी और रुलाई की नरम घनघटा छायी है। पण्डितजी उन्हें जितना ही देखते हैं, उतने ही विभोर, उतने ही विचलित हो रहे हैं। उतनी ही श्रद्धा बढ़ती जा रही है।

दासजी जी हठात् उठ खड़े हुए। देह में मकड़ी जाल लग जाने पर जैसा लगता है, वैसे हो झाड़ने लगे, मानो उनके हाथ पैरों में सैकड़ों तंतु उलझ गए हैं। दोनों पैर झटक दिए। सिर पर दसों अंगुली से खुजला हँसते-हँसते अपने साधारण गले से कहने लगे -

"बड़े आश्चर्य की बात है, मैं क्या सचमुच पागल हो जाऊँगा ना क्या! मुझे बीच-बीच में ऐसा क्यों लगता है? मेरे हाथ-पैरों से जीव निकल गया - सा लगता है। जैसे कोई मुझे बटोर कर कहीं गहरे अंदर खींच ले जा रहा है। आँखों के सामने की चीज धुँधली होती जाती है। मुझे लगता है जैसे मैं खोखला होता जा रहा हूँ। मेरे अंदर मानो कोई अकूत शून्य होता जा रहा है। मैं कह नहीं पा रहा हूँ, मन ऐसा लगता है जैसे कहीं और भ्रमने पर कुछ दिखता नहीं, कुछ सुनता नहीं। कहीं खो गया-सा लगता है।"

पहले की तरह हँस रहे हैं। अपनी सीट पर पुनः बैठते हुए लज्जित-से होकर पण्डितजी से कहने लगे - "मेरा अंदर भर-गया-सा हिलोर लेता लग रहा है। पण्डितजी, यह असंभव बात किसे कहूँ? मुझे लगता है अब अधिक दिन नहीं रहे।"

पण्डितजी बिना कुछ कहे उन्हें मुस्काते-से देख रहे हैं। यह जानकर दासजी को लाज-सी लगी। उन्होंने एक हाथ से सिर खुजलाया और दूसरे से थैले में बटुवा निकाला। बहू ने दो-चार टुकड़े मसालेदार कत्थे के रख दिए थे। खत्म होने को आए।

सरौते से सुपारी कुतर चूना लगाते समय दासजी को पहले की बातें याद हो आती हैं। पर उस दिन उनका मन शायद उधर नहीं गया। जहाजी सुपारी सफेद झक दिख रही है। उसमें से कुछ लेकर तीनों पानों पर रखते समय हवा के झोंके की तरह टुकु मा की बात उनके मन में भँवर काट कर चली गई। जमीन से धूल और पुराने सूखे पत्ते साँय-साँय करते ऊपर उठ आए। पर तुरत सब शान्त हो गया। एक पान मोड़ कर मुँह में डाल लिया बाकी दो को मोड़ कर बटुवे में रख दिया।

"समझे पण्डितजी!"

देखा पण्डितजी वहाँ नहीं हैं। दिन छुपने का समय हो आया अतः शौच के लिए उधर गये हैं। दासजी उठ कर खड़े हुये। खाली डब्बे में इधर से उधर थोड़ा टहल लिया। पीक बाहर फेंक कर अपनी जगह पैर फैला कर बठ गये।

दासजी बाहर देख रहे हैं। हल्की सी ठंड बढ़ती आ रही है। सच, संध्या इस राज्य में कितनी कोमल और कितनी सुंदर है! वाह, तो क्या यह रेवड़ के लौटने का समय नहीं है? गोप की गायों के पीछे-पीछे चरवाहे छोकरे घर लौट

रहे होंगे। उसमें शायद पतली वंशी का स्वर गूंज उठता होगा। दासजी की आँखों के सामने सूवे के पंख से हरे खेत पर महू-शहद की धार की तरह संध्या का प्रकाश धुंधलाता गया और क्रमशः अदृश्य हो गया।

वे आँखों पर पलक गिराये बिना वैसे ही देखते रहे। कितनी देर बाद अनजाने ही गा उठे-

कृष्ण दर्शन, आशे उछन्न, होइ शफलासुत।
साजिला रथ, जोचिला अश्व, हेजिला जिबा पथ।
बागदउड़ि, देइण छाड़ि, जा बोलि देला चालि।
चक्षु मटके, अति छटके, मथुरा सीमा बलि।
करे गमन, अति शोभन, दिशइ रहुबर।
जहिंरे बिजे, देबंक राजे, करिबे मधुपुर।
कंस डगर, करे बिचार, धन्य होइलि आज।
धन्य मो तात, धन्य मो तात, देखिबि देबराज।
धन्य रे नेत्र, हेबु पबित्र, चाहिं जलदतनु।
नंदर कोले, गोपाल मेले, बसि थिबे जे कान्हु।

दासजी और आगे नहीं गा पाते। आँखें मूंदे सिर्फ अंतिम दो पद रट रहे हैं।

"धन्य रे नेत्र, होंगे पवित्र, देख जलद तनु।
नंद की गोद, गोपालों के बीच, बैठे होंगे कान्हु।।"

आहिस्ते-आहिस्ते नींद उतर आने पर रोते हुए बच्चे की सुबकियाँ धीमी पड़ी जाती हैं, दासजी का स्वर उसी तरह मंद होता गया।

पण्डितजी ने आकर देखा तब तक दासजी सो गए। आँखों के कोनों पर एक-एक बिन्दू आँसू आकर अटक गया है। मुँह के एक कोने से पीक की हल्की-सी धार बह आने को है। उस ओर निचली पंक्ति में से चार-छः दाँत जो झर चुके हैं, दासजी के!

पण्डितजी कुछ क्षण दासजी के शरीर को श्रद्धापूर्वक देखते रहे। इसके बाद वहाँ से दृष्टि हटाकर पालथी मारकर बैठ गए। डब्बा प्रायः खाली हो चुका था। ये दोनों भी न होने की तरह बैठे थे।

घुँ घुँ करती रेल अंधकार में धँसती चली जा रही थी। निश्चल होकर सोयी थी रेल की पटरियाँ। उस पर चोट करते-करते चले जा रहे थे। पंक्ति-पंक्ति लोहे के चक्क। चक्कों के वेग से डब्बे दहल रहे थे। दासजी का अंग-अंग हिल रहा था। पर पण्डितजी उसी तरह काठ से स्थिर बैठे थे। रात हुई, बत्तियाँ जली, फिर भी दोनों पहले की तरह बैठे हैं।

काफी देर बाद जाकर रेल एक स्टेशन पर रुकी। लोगों का वहाँ क्या कहें! उसी डब्बे में घु घु कर बक्सा-बेडिंग खींच-खींच कर तीस-बत्तीस आदमी घुसे। बुलाना, पुकारना, हो-हल्ला, खींचा-तानी में पण्डितजी ने तनिक अस्वस्ति का अनुभव किया। और आहिस्ते-आहिस्ते उनका ध्यान भंग हो गया। सब को देख एक कोने में दुबक गए और वहीं निःश्वास फेंक कर फिर आँख मूंद ली।

पर दासजी वहाँ वैसे ही बैठे थे। लोगों की क्या धारणा हुई पता नहीं, किसी ने उन्हें वहाँ से उठाया नहीं कि आवाज लगाई नहीं। वैसे ही तिरछे-

तिरछे होकर खड़े रहे। उनमें एक दो पैरों की ओर जाकर संभ्रम के साथ बैठ गए। गाड़ी चल पड़ी, बातचीत भी उसी अनुपात में कुछ कम हो गई।

पण्डितजी धीरे-धीरे शरीर की चेतना में लौट आए। चारों ओर निर्विकार देखते रहे। मन ही मन तनिक मुस्का रहे थे। देखा – चालीस-पैंतालीस की उमर का कोई आदमी उनके पास खड़ा है। तुरत जगह थोड़ी खाली कर बैठने को कहा। वह काफी उपकृत-सा लगा। बैठते ही चिर-परिचित की तरह बात करने लगा। पण्डितजी ने बातचीत से जाना कि गाड़ी रात नौ बजे तक मथुरा पहुँचेगी ... तो अब अधिक से अधिक दो घण्टे रहे।

दासजी उस ओर के पट्टे पर चेतनाहीन होकर पड़े थे। रुण्ड-मुण्ड, खुली देह। सफेद झक् नौ तारवाली जनेऊ चमक सी रही थी। हृदय और मस्तक पर सुबह का चंदन अभी तक लगा था। आँख के कोनों पर डबडबाते एक-एक आँसू की बूंद उसी तरह दिख रही थी। इतने भीड़-भड़क्के में भी दासजी उसी तरह पैर फैलाए सोये थे। पण्डितजी ने एक बार उन्हें देखा। उन्हें देखते ही लगता है जैसे हर्ष-विस्मय मिल कर उनके अंदर उलट-पलट हो रहे हैं। सच, मानो कह रहे हैं, अच्छे संस्कार पाता आया है इन का मन। नहीं तो क्या इस तरह हू-हू धुल जाता?

वे खुश होकर दासजी को देख रहे थे। सोच रहे थे, दासजी के लिए शुभ हो गया।

कई बातों के प्रसंग में दो-चार बार 'मथुरा' शब्द दासजी के कानों में शायद पड़ा। कैसे अंदर तक भेद गया ना क्या, दासजी ने चौंकते-से हाथ-पैर हिलाकर आँखें खोल दी। हड़बड़ा कर उठ बैठे और चारों तरफ आँख फाड़ कर देखने लगे। आँखों पर स्वप्न उसी तरह छाया है। उनकी विह्वल अवस्था देखकर पण्डितजी ने उनका हाथ पकड़ फिर बैठा दिया।

"मुँह धो लीजिए, असमय में सो जो गए!"

पण्डितजी की आवाज पहचान आँख मलते दासजी ने कुछ समय उधर ही देखा। कुछ देर बाद उन्हें दिखाई पड़ा। मुँह खोल कर कहा – "जी, आपके लोटे में थोड़ा पानी होगा? थोड़ा पी लेता।" पण्डितजी ने लोटा निकाल कर आगे बढ़ा दिया।

बाहर की ओर मुँह कर दासजी ने दो चुल्लू सिर पर छींटे। मुँह धोकर बाकी पानी पी गए और फिर दीवार के सहारे टिक कर बैठ गए।

पण्डितजी ने उन्हें सुनाते हुए कहा – "अगला स्टेशन मथुरा है।"

दासजी ने पण्डितजी की ओर देख भर लिया। जरा चंचल-से होकर बटुवे से और एक पान निकाल कर मुँह में डाल लिया। किंचित हँस कर कहा, "इस संध्याबेला में सो गया! आप तो शौच के लिए अंदर चले गए। मैं अकेला बैठे-बैठे 'मथुरा मंगल' बोल रहा था. कब सो गया, पता ही नहीं। बड़ा अद्भुत स्वप्न भी देख लिया।"

"आप का कोई स्वप्न तो अद्भुत हुए बिना होता नहीं।" अत्यन्त आमायिक ढंग से हँस पण्डितजी ने अपना आग्रह प्रकट किया।

"नहीं, महाराज, यह तो सचमुच अद्भुत् है। मुझे दुर्लभ देव-दर्शन हो गए। मुझे स्वप्न में लगा जैसे गरुड़ के पीछे खड़ा हो जगन्नाथ जी के दर्शन कर रहा

हूँ। आदि से अंत तक उसी निर्मल रूप से दर्शन कर रहा हूँ। गंभीरों में से वे तिरछे देख रहे हैं। वहाँ आप भी हैं ऐसा लग रहा है। मैं आप को लेकर बाईस पावछ लुढ़क पर रहा हूँ। और हम दोनों खाली हबक-हबक कर रो रहे हैं। एक दक्षिणा औरत विभोर होकर नाच रही है, और ऊँचे स्वर में कह रही है – 'अनिमेष, अनिमेष', ओह! एकदम जीवन्त स्वप्न था महाराज! मेरी प्यास और भी मिटी नहीं!"

"स्वप्न में देव-दर्शन बहुत शुभ लक्षण है। और वह जो अद्‌भुत नाम लेकर पुकार रही थी वह जगन्नाथजी या चैतन्य महाप्रभु का गुणवाचक अनिमेष है। वाह, गुण मंत्र दान हुआ-सा लगता है। अच्छा, दासजी आपकी गुरुदीक्षा हो गई?"

दासजी इस प्रश्न के लिए प्रस्तुत न थे। अतः चौंक उठे। तनिक अप्रतिभ होने पर भी कुछ लाज भरे-से पण्डितजी के मुँह की ओर बिना देखे बोले– "वह सौभाग्य क्या सहज ही मिलता है?"

पण्डितजी ने भी उसी बात को दोहरा दिया।

"बात ठीक है। भाग्य बिना उपयुक्त गुरु मिलना कठिन है। यदि हमारे सुकृत हैं तो इस पुण्यपीठ में किसी से हम दोनों दीक्षा ले जाते।"

आश्चर्य में भर दासजी उन्हें देखते रहे। मन में सोच रहे थे – तो पण्डितजी आपने अभी तक गुरु नहीं किया! मैं तो सोच रहा था इन्हें गुरु बनाने की। अब योग आया है कि हम दोनों किसी गुरु का आसरा लेंगे। पर मुँह खोल कर कुछ कहा नहीं।"

मथुरा स्टेशन।

रेल डब्बे के सब लोग उठ खड़े हो गए। अपना-अपना सामान-पत्र लेकर उतरने को तैयार हो गए। दासजी जी भी अपना थैला लेकर खड़े हो गए। और कौतूहल से देख रहे हैं। कितनी रोशनी, ढेर सारी, पंक्ति-पंक्ति, दूर तक।

गाड़ी ठहरने पर सब उतर गए।

पण्डितजी मथुरा की गली-गली से परिचित हैं। वे खूब परिचित भंगिमा से चारों ओर देख रहे थे। पर दासजी बाहर आते ही चमचमाते बिजली के प्रकाश में कुब्जा, अक्रूर, उद्धव आदि को मन ही मन खोज रहे थे। पर वहाँ दिख रहे थे असंख्य मोटर, घोड़ा-गाड़ी और विराट भीड़। फिर उन्हें सब कुछ सुंदर दिख रहा था, अच्छा लग रहा था। यह कितनी पवित्र माटी है, कितना पुण्य क्षेत्र है! नीचे से धूल लेकर मस्तक पर लगाने को दासजी का बारंबार मन होता था।

इसी समय चीजें उतार कर दोनों घोड़ागाड़ी में बैठे। पण्डितजी ने उसे पता नहीं क्या कहा, उसने मुँह फेर देखा और सब समझ गया और घोड़े को कस कर चाबुक सटकारी। घोड़े ने अगली टाप उठाकर जो छलांग लगाई दोनों एक दूसरे को पकड़ गाड़ी में गड्ड-मड्ड हो गए। दोनों को हँसी आ गई पर तुरत संभल कर बैठ गए।

एक साथ गुरु करने की बात जब से उठी दोनों का अनजाने एक दूसरे के प्रति आदर बढ़ गया है।

दासजी ने बच्चों की तरह पूछा, "अच्छा, अक्रूर का रथ ऐसे ही घोड़ों से खींचा गया रथ तो! इसी मथुरा से तो वह रथ चलकर गया होगा! यह जो आदमी गाड़ी चला रहा है, पीछे से देखिए ना, कैसे पाट की पगड़ी पहन रखी है, क्या, यह सचमुच अक्रूर है?"

पण्डितजी भी दासजी के भावों में कभी-कभी निमग्न हो जाते हैं। कुछ कहा नहीं, सिर्फ हँस दिए।

दासजी ने तनिक रुक गला साफ करते से गाया –

कंस-डगर करे विचार धन्य होइलि आज,
धन्य मो तात धन्य मो मात देखिबि देवराज।।"

गाड़ी वाले ने पीछे मुड़कर देखा और क्या समझा पता नहीं, किंचित मुस्का दिया। मुँह फेर कर घोड़े को एक और चाबुक फटकारी।

इसी तरह गाड़ी चल रही थी हाट-बजार, भीड़-भड़क्का पार करती हुई। गाड़ी चल रही थी और दासजी भी आँख मूँदे मथुरा-मंगल के छंद हृदय से गा रहे थे।

अंत में आकर एक कम भीड़ वाले इलाके में धर्मशाला के सामने गाड़ी खड़ी हुई। दासजी गीत ऊँचे स्वर में न गाकर सिर्फ गुनगुनाने लगे। युवावस्था में जैसे चंचल होकर काम किया जाता है, दासजी उसी तरह एक छलांग में गाड़ी से उतर थैला लेकर खाली अधीर हो रहे थे। उन्हें न जाननेवाला आदमी दूर से देखने पर उनकी उम्र तेईस-चौबीस ही ठहराता। उनका मन एक अपूर्व आनन्द से भरकर बिलकुल थिर हो ही नहीं रहा था। लगता है – नया-नया ब्याहकर महीने भर बाद आऊँगा-आऊँगा कह कर ससुराल आए हैं। और ठीक उतना ही प्रथम प्रणय का आनन्द, उतनी ही आत्मीयता, उतनी ही लाज दासजी के हाव-भावों में सूचित हो रही थी।

दुतल्ले पर एक छोटी-सी कोठरी। खिड़की खोल देने पर फर-फराती ठंडी हवा घुस आई। दासजी उसी खिड़की को पकड़ कर बाहर की ओर झाँकने लगे। अंधेरे में कुछ भी नहीं दिख रहा था। अंत में दिखी कुछ दूर पर एक नदी।

दासजी ने उलट कर पूछा –

"क्या यह यमुना है, पण्डितजी?"

"हाँ, ये ही है यम की सुंदर भगिनी।"

दासजी के मन को भा गई। वे खें-खें कर खूब हँस पड़े। इस मौलिक हास्य की मौलिक उन्मादना कहाँ, यह जानना जरूर कठिन है। पण्डितजी भी कई कारणों से बहुत खुश हैं।

दासजी ने हँस कर कहा, "यह काली-कलूटी ऐसी दिख ना रही है, इसके गुण क्या कम हैं? भाई को जितना उलझाया है इसने, यह सजा इसके लिए उचित हुई है। बहुत निर्लज्ज है यमुना!"

पण्डितजी दासजी की बात का समर्थन करते से बोले – "सो तो ठीक है, पर इन सबका एक-एक गूढ़ार्थ भी है। जो भी हो, इस यमुना में सब आवरण उतार कर अपने को धो लेना पड़ता है। आत्मा को ढंककर जो खोल है, संकोच छोड़कर उसका त्याग करना होगा। उसके बाद उसी प्रकार अनावृत यौवन को एक बार अर्पण कर देने पर उधर कोई खोल देह में लगेगा नहीं।

हालांकि पण्डितजी अपनी स्वाभाविक गंभीरता से ये सब बातें नहीं कह रहे थे, पर काफी तत्त्व की बातें हैं ये सब! पर दासजी उसी तरह बच्चों की-सी हँसी हँस रहे थे। मानो लग रहे थे – अरे बाबा! यह सब ठीक है। पर क्या इतने में ही हो गया? पर दासजी इस बात को स्वयं जानकर इंगित नहीं देते, न ही उनकी हँसी में पण्डितजी इस बात का थोड़ा-बहुत संदेह कर पाते हैं। कितनी देर बाद दास जी ने किंचित संयत होते से उसी हास्य के साथ कहा - - "अच्छा ये गोपियाँ भोंदू न थी! जानती हैं कि एक हठीला गाँव में है, उन पर निगह डाले बैठा है, ताक लगाए बैठा है, निर्लज्ज! शरीर से, सिर से क्यों कपड़े उतार कर पानी में घुस रही थी? उसे मौका देने पर उसने भला छोड़ा है किसी को? ठीक छुआ है इन निर्लज्जों के लिए। उन्हें कोई लाज-शर्म है? उन सुसरियों को तो और भी सुख होगा! मन ही मन क्या यही वे चाहती न थीं? ऊपर लोग-दिखावे की ना पूँछ काट रही थी!"

इतना कह कर दासजी फिर खूब हँसे। गोपियाँ मानो उनकी एकदम अपनी हैं, उनके साथ अनेक दिनों से दासजी की हँसी-मजाक चलती है।

पण्डितजी ने अब जाकर दासजी की अस्वाभाविकता को ठीक से देखा। दासजी मानो दासजी नहीं हों, उनमें कोई और ही प्रवेश कर गया है। जैसे कोई आविष्ट प्रच्छन्न छाया आ गई है।

पण्डितजी ने सोचा, दासजी शायद अबकी बार कुल छोड़ निकल पड़े हैं। उन्हें बंशी की तान ने मोहित कर लिया है। इसे और क्या वे छोड़ पाएंगे! डोर लगने पर उसे काट देने की ताकत किस में है?

शून्य दृष्टि से कुछ समय तक दासजी को देखते रहे। इसके बाद थैला खोल बाकी दूसरे काम करने बैठ गए। दासजी भी उनकी देखा-देखी लग गए। कम्बल निकलेगी, गमछे के साथ लोटा निकलेगा, इस तरह के अनेक काम। समझो तो कुछ नहीं, पर निर्जंजाली के लिए तो उतना ही घोर जंजाल है।

इसी समय कोई उस घर में घुस आया।

"कहिए पण्डितजी, बहुत दिनों बाद आप से भेंट हो रही है!" दासजी बहुत आश्चर्य से उसे देख रहे हैं। और जरा भावना बढ़ जाती तो हँस पड़ते।

क्या किसी हाथी ने मानुष रूप लिया! इस आकार का आदमी दासजी जी ने जीवन में अबकी बार ही देखा। पण्डितजी ने दासजी की ओर संकेत कर कुछ कहा तो खंभे की तरह दोनों हाथ उठा कर नमस्कार किया। दासजी ने हड़बड़ी में कुछ आशीर्वाद भी दे डाला। इसके बाद वह पण्डितजी के साथ बैठ कर गंभीर आत्मीयता के साथ बातचीत करने लगे। दासजी सिर्फ अचकचा कर देख रहे हैं। उसके हँसते समय तखत कैसे कचर-कें कचर-कें करता और घर कमरा छत से आँगन तक कैसे हिल उठता, इसे देख रहे हैं।

बापरे बाप! यह तो ससुरा उसी कंस केशी का वंशधर होगा! उसके सामने पण्डितजी छोटे बच्चे की तरह बैठे हैं। बातचीत चलती रही। खतम होते-होते काफी देर हो चुकी थी। अंत में वह विपुल वपु बहुत मुश्किल से द्वार से निकल चले गए।

दास जी की आँखों में प्रश्न देख पण्डितजी ने स्वतः शुरू किया – "ये हैं मथुरा प्रसाद चौबे, मेरे बहुत पुराने मित्र हैं।" देखा उतना यथेष्ट हुआ नहीं।

दासजी का कौतूहल उसके नाम पर जितना नहीं, उसके अतिमानवीय शरीर पर उतना ज्यादा है।

कहा – "ये चौबे लोग चतुर्वेदी होते हैं। जाति से ब्राह्मण। पर चारों वेदों का परित्यग कर ये सिर्फ आयुर्वेदीय शरीर चर्चा में मन लगाते हैं। इनकी नींद टूटती है सूर्योदय के दो घंटे पूर्व। एक-एक कच्छा बाँध कर पहुँच जाते हैं अखाड़े में। वहाँ दण्ड-बैठक करते-करते दिन घड़ी भर चढ़ आता है। वे क्या केवल दण्ड लगाते हैं? हाथ के पास में एक ढेर भीगे पंजाबी चने, किशमिश, कच्ची गाजर और थोड़ा-सा अच्छा गुड़ मिला हुआ रखा रहेगा। सौ दण्ड निकाल कर उसमें से मुट्ठी भर, फिर सौ दण्ड निकाल कर उसमे से मुट्ठी भर, इस तरह चलता रहेगा असंख्य दण्ड और अकूत खाना। ओः... उसे आँखों से देखे बिना, दासजी विश्वास नहीं कर सकोगे! जाड़े में भी पसीना बह रहा होगा। इस तरह कई लोगों को सूँ-साँ करते और अनवरत कई लोगों को ऊपर नीचे होते देखना भी एक अजीब दृश्य है। इन सबके बाद पाव-पाव भर सरसों तेल की मालिश होगी इनकी देह में। इसके बाद मांजना खतम कर लौटते-लौटते मक्खन बिलो कर रखा मिलेगा। मुट्ठी भर पिश्ता-बदाम, और उसके साथ औटाया हुआ दूध दो तीन सेर। फल-मूल, मिठाई आदि का नाश्ता भी तैयार रहेगा। इतना-सा वे बालभोग के आकार में ठूँस कर बैठ जायेंगे। इसी अनुपात में बाकी दिनभर का खाना-पीना। भोजन हुआ इन मथुराई चौबों का सर्वश्रेष्ठ आनन्द। और स्वास्थ्य हुआ सर्वस्व।"

दोनों मिल कर हँस पड़े। पण्डितजी गमछा लेकर बाहर चले गए शौच के लिए। दासजी की आँखों से भी विस्मय और कौतूहल क्रमशः धुल गया। आहिस्ते-आहिस्ते औत्सुक्य भी मर गया। उन्होंने उस विषय में चिंता भी नहीं की। गमछा लेकर खड़े थे कि पण्डितजी आयें तो जायें।

गीत गुनगुनाते दासजी बरामदे में टहल रहे थे। हठात् उनका गीत रुक गया। देखा आकाश में आग के शोलों की तरह कृतिका नक्षत्र जल रहे हैं। आँखें टिमटिमा कर घड़ी भर तक उस ओर देखते रहे। मन में अनेकों सुप्त स्मृतियों ने करवट बदली। अतीत जी उठा। प्रायः प्रत्येक स्मृति में टुकु मा पहले की तरह पास-पास सट कर बैठने, चलने-फिरने का दासजी ने अनुभव किया। बड़ी अद्‌भुत ढंग की प्राणवंत स्मृति है वह। दासजी लड़खड़ा गए अतीत की इन बारंबार की चोटों से। मानो हतबुद्धि हो निष्पन्द भाव से खड़े रह गए। मन के अन्दर से पुनः पुराना घाव खोल छोड़ पुनः रिसने लगा। दासजी ने हड़बड़ा कर धर्मशाला के कमरे के अंदर प्रकाश की ओर देखा। सपाट सिर को पाँचों अंगुलियों से कुरेद कर फिर जरा प्रकृतिस्थ हुए। भाप वाले मेघों को परस्त के परस्त हटा कर थोड़ा-सा नीले आकाश का टुकड़ा फिर दिख गया। वे वहीं खड़े न रहकर इधर-उधर टहलने लगे। पर कहाँ मन रहता, पता नहीं कब पतला पड़ जाता। अच्छा, यह भी कोई बात हुई कि घर छोड़े इतने दिन हुए, आकर वृन्दावन में पहली बार संसार याद आ रहा है!... और इस तरह उमड़-घुमड़ कर याद आ रहा है। उन्होंने तो सोचा था कि इसे बहुत दूर छोड़ आए हैं। उसे जला कर राख भी नदी में विसर्जित कर दी है। पर वह वहीं से उठ आई है। दासजी फिर टुकु मा को देख रहे हैं। नीचे वाले

तल्ले से सीढ़ियों होकर ऊपर आ रही है। पीछे मुड़कर खड़ी होकर बरामदे में सिर पर वेणी में गाँठ डाल रही है। बात-बात पर मुँह फेर कर हँस रही है।

दासजी सिर्फ शून्य की ओर देखते खड़े हैं। पण्डितजी इसी बीच नहा-धोकर निकल आए। देखा – दासजी भौंचक होकर खड़े हैं। उनकी कुहनी पकड़ कर हिला दी। दासजी का स्वप्न टूट गया। पण्डितजी को देख उन्होंने कैसे भी अप्रतिभ-सा अनुभव किया। किंचित हँस कर स्नान घर की ओर निकल पड़े।

पण्डितजी ने उनकी आँखों में देखा। कहा – "जल्दी ही निकल आना।"

सचमुच दासजी हाथ-मुँह धोकर जल्दी ही निकल आए। गीला कपड़ा खिड़की पर रखते रखते बहुत धीमे से मानो स्वगत कह रहे हों, पण्डितजी को पूछा – "अच्छा, टुकुमा क्यों मेरे मन में आई? यह घड़ी भर हो गई सिर्फ उसी की बात फिर फिर आकर याद पड़ रही है। मन बहुत अस्थिर लग रहा है।" मुड़ कर पण्डितजी के पास आकर कहा – "बहुत दिन नीचे की बात है, तब रघू गोद में था, उसने इच्छा प्रकट की थी - ये वृन्दावन-मथुरा कैसे हैं, हम लोग एक बार हो आते! साआन्त घर की समधिन जाकर हो आई है। मैंने तब हँसी में बात उड़ा दी। बहुत संभव है उसकी आत्मा इस बात को भूली न हो, मैं यहाँ आया तो वह भी चली आई है। मुझ में प्रवेश कर वह भी वृन्दावन देख लेगी। मैं इतना अयोग्य, उसे घर से कभी निकाल, दिखा ही नहीं पाया!"

दीर्घ श्वास लेकर दासजी पण्डितजी के मुँह को देख रहे हैं।

पण्डितजी ने थोड़ा हँस कर कहा, – "छोड़िए उस बात को, दासजी, उसे ही छोड़ने के लिए तो इतनी दूर चल कर आए। और फिर किसलिए? छाया के पीछे व्यर्थ में लगे हैं?"

"नहीं, महाराज, प्रकाश में आने पर छाया को भी साथ घसीटना ही होगा।"

पण्डितजी हठात् सतर्क हो गए। दासजी में स्वतः ज्ञान का स्फुरण देख उनके मन में हर्ष-विस्मय भर गया। और देखा दासजी किस प्रकार उदास भंगिमा से देख रहे हैं। आँखों में एक खोया-खोया शान्त भाव खिल रहा है। उन्होंने परीक्षा के ब्याज से पूछा – "प्रकाश की ओर लक्ष्य रहा तो स्वतः छाया पीछे रह जाएगी, उसके लिए इतनी चिन्ता क्यों?"

"तो क्या छाया कट जाएगी, महाराज! वह हर समय लगी रहेगी तो! उस पर चढ़कर तो आदमी प्रकाश की ओर जाएगा। प्रकाश जितना पास आता जाएगा, छाया उसे उतनी ही शक्ति जुगाएगी। इसके बाद प्रकाश में मिल जाते ही छाया नहीं रह जाएगी। वह भी उस प्रकाश में मिल जाएगी।"

पण्डितजी अपना आग्रह और विस्मय छुपा नहीं पा रहे थे। दासजी का हाथ पकड़ तखत पर बैठा दिया। तुरत दासजी का मन, बुद्धि ढीली पड़ गई। वे पुनः भावरस में निगम्न हो गए। हँसते-हँसते जीभ दबाते बोले – "महाराज, मुझसे अब और न होगा। मुझे पगलाया हुआ समझ लीजिए। मेरी बुद्धि न खोती तो क्या आप के साथ शास्त्रार्थ करता? मेरा बड़प्पन देखिए!"

पण्डितजी ने सोचा, यह फिर क्या? अत्यंत जटिल मानसिक अवस्था है! मानस क्षेत्र की भित्ति-भूमि उसी मूल चेतना के स्फुरण से यह जटिलता पैदा

हुई है। ज्ञान स्वतः विकसित हो रहा है इसमें सन्देह नहीं। नहीं तो ये इतने सहज पंग्बंध सूत्र को कह डालते।

"मुझसे कसूर हो गया है, महाराज! लगता है मैं जो कहता या करता हूँ, मेरे आयत्त में नहीं है। मेरे दोषों पर दृष्टि न देंगे।"

पण्डितजी जो गम्भीर हो सोच रहे थे, हँस कर बोले – "अरे भई, नहीं-नहीं, क्या दोष किया, मेरी तो समझ में नहीं आता। प्रश्न का उत्तर देते नहीं क्या?"

इसी समय १७-१८ वर्ष का युवक एक थाली में कुछ लेकर कमरे में आया। सपाट सिर के पीछे लंबी चोटी। धोती कैसे तो भी खींच-तान कर बाँधी है जो घुटने से ऊपर उठ गई है। एक छोटी-सी फतई में गले तक बोताम लगे हैं। पैरों से सिर तक पर्त के पर्त मैल भरा था। निस्संदेह, वह धर्मशाला के उस ओर चौबेजी के होटल में काम करता है।

"चौबे जी ने भेजा है।"

पण्डितजी ने उसे तखत की ओर संकेत देकर कहा, "उधर रख दो।" उसने रखकर हथेली के पीछे की ओर नाक पोंछा और चला गया। बड़ी थाली में दो गिलास गरम-गरम दूध, दो सेव और आठ बड़े-बड़े केले।

दासजी ने उल्लासपूर्वक कहा – "वाह! देखा कितनी सुंदर कदली है! इसके साथ और क्या है?"

"ये सेव हैं, बहुत अच्छे फलों में गिनती होती है। यहाँ इसका अच्छा प्रचलन है। अच्छा, तो खाकर सो जाने से तो चलेगा।"

"अच्छा!"

खाकर दूध पीने की बात। दासजी पीने में हिचकिचाए – "इस पर गरम दूध पीने पर पेट में घूम-फिर कर उल्टी हो जाएगी।"

"अरे, नहीं जी! आप पी लीजिए, कुछ न होगा। यहाँ सब ऐसे ही पीते हैं।"

दासजी जी ने बड़ी कठिनाई से उतना पीया और दो पान लगाए। बत्ती बुझा कर सोते-सोते बहुत देर। पण्डितजी किंतु बच्चे की तरह लेटते ही सो गए। दासजी को नींद नहीं आती। आँख मूँदे पड़े हैं, आकाश-पाताल की हजार चिंताएँ मन में आती। कहाँ से लुढ़का-बुढ़का कर कहाँ लाकर पटका! यही बात वे सोच रहे हैं। समुद्र की लहरों पर खाली नारियल की तरह अनायत्त में चढ़ते आ गए हैं। गरज-तरज कर समुद्र उथल रहा है, उमड़ती लहर पर लहरें आ रही हैं। अष्टकाली, बारहमासी जरा भी धीर नहीं धरती। बड़ा अस्थिर, अबूझ, अशान्त है। पर दासजी को लगता है जैसे दूर से आती लहरों के नीचे हथेली रखकर उन्हें अथाह जल से सींच ला रहा है। कूल पर लाकर अंत में डाल देगा तो? समुद्री पानी में रह कर उनकी नस-नस में खारापन घुस गया है। वे एक अस्थिर झूले से ऊपर-नीचे होकर संसार की हानि-लाभ में कस देते हैं। भुरभुरी सूखी बालू पर निश्चल उन्हें डाल देने पर वे संभाल सकेंगे तो?

दासजी को लगता है, उन्हें सच जैसे कोई हथेली उठाकर ऊँचे उठा रहा है। नहीं तो वे कहाँ और यह कालिन्दी कूल वृन्दावन कहाँ? घर से पैर

निकालना जिसके लिए मुश्किल था, वह क्या अपने आप यहाँ पहुँच जाता? उसी क्षण भावों का ज्वार प्राणों में उथल पड़ा। मुद्रित आँखों के कोनों से गरम-गरम अश्रुधारा बह चली। रुक-रुक कर सारी देह काँप उठती। दासजी के मन में सिर्फ वही पद उमड़-घुमड़ कर आता –

धन्य हे नेत्रो, होगें पवित्र, देख जलद तनु।
नन्द की गोद, गोपालों के बीच बैठे हों कान्हु।

उनकी साँस तेजी से आ जा रही थी। आँखों से अश्रु झर रहे थे। पेट में कोह उठ रही थी, होंठ काँप रहे थे, रोम-रोम खड़ा हो गया।...

इसी समय धर्मशाला के नीचे रास्ते पर एक घोड़ागाड़ी सरपट चली गई। घोड़े की टाप, रात की निस्तब्धता में उन्हें लग रहा था, जैसे द्वापर युग में अक्रूर का रथ देख रहे हैं।

सफेद-सफेद अगस्ति फूल-से दो घोड़े। पलक मारते ही बिजली की तरह उड़ जायेंगे। पाट की पगड़ी बाँधे अक्रूर बैठे हैं। अच्छा, वे रो क्यों रहे हैं? क्या, रोयेंगे नहीं? न रोने पर उन का हृदय संभालेगा? धार की धार आँसू कान तक बह रहे हैं। दासजी को गरमी लग रही है। उन्हें लगता है जैसे उस पाग के पल्लू से आँसू पोंछ डालेंगे! नहीं सकते। घोड़ों को हाथ लगा 'चल' कह कर बढ़ गए। कदम्ब की महक उनके अंदर तक भर जाती है। उनकी देह की शाखा-उपशाखाएँ उल्लसित हो उठती हैं। डालियाँ-पत्ते निकल आए हैं। सारी देह में जैसे काँटे-काँटे होकर लाखों कदम्ब खिल गए हैं। उनके पाँवों तले अपरिचित फूलों के ढेर की पंखुड़ियों-सी कोमल ब्रजधूलि। उसी की देह से क्या यह चंदन, कपूर की सुगंध आ रही है? जहाँ तक आँख जाती है, सिर्फ कुंज। कहीं जूही के फूल झुक रहे हैं तो कहीं मल्ली की लताएँ। किस ऋतु के, कौन-से फूल, वहाँ नहीं हैं! पर इतना सुनसान क्यों हो गया है यह कुञ्ज? मुझे देख कर क्या सब छुप गए?

आह! कितना साँवला है इस कालिन्दी का पानी! यहाँ दह है, लहरें बिलकुल नहीं। देख रही हो, रघू की माँ, ये सब जगहें कितनी पवित्र हैं? कितना पवित्र स्थल है! "अजी इसमें दो डुबकी लगा लें? सिर डुबोते ही सारे पाप छूट जायेंगे! मैं कहता हूँ, तुम औरत जात, हर बात में कसर। अरे, देखो, पहले! यह मन में घुस जाए, फिर सिर डुबाने में कितनी देर लगती है! देखा, इतने में ही मुँह सुखा लिया? अरे चलेंगे, हमारी क्या उम्र हो गई? यह रघू बड़ा हो जाए, चलेंगे। आओ, मेरे पास तो आ जाओ।...

तखत पर बुदबुदा कर दासजी ने करवट बदली। इसी बीच बहुत दूर सुनसान रात में किसी ने दूर से पुकारा – "हो... ह... लाला... आ!"

दासजी उसी तरह स्वप्न-से उठ बैठे। यह तो उन्हें बुलावा आ गया!...

दासजी ने तखत से उठकर उसी अन्धकार में गमछा, लोटा सब उठा लिया। पर हाव-भाव से लग रहा था वे कोई और ही हैं!

पण्डितजी की नींद झप् से खुल गई। सोये-सोये दासजी को देखते रहे। अरे, दासजी क्या नींद में चल रहे हैं?

दासजी ने झुक कर खाट के नीचे से थैला, लोटा निकाला। पण्डितजी की ओर ध्यान नहीं है।

हठात् उन्हें देखकर जल्दी से तखत पर लाज से जाकर बैठ गए और बोले – "अरे, यहाँ क्या ले आया? यहाँ तो पण्डितजी सोये हैं! छिः छि! तुमसे और होगा नहीं! हाँ, मैं क्या मना करती हूँ कि वह ऋषि जैसा आदमी है! पर क्या हो गया उससे? चलो, चलें! तुम्हारा लोटा? यह मैं पकड़ी हूँ, चलो!!"

पण्डितजी गम्भीर विस्मय से उन्हें देख रहे हैं।

दासजी ने झूमते-से जाकर किवाड़ खोला और बाहर निकल गए। पण्डितजी कुछ कहे बिना चुपचाप पीछे चल पड़े।

दासजी स्वप्नाविष्ट, इसमें उन्हें संदेह नहीं। पर बड़ा अद्‌भुत! इनकी तो सारी बाह्येन्द्रियाँ स्पष्टतः काम कर रही हैं, पर मन इस तरह आच्छन्न होकर रहना अस्वाभाविक है।

दासजी अत्यन्त संभ्रम सहित सीढ़ियाँ उतर रास्ते में खड़े हो गए। तब तक वहाँ कहीं कोई न था।

वहाँ से यमुना का अक्रूर घाट पास ही है। दाहिने मुड़ने पर घाट की ओर रास्ता है। बाईं ओर मथुरा जंक्शन। दासजी में कोई इतस्ततः भाव नहीं। पहचानते-से वे सीधे घाट के रास्ते पर चल पड़े। मानो बहुत पहले से उस रास्ते आए-गए हों, उसे अच्छी तरह पहचानते हों।

पण्डितजी तीस-चालीस हाथ पीछे चल रहे हैं।

दासजी का स्वप्नाविष्ट चेतना का बाह्य स्तर उनकी सहधर्मिणी से आच्छन्न है, किन्तु अंदर से स्वयं डूब कर अद्‌भुत् मिलन का उपभोग करते चल रहे हैं। बीच-बीच में जो सुनाई पड़ता है, लगता है एक अदृश्य व्यक्ति के साथ बातचीत चल रही है। मानो टुकु मा अत्यन्त स्वाभाविक अवस्था में दासजी के साथ आलाप कर रही है। पर उसमें दासजी का प्रश्न या उत्तर सुनाई नहीं पड़ता।

अक्रूर घाट वृन्दावन के बहुत नजदीक है। अधिकांश यात्री स्नान करते हैं। अतः जगह बहुत साफ है। रात में यमुना के श्याम जल ने एक नया रूप धारण किया है, मानो अपने गर्भ में तारों को स्थान दिया है इसने। अनन्त तक गहरा, उसमें बिलकुल देखा ही नहीं जा सकता।

दासजी जल की धारा के पास खड़े हुए। दासजी ने कहा – "ओहो, आगे ऐसे क्यों होते हो तुम भी? बच्चों की तरह इतनी आवाज क्यों कर रहे हो? पास में कोई सुनेगा तो क्या कहेगा?"

पण्डितजी सब सुन रहे थे।

इसके बाद कुछ क्षण शान्ति छाई रही। फिर दासजी ने अपनी स्वाभाविक रीति से कहा – "आवाज नहीं करूँ! यह भाग्य क्या जीवन में फिर कभी मिलेगा?"

इतना कह कर वे नाचने-से लगे। स्वप्नावस्था के कारण शायद अंग-प्रत्यंगों की गति जरा शिथिल थी। नहीं तो, दासजी उन्मत्त हैं।

"राधा-माधव गिरिवर धारी। गोपीजन बल्लभ कुंज बिहारी।।"

इस एक ही पद पर द्रुत लय से ताल दे-दे कर नाच रहे हैं।

पण्डितजी ने देखा कि अब दासजी शायद टुकु मा को पीछे छोड़ कर दूसरे स्तर को उठ गए हैं।

पर दासजी हठात् स्थिर हो गए एवं बाहु फैला कर पुकार उठे – "आओ, यमुना में चलें! अच्छा, चलो ना! गोपी आ गई तो क्या हो गया? क्यों रे! गोपी क्या? गोपी कौन? मैं अभी किस की तरह दिखा तुझे? आ... आ..., चली आ!"

पण्डित जी को रोमांच हो आया। भंगिमा से लगा दासजी सस्त्रीक पानी में घुस गए।

अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ पण्डितजी प्रतीक्षा कर रहे हैं, कहीं यहीं स्वप्न टूट जाए।... पर कहाँ?

दासजी चुपचाप आँख मूँदे आकंठ जल में डूब कर खड़े हैं।

नहीं, उन्हें यहाँ से जाना होगा। उनकी बहुत अप्रकृतिस्थ अवस्था है। किन्तु फिर पता नहीं क्या सोच कर वे रुक गए। निश्वास ले कर चारों ओर मुँह फेर कर देखने लगे।

आकाश में कृष्ण पक्ष का चंद्र था। उस ओर तब तक पण्डितजी का ध्यान गया नहीं था। अक्रूर घाट के चारों ओर निस्तब्धता। भींगी-भींगी चंद्र किरण स्वप्न वर्षा-सी कर रही हैं। पण्डितजी महाराज भी धीरे-धीरे डूब आए।

"वाह! परिवेश कितना शान्त हो गया है! यहाँ घड़ी भर बैठें तो कैसा रहे!"

वे जहाँ खड़े थे, वहीं बैठ गए और चारों ओर अत्यन्त आदरपूर्वक देखने लगे। इसके बाद स्वतः अनजाने में ही वे ध्यानस्थ हो गए।

पानी में प्रायः बाह्य संज्ञाशून्य हो दासजी बैठे हैं, किसी एक निबिड़ स्वप्न के असंख्य तंतुओं ने उन्हें आश्लिष्ट कर रखा है। इधर किनारे पर पण्डितजी मेघमुक्त निर्मल आकाश में चंद्रिका का पराग देख प्रकृति पुरुषगत तत्त्वज्ञान में विभोर हो गए।

लगता है, कोई एक यमुना के पानी में मिलकर बह जाएगा और दूसरा उसी तरह स्थाणु होकर पत्थर बन जाएगा।

बहुत देर बाद निस्तब्धता के बीच सुनाई पड़े रात्रि के नुपूर।... ना, शायद सोलह हजार कटि किंकिणी! हो सकता है आकाशी यमुना के उस पार से क्षीण वंशी की तान!

पवन की लहरों के बीच चाँदनी का कंपन भाव चंद्रालोक तक फैल गया। धरित्री मानो कंटकित हो उठी। इस अस्थिरता को पहले पण्डितजी ने निश्वास छोड़कर हटाया और आँखें खोल दी। कुछ तो भी उनके अनजाने में घटता जा रहा है। और उन्हें बिलकुल स्थिर होने ही नहीं देता। वे उठ खड़े हुए।

इसी समय दूर से अत्यन्त क्षीण स्वर में उन्हें सुनाई पड़ा – "ओ... इ... लाला... आ... !"

और इसके ठीक बाद पानी में एक छपाक् की आवाज! दासजी भुस् कर खड़े हो गए और फिर पानी में पड़ गए। पण्डितजी उन्हें शीघ्रतापूर्वक किनारे पर खींच लाए।

दासजी का सारा शरीर मृतप्रायः है। बाणविद्ध हरिण की तरह हृदय से सिर तक सिर्फ धक्-धक् काँप रहा है। पलकहीन आँखें देख रही हैं। उन्हें कुछ सुनता नहीं कि मुँह खुलता नहीं, कुछ कह डालने के लिए।

पण्डितजी को घोर अनुताप हुआ, पर तब तक सोचने का भी समय न था। इधर बल नहीं कि दासजी को वहाँ से उठाकर ले जायें। चारों ओर देखा, सहायक होने के लिए कोई किधर भी नहीं दिखा। उन्हें और कोई बुद्धि नहीं उपजी। सीधे रास्ते की ओर दौड़े।

बड़े रास्ते पर बाईं ओर मुड़े ही थे कि देखा एक आदमी बत्ती के प्रकाश में बरामदे में ओढ़ कर सोने का उपक्रम कर रहा है। पण्डितजी को भागता देख खड़ा हो गया। पण्डितजी आशा से उसके पास पहुँचे।

"भई, हमारी मदद कर सकते हो?"

पण्डितजी के व्यक्तित्व एवं कण्ठ के आवेग में कोई विशेषत्व देखा उसने। फटी-सी चादर एक ओर कर उन्हें गौर से देखा।

प्रकाश में पण्डितजी ने देखा अच्छा बलिष्ठ चेहरा है। उम्र भी चालीस से इधर ही होगी। चेहरे पर काली चमकीली दाढ़ी। आँखें दोनों तेजीयान होने पर भी खूब कोमल हैं?

कहा – "कहिए, हम कैसे आपका उपकार कर सकते हैं?"

"इधर पास ही हैं, हमारे एक साथी जरा अस्वस्थ हो गए हैं। उन्हें वहाँ से उठाकर धर्मशाला में पहुँचाना है। हम अकेले नहीं ले सकेंगे।"

वह तुरत उठ खड़ा हो गया, "चलिये।"

दासजी पूर्ववत पड़े हैं। पण्डितजी के कुछ कहने से पूर्व ही उसने अपनी फटी चादर से दासजी की सारी देह पोंछ दी, उसे ओढ़कर अकेले ही उठा लिया।

"चलिए किधर जाना है? इनकी हालत तो बहुत खराब है!"

पण्डितजी दासजी का झोला पकड़े जल्दी-जल्दी आगे चल रहे हैं। मन में नाना प्रकार की अस्वस्तिकर चिन्ताएँ हैं।

धर्मशाला का चौकीदार न था। तब तक भोर का तड़का हो गया। पण्डितजी ने अपने कमरे में आकर दासजी का तखत दिखा दिया। उनका कम्बल निकाल कर उन्हें ढंक दिया।

उसने उन्हें कुछ नहीं कहा और चुपचाप चला गया, पर कुछ ही देर बाद ढेर-सी लकड़ियाँ लेकर आ पहुँचा। जला कर दासजी को कपड़े से सेंकने के लिए कह कर चला गया।

जाते-जाते कह गया – "आप घबराइये मत। हम साधु महाराज को अभी लेकर आते हैं। उनके आने पर सब ठीक हो जाएगा।"

पण्डितजी लौकिक बुद्धि से जानते हैं कि इस अवस्था में डाक्टर का

परामर्श एकदम जरूरी है। पर उन्हें लगा कि उस आदमी पर पूरा भरोसा करने से भी चलेगा।

बाहर लोगों का जाना-आना शुरू हो गया है। गाड़ियाँ भी एक-आधी चलने लगी। पण्डितजी एक लय से दासजी का हिमवत् शरीर कपड़े से सेंक रहे थे।

चुपचाप दो आदमी घर में अन्दर आए। एक उनका परिचित मित्र और दूसरा अति भव्य पुरुष।

पण्डितजी ने तुरत उठकर उन्हें प्रणाम किया। किंचित हँस कर उन्होंने वरद मुद्रा में आशीर्वाद दिया।

उसी प्रकार खड़े रह कर काफी देर तक दासजी को देखते रहे। हठात् उनकी आँखें भींग आई। मुड़कर उन्होंने पूछा – "बेटा, तुम किस प्रान्त के हो?"

पण्डितजी इस प्रश्न से रोमांचित हो गए। कहा – "हम उड़ीसा के हैं।"

"अरे वाह! जगदीश ने तुम्हें इधर भेजा है!" बात-बात से आत्मा के अंदर का हर्ष उनके मुँह पर उछल आता है।

पण्डितजी के मन की बात जानते-से बोले – "तुम इन की चिन्ता मत करो। ये खुद ही ठीक हो जायेंगे। हम आज दिन भर इनकी सेवा करेंगे।"

उस दिन भर दासजी की शुश्रुषा चलती रही। दोनों में गंभीर चर्चा भी होती रही। शाम को दास जी के हाथ पैर निवाये हुए, नाड़ी चली और उन्हें जोरों का बुखार।

और लोग रात में जो जिधर गए, किन्तु इन दोनों की बातें चलती रही। ज्ञान की गहन बातें।

अन्त में पण्डितजी महाराज ने साधु के चरणों में साष्टांग प्रणिपात किया। अनेक साधना, संघर्ष के बाद उनके ज्ञान की गंगोत्री सागर-संगम पा रही है। साधु महाराज परम संतोष के साथ उनके सिर पर हाथ रखे रहे।

दासजी की पलकहीन आँखें इस मौन दीक्षा की ओर देख रही थी। पर उनकी शून्यदृष्टि कुछ भी ग्रहण नहीं कर रही थी।

# महानिशा पुरी

पण्डितजी ने दासजी की बहुत शुश्रुषा की, उनका सब कुछ हुआ, पर दासजी और बोल न सके। जिसे भी देखा कुछ समय तक शशक की तरह देखते रहे। अगर मन होता किंचित मुस्का देते। आँखों से स्नेह झर पड़ता, पर चेहरे पर कैसे भी एक प्रकार का विभोर भाव अंजा रहता। वे सचमुच जैसे मार्गशिर की भोर की धुँध में निश्चल हैं। दिन का अधिक भाग दीवार के सहारे टिक कर ही काट देते। कोई अन्दर गया, आया, बातचीत की, उन्हें कुछ मालूम नहीं पड़ता।

पण्डितजी साधु के मठ में दासजी को ले आने के बाद पता चला कि उनके युवक मित्र का नाम युगलकिशोर है। वे एक तरुण साधक हैं। उनका साधु-सेवा ही धर्म है। वे दासजी के प्रायः सारे काम कर देते। बीच-बीच में पण्डितजी को करने पड़ते।

पण्डितजी दासजी को खूब ध्यान से देखते। उन्हें लगता जैसे दासजी की तो सहज जीभ नहीं खुलती, कानों को सुनाई नहीं पड़ता कि आँखों को दिखाई भी नहीं देता। पर एक दिन हठात् देखा, सो बात नहीं है। कछुवे की तरह दासजी अंदर सिमट गए हैं, बाहर के साथ संबंध स्थापित हो ही नहीं पाता। एक दिन काठ के टुकड़े की तरह गिर पड़े कि दो दिन से आँखें खोली।

गुरुजी एक दिन छोड़ एक दिन आकर दासजी को देख जाते। दासजी उन्हें देखते ही हाथ जोड़ते, मूक संकेत से बैठने का अनुरोध करते। हँसी से भरे चेहरे पर आदर भरा रहता, बातें उनकी दो आँखें ही कहती। कभी-कभी वे दो आँखें इतनी दूर से, इतने गहरे से देखती रहती, पण्डितजी दासजी को पहचान नहीं पाते। दासजी तो सहज ही उन्हें न पहचानने की बात। सुबह के पहले पहर की फुनगियों पर पड़ती धूप की तरह बहुत नरम थी वह दृष्टि – ठीक मानो किसी महाशून्य से लहर चली आती है, पहचाने न पहचाने सबको गोद में ले जाती है। और कभी वे गीली आँखें काँच की तरह निर्जीव हो जाती। उनमें सिर्फ शून्य भरा रहता। कठपुतली के नीचे से हाथ खींच लेने पर वह जैसे स्थिर होकर असहाय भाव से पड़ी रहती है। वही उन दोनों आँखों की अवस्था। पर हठात् छलछला कर चेतना लौट आई, चेहरे पर हँसी फिर आई।

दासजी अभ्यास की तरह नित्यकर्म कर लेते। पर कभी-कभी सब भूल जाते। उस दिन सब कठिनाई से करना पड़ता।

दासजी की आँखों से प्रायः आँसू झरते। पण्डितजी जानते हैं कि ये हर्ष-विषाद के आँसू नहीं हैं। संभ्रम से उन्हें पोंछ देते। दासजी को कुछ पता न चलता। धीरे-धीरे उनकी इतनी आविष्टता और नहीं रही। अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में सारे काम कर लेते।

एक दिन इसी तरह हठात् वे पण्डितजी को देखते खड़े रहे। पण्डितजी ने ध्यान से देखा कि इतने दिन बाद दासजी कुछ कहने की चेष्टा करते हैं। मुँह से

बात निकल नहीं रही है, पर आँखों से स्पष्ट झलक रहा है कि वे पण्डितजी से कुछ कहेंगे। पण्डितजी भी आग्रहपूर्वक खड़े रहे। दासजी ने पानी का लोटा नीचे रख बाईं हथेली पर अँगुली से लिख दिया – 'पुरी'।

पण्डितजी ने सिर उठाकर दासजी की ओर देखा। वे उसी तरह मुक्त विभोर हास्य में थे। पण्डितजी को लगा कुमुदिनी के फूल-सी हँसी में उनका स्वच्छ धोया-पोंछा हुआ मन झरने के पानी में सोने के गहने की तरह झलक रहा है। द्विधा, द्वन्द्व, संदेह आदि का लवलेश भी नहीं है।

तो दासजी और वृन्दावन में नहीं रहेंगे। क्यों नहीं रहेंगे या पुरी क्यों जायेंगे? क्या दासजी से पूछ लें? पूछने की आवश्यकता भी क्या है?

पण्डितजी ने यह बात जाकर गुरुजी को बताई। कुछ समय स्थिर बैठने के बाद मन ही मन बात करते-से वे बोले – "उनको तो लिया जा रहा है।" पण्डितजी समझ गए कि दासजी के पुरी जाने की बात किसी के आयत्त की बात नहीं है।

दोनों उठकर दासजी के कमरे की ओर आए। वहाँ दासजी चुपचाप साधु महाराज को बहुत देर तक देखते रहे। पण्डितजी को लगा दोनों का अच्छी तरह आलाप चल रहा है।

स्थिर हुआ, उसी दिन दासजी पुरी जायेंगे। साथ जायेंगे युगलकिशोर। जाने-आने के लिए बाँधना-खोलना तो कुछ है ही नहीं। दासजी अपना थैला लेकर उठ खड़े हुए पुरी जाने के लिए। पण्डितजी ने उनके हाथ से थैला लेकर उसमें गमछा, लोटा और तिलक की छोटी-सी पेटी भर दी। दासजी हथेली रगड़ते-मसलते खड़े हैं। किंचित मुस्कान भी है।

और डेढ़ घंटे बाद कलकत्ता जानेवाली गाड़ी से दासजी निकल पड़ेंगे। पण्डितजी गए स्टेशन तक पहुँचाने।

*** ***

दासजी चले।

पीछे रह गया वृन्दावन, गोपी-गोपालों की यमुना, रससिक्त वृन्दावन, यमुना-मेखलित वृन्दावन।

पर दासजी के मन में जरा भी आवेग नहीं है। किसी प्रकार का भावान्तर नहीं। इतने दिन बाद पण्डितजी भी पीछे रह गए। दासजी का ध्यान है ही नहीं। उनमें मानो यह सब एक जगह समा गए हैं। उसके लिए वे किसी के अभाव का अनुभव नहीं करते। आविष्ट मन लेकर वे किसी को पहले की तरह अपने पास या दूर नहीं देख पाते।

पण्डितजी दासजी के डब्बे के पास खड़े रह कर उन्हें देख रहे हैं। पर दासजी पहले की तरह निर्विकार बैठे हैं। बीच-बीच में दासजी की दोनों आँखें खूब सचेतन होकर पण्डितजी को गंभीरता से देखने लग जातीं। चेहरे पर हँसी खिल जाती। पर हठात् सब स्थिर हो गया। ऊपरी स्तर से हट गए बहुत गहन – जहाँ चेतना सिमट कर आकर डूब जाती है।

इसी बीच गाड़ी चल पड़ी।

दासजी बाह्यज्ञानशून्य होकर उसी तरह देख रहे हैं। पण्डितजी भी शून्यदृष्टि से वहाँ खड़े रह गए।

उनकी स्थिर आँखों के कोनों पर चलती गाड़ी की छाया तैरती हुई बायें से दाहिनी ओर चली गई।

उधर दासजी की आँखों में चेतना उतर आई। उन्होंने देखा स्टेशन नहीं, पण्डितजी नहीं। पण्डितजी का जाना-पहचाना चेहरा, अनजानी-सी आँखें, उस दीपशिखा की तरह पतली नाक सन-सन बहती हवा में कभी दिख जाती है, कभी नहीं।

दासजी डब्बे के अन्दर मुँह कर बैठे। देखा वही युवक है। क्या नाम है? हत्, क्या याद आ रहा है! उसे देखते रहे। हठात् हँसी आ गई।

अच्छा पण्डितजी, यह दाढ़ी कब से रखी है? धन्य हैं ख्याली लोग! खूब मोटे-सोंटे भी दिखते हैं!

दासजी की सिर्फ दोनों आँखें हँसती हैं। स्वप्न में डूबने की तरह भींगे-भींगे पलकहीन नेत्रद्वय। इसके बाद कुछ चेतना छलछला कर फिर लौट आती। वे देखते उसी युवक को जिसका नाम याद नहीं। मोटे तौर पर वह दिखता पण्डितजी की तरह या वास्तव में पण्डितजी उस युवक की तरह दिखते। सब गोलमाल हो जाता।

रेल इस बीच तीन स्टेशन पार कर चली आई है। दासजी की आँखें मुँद आईं। उन्हें बेंच पर धीरे-से सुला कर युगलकिशोर जी ने सोचा – शायद दासजी सो गए हैं।

*** ***

रास्ता बहुत दूर है।... पहाड़ की अन्धेरी गुफा से यह अतल शीतल छलछलाते समुद्र तक। कितने मोड़, कितने भँवर, कितने खण्ड-विखण्ड, कितने मेल-जोल हो जाते हैं – ना उसे कोई खींच ले जाता है – बेचारी नदी को पूछने पर कह सकेगी नहीं, मुहाना पास आने पर बालू के बाँध के उस पार से समुद्र पुकारता है। स्थिर और निश्चल हो जाती है नदी। डमड़ घुमड़ कर बाहु फैला महोदधि उसे ले जाता है – नमकीन फेनिल लहरों में खो जाती है -- निमग्न हो जाती है।

*** ***

अज्ञात पल्ली ब्राह्मण शासन पाटपुर के गमछा बाँधे सनेई – सनातन दास – दासजी और दो घड़ी में श्रीक्षेत्र में पहुँच जायेंगे – मिल जायेंगे। वह क्या छोड़ेगा, जो लौटेंगे? निम्नगा क्या पुनः लौट सकती है? छोटे-बड़े बाटिया स्तूप अब-डूब, अब-डूब हो रहे थे – उन्हीं होकर सम्पूर्ण अतीत गूंज रहा है। पर वे सब चिकने, घिस-मंज कर खूब चिकने हो गए हैं। किसी में अब तेज धार नहीं है। पर इन स्मृतियों को यहाँ कौन पूछता है? उन पर सात ताल पानी, किनारा तोड़ रहा है। और नदी का स्रोत भी तो मर गया है – उसे आसरा कर तो इतनी दूर तक लुढ़कती चली आई थी। अब सिर्फ ज्वार की प्रतीक्षा है। जब आकाश से फेन निकल पानी मथा जा रहा होगा – पता नहीं

चले कौन-सी नदी कौन-सा समुद्र है, उसी समय सको तो समुद्र के अतल गर्भ में गिर पड़ो, बस सब जंजाल से पार हो गए।

***          ***

श्रीक्षेत्र में रेल से उतर स्टेशन के इस पार आने तक दासजी बहुत गम्भीर, बहुत स्थित दिखाई पड़ते हैं। पर पास जाकर कोई देखता तो पाता कि उनके रोम कदम्ब फूल की तरह खड़े हो गए हैं। मुँह जोर से दबाए हैं इसलिए सम्भाले हुए हैं। नहीं तो एक जबड़ा दूसरे से निरन्तर ठक-ठक बजता। नशे की तरह डोर खिंची आँखें और अधपकी बरौनियाँ।

धक्का-मुक्का कर आगे बढ़ने में दासजी असमर्थ हैं। मन उनका भा गया है। गड्ढा, पत्थर कुछ भी नहीं मानता। खींचता ले चल रहा है, पर देह काँप उठती है। एक-एक शिरा-प्रशिरा से मानो चेतना खिंच कर किसी एक स्थान पर जमा हो रही है। गाँठ-गाँठ से जीवन निकल रहा है।

फिर भी हूँ के साथ दासजी धकेलते चले जा रहे हैं। दासजी का झोला लिए युगलकिशोर उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं। यदि उन्हें जरा समझाने की अवस्था में ले पाते तो एक रिक्शा कर लेने के लिए कहते। पर कहाँ? दासजी की आँखों में बिलकुल दृष्टि नहीं है। पैर लड़खड़ा रहे हैं। फिर भी पैर घसीटते-घसीटते वे चले जा रहे हैं।

हठात् दासजी रास्ता छोड़ दूसरी ओर चल पड़े। किसी के घर की ओर बढ़ता देख युगलकिशोर ने समझा – दासजी को कुछ दिखाई नहीं पड़ता। पण्डितजी की बात याद आ गई – "देखो भाई, जब ये होश में नहीं होंगे, तब उन्हें खुद संभाल लेना।"

उन्होंने दासजी का हाथ पकड़ लिया। उन्हें एक रिक्शा में बैठाया। चले सीधे सिंहद्वार। दासजी वैसे ही मूक बैठे हैं। कब उन्हें बाईस पावच्छ पार कराकर खड़ा कर दिया, उनके ध्यान में ही नहीं है।

हठात् यहाँ आकर चेतना उपज आई। उन्होंने चारों ओर टिमटिमा कर देखा। निमिष भर में उन्हें लगा जैसे असंभव संभव हो गया है। मन का नीलाचल छलक कर पुनः पत्थर बन गया है क्या!!

उन्हें लगा उनका भीतर-बाहर सब एकदम खुला है। अश्रु पुलक में डूब गए उनके देह, मन और अहंकार। वे मुखशाला की दीवार का सहारा लेकर अनायत्त में टूट कर बैठ गए। फैल गया पत्थर में, पवन में, आकाश में उनकी चेतना का पराग।

बहुत उपचारों के बाद उन्होंने आँखें खोलकर फिर देखा, स्वप्न अभी भी सत्य बना खड़ा है। नीलाचल के मोटे-मोटे पत्थरों का ढेर, उनसे ही प्राण लेकर पल्थी मारे बैठे हैं। पवन उन्हें इस पार से उस पार तक भेद रहा है।

आकाश पिघल कर गिर रहा है उनपर। फिर भी उनका बाहर सब स्थिर है। कमल तोड़ने के लिए घुटनों तक पानी में सरकते-सरकते वे जैसे चोटी तक डूब गए हैं। उनके अन्दर-बाहर वही पानी डूबता-उतराता लहरें तोड़ रहा है, और वे गहन से गहन में डूबते जा रहे हैं।

थरथराते हाथ से पत्थर टटोल कर उठ खड़े हुए। आगे बढ़ने के लिए पैर बढ़ाया। उन्हें आगे-पीछे कुछ नहीं दिखता, देह की छाया में रह जाते हैं। छुड़ा कर बचते हुए अंदर बढ़ गए। गरुड़ स्तम्भ को पानी सोच कर उसी में कूद पड़ने को या स्वयं स्तम्भ होकर और किधर कूद पड़ने को। फलतः वे उसे कर थाम एकाकार होते हुए घड़ी भर तक पकड़े खड़े रहे।

पता नहीं, कब जाकर ढील दी। वे बाईं ओर झुक गए। आँखें खुल गईं और खुली की खुली रह गईं। हाथ की जगह हाथ, पैर की जगह पैर निर्विकार हो गए। उनके नीचे पत्थर पिघला या बगल की दीवार पिघली, कहा नहीं जा सकता – पर वे स्वयं पिघल गए। बह गए शरीर का बाँध लाँघ कर। मुँह पर, देह पर उनके असीम महाशून्य की छाप है। सचमुच जैसे सारहीन, रसहीन, दुर्बल खोल है, प्राणरस सब निचुड़ गया है सुस कर चला गया है कहीं।

दासजी की बहुत गंभीर अवस्था है।

युगलकिशोर भीतर की अर्गला के पास कितनी ही देर तक खड़े रह गए हैं। डूब गए हैं अपूर्व रस में। हठात् हल्ला-गुल्ला सुन कर मुड़ कर देखा। आँसू पोंछते-पोंछते गरुड़ स्तम्भ तक आकर देखा दो-तीन आदमी दासजी पर पानी के छींटे दे रहे हैं, पंखा कर रहे हैं। उन्हें झन्-सा लगा। देवालय में यह कैसी अघटना! और कुछ विचार न कर दासजी को उठाया और बाहर ले आए। उनके पीछे काफी लोग हैं। पर उन्हें याद आ रहा था वही एकान्त यमुना घाट, निस्तब्ध रजनी और दासजी की गीली चेतनाहीन देह।

अब वे जायें किधर? अच्छा, चलते-चलते जहाँ पहुँच गए। तब तक दिन छुपने का समय। लोगों का कौतूहल मर जाने पर धीरे-धीरे हट गए। कुछ समय तक चलने के बाद आकर युगलकिशोर ने देखा वे समुद्र के किनारे पहुँच गए हैं।

दासजी को बालू पर लिटा कर शौचादि से निवृत्त होते-होते और उनके कपड़े बदलते-बदलते रात हो गई। वे बिलकुल विचलित नहीं हैं। उन्हें निर्देश था, वे सिर्फ प्रतीक्षा करेंगे।

समुद्र भी उन्हें खूब मानता है। उन्हें लगता है जैसे आकाश पिघल कर पानी हो गया है। समुद्र की नीली सीमा पर आकाश दुलक पड़ता है। लहरें उठते समय लगता है जैसे पहाड़ की चोटियाँ चूर-चूर होकर झर रही हैं। टूट-फूट कर फेन हो जाती हैं। घु घु गर्जन मानो पृथ्वी के पेट से घुमड़ कर उठता है।

समुद्र पर रात झुक आई। छितरे-बिखरे मेघ, सरसराती हवा।

बालू पर निश्चल निर्वेद की तरह लेटे हैं दासजी।

बीच-बीच में उनकी छाती देख वैसे ही सतर्क बैठें हैं युगलकिशोर।

रात और बढ़ गई।

मेघ टूट गए। बिखर गए।

बैशाखी आकाश में तारे खिल गए हैं, लाख-लाख करोड़ों-करोड़ होकर जैसे उड़ेल दिए गए हैं।

हू-हू पवन बह रहा है।

आधी रात के ज्वार में अन्धेरा समुद्र गरज रहा है – घूम रहा है इतना विशाल समुद्र!

हर तारा टिमटिमा कर झूल रहा है।

पर प्रशान्त आकाश निश्चल देख रहा है – एक दम निर्मल अनन्त गहन आकाश।

और निश्चल पड़ी है यह पृथ्वी!

गहरी रात चढ़ी आ रही है, पर निशब्द ही सरकती जा रही है। चारों ओर एक भारी-भारी छाया मानो घिर आई है, धीरे-धीरे दसों दिशाओं से रुंधती चली आ रही है।

कितनी देर बाद अन्धेरा छन्-छन् हो काँप उठा। जानो-न-जानो, समुद्र का गर्जन थम गया है। आधीरात का मतवाला पवन भी धीमा पड़ गया। तारे भी फीके-फीके-से पड़ गए। दासजी की देह सूखे पत्ते की तरह काँप उठी। बार-बार काँपने लगी ठक्-ठक् करती। पसीने से बालू भींग गई।

तब तक भोर का पहला पहर हो आया।

दासजी की आँखें खुल गईं, आँसू बह गए, चेतना मानो लौट आई। पर जरा-सा पानी देने पर दूसरी ओर बह गया।

बहुत अस्त-व्यस्त होते-से वे सिर को इधर से उधर घुमा रहे हैं। पर शरीर निश्चल पड़ा है। पैर की अंगुली से चोटी तक खिंच गई धनुष की डोर की तरह। लकड़ी की तरह दोनों हाथ छिटक कर पड़ गए। सारी देह काँप उठी है, मुँह से एक हिचकी के साथ हवा निकली। शब्द नहीं, नाद नहीं, केवल पवन, प्राणवायु की शेष अंजुली ...

युगल किशोर को लगा जैसे उस नादहीन पवन में सुनाई पड़ रही है दासजी के शरीर की शेष पुकार – 'जगन्नाथ"!!

महाकाल मृत्यु को पास में रखकर वे बैठे रहे।

सुबह होगी। सत्कार होगा।

# प्राणी का भला-बुरा मरने पर जाने

एक दिन ऐसे ही गाय लौटने की बेला थी। नीलकण्ठ पण्डित आकर काँची तेलिन के सामने पहुँचे ही होंगे, उधर से वृन्दा नायक 'पा लागूँ', 'पाँय लागूँ' कहता चला आया।

पण्डित आजकल दोनों वक्त बाहर ही बाहर गाँव का एक चक्कर लगा आते हैं। चलने में आराम होगा, इसलिए बेटे ने मोटे कपड़े की खड़ाऊ ला दी हैं। सींग की छड़ी भी ला दी है। उस की मूठ हाथी दाँत से बनी है। सुबह-शाम यों ही घूमने पर पण्डित का वायुदोष कट जाता है, ऐसा इन्द्रमणि ने बताया था।

"जी नमस्कार!"

"सर्वारिष्ट शान्तिरस्तु। कौन, नायकजी, अरे किधर निकले?" पण्डित के पान से रंगे दाँत दाढ़ी के बीच से दिख रहे थे।

वृन्दा नायक थम गया। पण्डित भी।

"और क्या? आपने तो काम छोड़ दिया – उसी दिन से भेंट होना भी आप से कठिन हो गया।"

"नहीं जी, हम तो आप लोगों के सेवक हैं। मैं क्या आए बिना रहता? मुझे, आज छः महीने हुए गले में चक्कर देती-सी हवा उठती है, लगता है अब ज्यादा दिन नहीं रहे।"

पण्डित अन्यमनस्क होकर एक ओर देख रहे हैं, देख कर नायक जी ने आँखें फेर ली। सब समझ गए। कहा, "ओह! सच, दासजी को विधाता ने दण्ड देकर संसार ही खत्म कर दिया। वह रघू इस घर की कोई व्यवस्था नहीं कर देता क्या? काँची तेलिन कह रही थी बरामदे के इस ओर कमरा होगा, अच्छा होता अगर यह जगह रघुनाथ बेच देता।

पण्डित ने उस ओर देख कर कहा – "अच्छा, दासजी मदनपुर से तीर्थ यात्रा जाकर लौटे नहीं हैं। सुना है।"

"बड़े आश्चर्य की बात है महाराज, तो आप कुछ नहीं जानते? मैं तो सोचता था कि आपको सब मालूम है। दासजी का तो देहान्त हो गया।"

"हैं?"

"जी हाँ! मैं क्या जानता था? आज कुछ बाकी व्याज के पैसे भेजे थे रघुनाथ ने पात्र बुड्ढे के पास। उसमें लिखा था कि पुरी में दासजी का देहान्त हो गया। यह बात वृन्दावन से लिखी थी कि वे उन्हें साथ ले कर तीर्थ करा रहे थे।"

"ओः बड़े पुण्य-प्रतापी थे वे महाराज तो! निर्मांया आदमी! छल-कपट न था वहाँ, नहीं तो क्या श्रीक्षेत्र की प्राप्ति होती?"

"पर मुँह में दो बूँद पानी देने को भी कोई वहाँ न था! बेटा भी भला पहले से जान पाता! हाँ, छोड़िए, जो भाग्य का लेखा है, उसे बदलने वाला कौन जनमा है?"

वृन्दा नायक प्रणाम कर चले गए।

पर नीलकण्ठ पण्डित धक्का लगने की तरह अतीत की ओर देखते से खड़े रह गए। कितनी-कितनी बातें चित्र-सी दिख रही थी। "जा... हे..., तुम उस पण्डित सभा में जाओगे तो हमें गौरव न होगा!" आहा! इतने निर्मल मन से वह बात कही! लौटते समय बैकुण्ठ कविराज उनके घर की ओर झुक कर कितने संभ्रम से, संकोच से कह रहे थे – पैसा नहीं है, इसीलिए न विपत्तिकाल में इस तरह मायूस हो रहे हैं। चला गया – सकते तो वे काशी जाते, वे पण्डित होते। पर भाग्य भी क्या कम है? भई, अबकी बार मन में कोई बिचार न करना। भाग्य के हाथ में तुम जैसे असहाय हो, मैं भी उसी तरह। मुझे अब वह चाहे ऊपर उठा लेगा – उठाया भी। पर उस में क्या रखा है। तुम्हारा-सा पुण्य बल किसी का है भला?"

समझदार आदमी ठहरे नीलकण्ठ पण्डित। सूनी पड़ी वह डीह देखकर उनकी आँखें मुंद आईं। मुँह मोड़ कर दो कदम आगे गए होंगे कि फिर क्या सोचा, सिर झुका कर लौट पड़े। आज उन का घूमना इतने ही में रह गया।

शबनम पुस्तक महल
प्रेस चौक , कटक – 10
Tel - (0671) 643178